पुराणों में देवयोनियों का स्वरूप

(यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के विशेष संदर्भ में)

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
जबलपुर (म.प्र.)

की

विद्यावारिधि (पी-एच.डी.)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

सन् 2000



निर्देशक -
डॉ. जगत्नारायण दुबे
भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
सी.एम. दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बिलासपुर (म.प्र.)

शोधकर्ता -
रामानन्द यादव
एम.ए. (संस्कृत, अर्थशास्त्र)
सहायक शिक्षक
शा.पूर्व.मा. विद्यालय, परसदा

शोध केन्द्र - महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
पुरुष परिसर, बिलासपुर (म.प्र.)


महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय ग्रंथालय
क्र. 17339
करौंदी, कटनी (म.प्र.)

पुराणों में देवयोनियों का स्वरूप

(यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के विशेष संदर्भ में)



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

की

विद्यावारिधि (पी-एच.डी.) संस्कृत उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध - प्रबंध

सन् 2000

निर्देशक :
डॉ. जगत्नारायण दुबे
भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
सी.एम. दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बिलासपुर (म.प्र.)



शोधकर्ता :
रामानन्द यादव
एम.ए. (संस्कृत, अर्थशास्त्र)
सहायक शिक्षक
शा. पूर्व मा. विद्यालय, परसदा

शोध केंद्र - महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय,
पुरुष परिसर, बिलासपुर (म.प्र.)

पुराणों में देवयोनियों का स्वरूप

(यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के विशेष संदर्भ में)



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय , ज़बलपुर (म.प्र.)

की

विद्यावारिधि (पी-एच.डी.) संस्कृत उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध - प्रबंध

सन् 2000

निर्देशक :

डॉ.जगतूनारायण दुबे

भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष

सी.एम.दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बिलासपुर (म.प्र.)



शोधकर्त्ता :

रामानन्द यादव

एम.ए.(संस्कृत, अर्थशास्त्र)

सहायक शिक्षक

शा.पूर्व मा.विद्यालय, परसदा

शोध केंद्र - महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय,

पुरुष परिसर, बिलासपुर (म.प्र.)

--:: घोषणा-पत्र ::--

मैं, घोषणा करता हूँ कि "पुराणों में देवयोनियों का स्वरूप" (यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के विशेष सन्दर्भ में) विषय पर मेरा यह शोध कार्य पूर्णरूपेण मौलिक है। मैंने विषय से सम्बन्धित ग्रन्थों से अधिक से अधिक मौलिक तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

(रामानन्द यादव).

परीक्षण हेतु अग्रसारित

--::--

डॉ• जगतनारायण दुबे
भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष,
सी•एम•दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बिलासपुर (म•प्र•).

निवास :
सुभाषनगर,
बिलासपुर (म•प्र•)

--:: प्रमाण-पत्र ::--

प्रमाणित किया जाता है कि श्री रामानन्द यादव ने मेरे निर्देशन में "पुराणों में देवयोनियों का स्वरूप (यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के विशेष सन्दर्भ में)" विषय पर शोध कार्य किया है। उनका यह कार्य पूर्णरूप से मौलिक है। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

(डॉ• जगतनारायण दुबे).

--::--::--
--::--

--:: ग्रन्थ संकेत सूची ::--

क्र०	ग्रन्थ का नाम	संकेत
1.	अग्नि पुराण	अग्नि
2.	कूर्म पुराण	कूर्म
3.	गरूड़ पुराण	गरूड़
4.	नारदीय पुराण	नारदीय
5.	नरसिंह पुराण	नरसिंह
6.	पदम पुराण	पदम
7.	ब्रह्म पुराण	ब्रह्म
8.	ब्रह्मवैवर्त पुराण	ब्रह्मवैवर्त
9.	ब्रह्माण्ड पुराण	ब्रह्माण्ड
10.	भविष्य पुराण	भविष्य
11.	श्रीमद्भागवत पुराण	भागवत
12.	मत्स्य पुराण	मत्स्य
13.	लिङ्ग पुराण	लिङ्ग
14.	वाल्मीकि रामायण	वा.रा.
15.	वराह पुराण	वराह
16.	वामन पुराण	वामन
17.	वायु पुराण	वायु
18.	विष्णु पुराण	विष्णु
19.	विष्णुधर्मोत्तर पुराण	विष्णुधर्मोत्तर
20.	शिव पुराण	शिव
21.	स्कन्द पुराण	स्कन्द

22.	हरिवंश पुराण	हरिवंश
23.	शातपथ ब्राह्मण	शात.ब्रा.
24.	ऐतरेय ब्राह्मण	ऐत.ब्रा.
25.	ऋग्वेद संहिता	ऋग्वेद
26.	यजुर्वेद संहिता	यजुर्वेद
27.	अथर्ववेद संहिता	अथर्ववेद.

--::--::--
--::--

--:: प्राक्कथन ::--

पुराण भारतीय संस्कृति का अमूल्य धरोहर है। इसमें प्राचीन भारतीय सभ्यताओं और संस्कृतियों का रोचक वर्णन है। पुराण में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विषयों की प्रचुर सामग्री पायी जाती है। इनका प्रमुख उद्देश्य वेद के तत्त्वों को जन-साधारण तक पहुँचाना है। वेदों में सूत्र रूप में वर्णित विषयों की पुराण में उपाख्यानों के द्वारा सरल और रोचक व्याख्या की गई है।

पुराणों में अष्ट देवयोनियों का उल्लेख हुआ है। श्रीमद्-भागवत में वर्णित है कि देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस, सिद्ध-चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किन्नर-किम्पुरुष आदि भेद से आठ देव सृष्टि हैं --

देवसर्गश्चाष्ट विधो विबुधाः पितरोऽसुराः।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः।

§3/10/27-28§.

पुराणों में यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के विषय में विविध स्थानों में वर्णित चरित्रों को एक स्थान पर सूत्रबद्ध करना ही मेरे शोध प्रबन्ध का परम लक्ष्य है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की भूमिका में पुराण की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा, पुराणों एवं उपपुराणों की संख्या, पुराणों की श्लोक संख्या, पुराण-लक्षण तथा अष्टादश पुराण का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

प्रथम अध्याय में यक्षों की उत्पत्ति तथा स्वरूप एवं प्रमुख यक्षों के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में गन्धर्वों की उत्पत्ति तथा स्वरूप और प्रमुख गन्धर्वों के जीवन-चरित्र का उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय में अप्सराओं की उत्पत्ति, स्वरूप तथा इतिहास पर विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में यक्षों एवं गन्धर्वों की राजनैतिक संगठन तथा प्रशासन, मंत्रिमण्डल, न्याय तथा दण्ड नीति आदि का उल्लेख है।

पंचम अध्याय में विविध विद्याओं पर प्रकाश डाला गया है। यथा -- संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकला, द्यूत, अन्तर्धान, चाक्षुषी आदि विद्या तथा आयुर्वेद का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय में यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समाज का चित्रण किया गया है। इसके अन्तर्गत वस्त्र एवं पोशाक, आभूषण एवं अलंकार, आहार, विविध संस्कार आदि का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त भक्ति, तप, पूजा आदि धार्मिक पक्ष का भी वर्णन किया गया है।

सप्तम अध्याय में यक्ष एवं गन्धर्व की युद्ध कला और अस्त्र-शस्त्र का उल्लेख किया गया है।

मैं उन सभी ऋषियों, आचार्यों एवं विद्वानों के चरणों में नतमस्तक हूँ, जिनके ग्रन्थों से मैंने मार्गदर्शन प्राप्त किया है।

मैं पूज्य गुरूवर डॉ. जगतनारायण दुबेजी का हृदय से आभारी हूँ, जिनके अमूल्य निर्देशन में मेरा यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण हुआ है। मैं डॉ. कृष्णप्रताप पाण्डेयजी का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर उचित मार्गदर्शन दिया।

मैं श्री स्वरामदत्त पाण्डेय और डॉ. सीमा श्रीवास्तव का हृदय से आभारी हूँ। आपने मुझे आवश्यक ग्रन्थों को प्रदान कर प्रोत्साहन एवं परामर्श दिया।

मैं उन विद्वानों, आचार्यों एवं सहयोगी मित्रों का भी आभार प्रगट करता हूँ, जिनसे मुझे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ है।

विदुषामनुचरः

(रामानन्द यादव).

--::--::--
--::--

--:: विषयानुक्रमणिका ::--

--::--::--
--::--

--:: भूमिका ::--

==::--::--::--
--::--::--
--::--

--:: भूमिका ::--

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का मूलाधार पुराण हैं। अष्टादश पुराण विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं। वेदों में वर्णित विषयों का पुराणों में आख्यान-उपाख्यान के द्वारा विशदीकरण हुआ है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में वर्णित रहस्यमय वृत्तों का पुराण में विस्तृत व स्पष्ट व्याख्यान है।

पुराणों में अध्यात्म, धर्मशास्त्र, राजनीति, कला-कौशल, भूगोल, खगोल, इतिहास, दर्शन, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, शिक्षा, निरूक्त, आयुर्वेद, गन्धर्व वेद, स्थापत्यवेद आदि विविध शास्त्रों का समावेश है। इसलिए इसे विश्व विद्या कोष कहा जाता है।

पुराण हिन्दू धर्म के मूल-स्तम्भ हैं। पुराण भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का निर्मल दर्पण हैं, जिसमें हमारी पुरातन संस्कृति का उज्ज्वल स्वरूप प्रतिबिम्बित है। इसने भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया है। पुराण मानव की ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति में सहायक हैं। इसमें ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, विश्वास, दान, तप, यज्ञ, दया, सेवा आदि कल्याणकारी उपदेश हैं।

पुराण की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा :--

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनि ने इस प्रकार की है -

"पुरा भवम्"। पुरा शब्द से "सायंचिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्यु ट्युलौ तुट् च"[1] इस सूत्र से ट्यु प्रत्यय करने तथा तुट् का आगम होने

---

1. अष्टाध्यायी 4/3/23.

पर पुरातन शब्द निष्पन्न होता है। किन्तु "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनव-केवला: समानाधिकरणेन"[1] तथा "पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु"[2] में पुराण शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि तुट् के अभाव में पुराण शब्द निष्पन्न होता है।

यास्क ने पुराण की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है -- "पुरा नवम्" अर्थात् प्राचीन तत्त्व का अभिनव रीति से पुनराख्यान ही पुराण है।[3] सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण के भूमिका में लिखा है -- "

"जगत: प्रागवस्थामनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।"

अर्थात् संसार की उत्पत्ति और विकासक्रम के बोधक को पुराण कहते हैं।

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में पुराण को परिभाषित करते हुए लिखा है --

"यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।"[4]

वायु और पद्म पुराण में वर्णित है -- "पुरा परम्परां व्यष्टि पुराणं तेन तद् स्मृतम्।" अर्थात् प्राचीन परम्परा के प्रतिपादक ग्रन्थ को पुराण कहते हैं।[5]

इस प्रकार पुराण का शाब्दिक अर्थ पुरातन या प्राचीन है। प्राचीन कथानकों का वर्णन होने के कारण इन्हें पुराण कहते हैं।

---

1. अष्टाध्यायी 2/1/49. 2. अष्टाध्यायी 4/3/105.
3. निरूक्त 3/19/24.
4. वायु 1/203, ब्रह्माण्ड 1/1/3.
5. वायु 2/53, पद्म 5/2/53.

पुराणों की संख्या एवं क्रम :--

पुराणों की संख्या के विषय में सभी विद्वानों में मतैक्य है। उनकी संख्या अठारह है। देवी भागवत पुराण में अष्टादश पुराणों के नाम एवं क्रम का निर्देश है --

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापद लिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।[1]

§1§ मत्स्य, §2§ मार्कण्डेय, §3§ भविष्य, §4§ भागवत, §5§ ब्रह्म, §6§ ब्रह्माण्ड, §7§ ब्रह्मवैवर्त, §8§ वामन, §9§ वायु, §10§ विष्णु, §11§ वराह, §12§ अग्नि, §13§ नारद, §14§ पद्म, §15§ लिङ्ग, §16§ गरूड, §17§ कूर्म और §18§ स्कन्द।

विभिन्न पुराणों में इनके क्रम में किंचिद् भिन्नता है। कूर्म पुराण में पुराणों का क्रम निम्नानुसार है --

ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च।
शैव भागवतंचैव भविष्यं नारदीयकम्।।
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च।
लैङ्गं तथा वाराहं स्कान्दं वामनेव च।।
कौर्म्मं मात्स्यं गारूडंच वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्।।[2]

नारदीय पुराण में पुराणों का क्रम इस प्रकार है --

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीयं तथैव च।
भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयंच कीर्तितम्।।

---

1. देवीभागवत 1/3/2.   2. कूर्म 1/1/13-15.

आग्नेयं च भविष्यं च ब्रह्मवैवर्तलिङ्गके।
वाराहं च तथा स्कान्दं वामनं कूर्मसंज्ञकम्।
मात्स्यं च गारुडं तद्वद् ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।[1]

लेकिन विष्णु पुराण के अनुसार पुराणों का क्रम निम्नानुसार वर्णित है --

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्।।
आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवमं स्मृतम्।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशं स्मृतम्।।
वाराहं द्वादशं चैव स्कन्दं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंचदशं तथा।।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।
महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने।।[2]

भागवत पुराण में पुराणों का क्रम इस प्रकार है --

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्द संज्ञितम्।।
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमितित्रिषट्।।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विविध पुराणों में इनके क्रम में किंचित अन्तर वर्णित हैं।

---

1. नारदीय 1/92/26-28. 2. विष्णु 3/6/21-24.
3. भागवत 12/7/23-24.

पुराणों की श्लोक संख्या

विभिन्न पुराणों में श्लोक संख्या को निम्नलिखित सूची में प्रदर्शित किया गया है :--

	पुराण	श्लोक संख्या					
		मत्स्य 53/12-54	नारदीय 1/92-109	भागवत 12/13	ब्रह्मवैवर्त 4/131	स्कन्द 7/2	अग्नि 1/272
1.	ब्रह्म	13000	10000	10000	10000	10000	25000
2.	पद्म	55000	55000	55000	55000	55000	12000
3.	विष्णु	23000	23000	23000	23000	23000	23000
4.	वायु (शिव)	24000	24000	24000	24000	24000	14000
5.	भागवत	18000	18000	18000	18000	18000	18000
6.	नारदीय	25000	25000	25000	25000	25000	25000
7.	मार्कण्डेय	9000	9000	9000	9000	9000	9000
8.	अग्नि	16000	15000	15400	15400	16000	12000
9.	भविष्य	14500	14000	14500	14500	14500	14000
10.	ब्रह्मवैवर्त	18000	18000	18000	18000	18000	18000
11.	लिङ्ग	11000	11000	11000	11000	11000	11000
12.	वाराह	24000	24000	24000	24000	24000	24000
13.	स्कन्द	81100	81000	81100	81000	81100	84000
14.	वामन	10000	10000	10000	10000	10000	10000
15.	कूर्म	18000	17000	17000	17000	17000	8000
16.	मत्स्य	14000	14000	14000	14000	14000	13000
17.	गरूड़	18000	19000	19000	19000	19000	8000
18.	ब्रह्माण्ड	12200	12000	12000	12000	12200	12000

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि विष्णु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह और वामन की श्लोक संख्या के सम्बन्ध में सभी पुराणों में एकता है, किन्तु अन्य पुराणों की श्लोक संख्या में पर्याप्त अन्तर बताया गया है।

उपपुराण और औपपुराण

उपपुराण और औपपुराण की संख्या भी पुराण के समान अठारह वर्णित हैं। प्राचीन काल में विद्वानों ने अष्टादश महापुराणों के आधार पर ही इनकी रचना की। विस्तार के भय से कथाओं में कुछ परिवर्तन किया गया है। अतः अष्टादश पुराण ही उपपुराण और औपपुराण के मूल हैं।

देवी भागवत में अठारह उपपुराणों के नाम निम्नानुसार वर्णित हैं :-- §1§ सनत्कुमार, §2§ नरसिंह, §3§ नारद, §4§ शिव, §5§ दुर्वासा, §6§ कपिल, §7§ मनु, §8§ उशनः, §9§ वरूण, §10§ कालिका, §11§ साम्ब, §12§ नन्दी, §13§ सौर, §14§ पराशर, §15§ आदित्य, §16§ माहेश्वर, §17§ भागवत और §18§ वशिष्ठ।[1]

किन्तु गरूड, कूर्म और स्कन्द पुराण के अनुसार उपपुराणों के नाम इस प्रकार हैं -- §1§ सनत्कुमार, §2§ नरसिंह, §3§ स्कन्द, §4§ शिव-धर्म, §5§ आश्चर्य, §6§ नारदीय, §7§ कपिल, §8§ वामन, §9§ औशनस, §10§ ब्रह्माण्ड, §11§ वरूण, §12§ कालिका, §13§ माहेश्वर, §14§ साम्ब, §15§ सौर,

---

1. देवीभागवत 1/3/13-16.

§16§ पराशर, §17§ मारीच और §18§ भार्गव।[1] किंचित् अन्तर के साथ ही यही नाम पदम पुराण में भी वर्णित है।[2]

स्कन्द पुराण रेवाखण्ड में उपपुराणों के नाम इस प्रकार वर्णित हैं --

आधा सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता।
सनत्कुमार नाम्ना हि तद्विख्यातं महात्मने।।
द्वितीय नारसिंहं च पुराणे पादमसंज्ञिते।
शौनकेयं हि तृतीयं तु पुराणे वैष्णवं मतम्।।
बार्हस्पत्यं चतुर्थं च वायव्यं सम्मतं सदा।
दौर्वाससं पंचमं च स्मृतं भागवते सदा।।
भविष्ये नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा।
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्।।
ब्रह्माण्डं वारूणं चाथ कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम्।।
पाराशरं भागवतं कौर्मं चाष्टादशं क्रमात्।
एतान्युपपुराणानि मयोक्तानि यथाक्रमम्।।[3]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उपपुराण के नाम के सम्बन्ध में किंचित् मत वैभिन्नता है।

औपपुराणों का नामोल्लेख निम्न श्लोक में निर्दिष्ट है--

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारदीयं बृहच्चयत्।
आदित्यं भानवं प्रोक्तं नन्दीकेश्वरमेव च।।

---

1. स्कन्द 7/2/11-15, कूर्म 1/1/17-20, गरूड 1/227/16-20.
2. पदम, पाताल 115/94-97. 3. स्कन्द 5/2/1/47-52.

कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वासिष्ठं भार्गवं तथा।
मुद्गलं कल्कि देव्यौ च महाभागवतं ततः।।
बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपति तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।।

अर्थात् ‖1‖ सनत्कुमार, ‖2‖ बृहन्नारदीय, ‖3‖ आदित्य, ‖4‖ सूर्य, ‖5‖ नन्दीकेश्वर, ‖6‖ कौर्म, ‖7‖ भागवत, ‖8‖ वशिष्ठ, ‖9‖ भार्गव, ‖10‖ मुद्गल, ‖11‖ कल्कि, ‖12‖ देवी, ‖13‖ महाभागवत, ‖14‖ बृहद्धर्म, ‖15‖ परानन्द, ‖16‖ वह्नि, ‖17‖ पशुपति और ‖18‖ हरिवंश।

इस प्रकार पुराण, उपपुराण और औपपुराण तीनों की संख्या अठारह ही बतायी गई है। उपपुराण और औपपुराण का आधार पुराण ही हैं।

पुराणों का विभाजन

मत्स्य पुराण के अनुसार पुराणों को तीन भागों में विभाजित किया गया है -- सात्विक, राजस और तामस। सात्विक पुराणों में विशेष रूप से भगवान् विष्णु का वर्णन किया गया है। राजस पुराणों में ब्रह्माजी का वैशिष्ट्य प्रतिपादित है। तामस पुराणों में महादेव और अग्नि का विशेष उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त एक संकीर्ण भेद भी है जिसमें पितृगणों और सरस्वती का माहात्म्य वर्णित है --

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।

तद्वदग्नेर्माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।[1]

पद्म पुराण में उल्लिखित है कि मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द और अग्नि -- ये छः तामस पुराण हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म -- ये छः राजस पुराण हैं तथा विष्णु, नारद, भागवत, गरूड़, पद्म तथा वाराह -- ये छः सात्विक पुराण हैं।[2] गरूड़ पुराण में सात्विक पुराणों को तीन भागों में विभाजित किया गया है -- सत्वाधम, सात्विक मध्यम और सात्विक उत्तम। मत्स्य और कूर्म सत्वाधम पुराण हैं, वायु पुराण सात्विक मध्यम के अन्तर्गत है तथा विष्णु, भागवत और गरूड सात्विक उत्तम पुराण माने गये हैं --

सत्वाधमे मात्स्यं कौर्म तदाहुर्वायुं चाहः सात्विक मध्यमं च।
विष्णोः पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गरूडं प्राहुरार्याः।।[3]

स्कन्द पुराण में दस शैव पुराण, चार ब्राह्म पुराण, दो शाक्त पुराण और दो वैष्णव पुराण का उल्लेख हुआ है --

अष्टादश पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।।[4]

शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड -- ये दस शैव पुराण के अन्तर्गत हैं। वैष्ण पुराण में विष्णु, भागवत, नारदीय और गरूड़ पुराण का उल्लेख है। ब्रह्म और पद्म ब्राह्म पुराण हैं। अग्नि पुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा का विशेष वर्णन करते हैं।[5]

---

1. मत्स्य 53/68-69.
2. पद्म, उत्तर 263/81-84.
3. गरूड़ 1/215/13.
4. स्कन्द, संभवकाण्ड 1.
5. स्कन्द, संभव काण्ड 2/30-34.

इस प्रकार पुराणों में सत्व, राजस और तामस गुण के आधार पर अथवा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के माहात्म्य के अनुसार पुराणों का विभाजन किया गया है।

पुराण - लक्षण

अधिकांश पुराणों में उल्लिखित है कि सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित -- ये पाँच पुराण के लक्षण हैं --

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्।।[1]

सर्ग (सृष्टि) :--

पुराण में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक का क्रमबद्ध वर्णन है। भागवत में वर्णित है कि जब मूल प्रकृति के गुणों में क्षोभ उत्पन्न होते हैं, तब महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। उससे तामस, राजस और सात्विक अहंकार उत्पन्न होते हैं। त्रिविध अहङ्कार से एकादश इन्द्रियाँ और पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग या सृष्टि है।[2]

सांख्यकारिका में सृष्टि वर्णन भी इसी क्रम में किया गया है --

---

1. स्कन्द 5/2/35/15, देवीभागवत 1/3/1, वराह 2/4, भविष्य 1/2/4, कूर्म 1/12.
2. भागवत 12/7/11.



प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणाश्च षोडशकः।।
तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि।।

पुराणों में नौ सर्ग का उल्लेख हुआ है। प्रकृति से महत्तत्त्व की उत्पत्ति प्रथम सर्ग है। उससे तन्मात्राओं का आविर्भाव द्वितीय सर्ग है। इसे भूत सर्ग कहते हैं। सात्विक अहङ्कार से इन्द्रियों की उत्पत्ति तृतीय सर्ग है, इसे ऐन्द्रिक सर्ग कहते हैं। पर्वत वृक्षादि स्थावर वस्तुओं की उत्पत्ति रूप चतुर्थ सृष्टि मुख्य सर्ग कहलाता है। पशु-पक्षी और कीट आदि तिर्यक् स्रोत की उत्पत्ति पंचम सर्ग है। ऊर्ध्व स्रोत देवताओं की सृष्टि छठी सृष्टि है। इसे देव सर्ग कहते हैं। सातवाँ सर्ग अर्वाक् स्रोताओं का है, यह मानव सर्ग कहलाता है। अनुग्रह सर्ग आठवीं सृष्टि है और सनत्कुमार आदि ऋषियों का कौमार सर्ग नवीं सृष्टि कही गयी है। प्रथम से तृतीय सर्ग तक प्राकृत सृष्टि कहलाती है और चतुर्थ से अष्टम सर्ग तक वैकृत सृष्टि कही गयी है। नवम सर्ग प्राकृत और वैकृत दोनों हैं।[1]



इसके अतिरिक्त पुराणों में मानस और मैथुनी सृष्टि का भी उल्लेख हुआ है। ब्रह्मा ने संकल्प से मरीचि, अत्रि, दक्ष, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, भृगु, क्रतु, वसिष्ठ आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने देव, असुर, पितर, मनुष्य, यक्ष-राक्षस, गन्धर्व-अप्सरा, भूत-पिशाच, पशु-पक्षी और लता-वृक्षादि की सृष्टि की। इसे ब्रह्मा की मानस या अयोनिज सृष्टि कहते हैं।[2]

मानस सृष्टि से जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई, तब ब्रह्मा ने अपनी देह को दो भागों में विभाजित कर पुरुष और नारी हो गये और

---

1. संक्षिप्त पद्म पृष्ठ 9, गरुड़ 1/4/14-19, वराह 2, विष्णु 1/5/19-16, भागवत 3/10/11-26.
2. विष्णु 1/5/57-59, भागवत 3/20, गरुड़ 1/4/20-36, विष्णुधर्मोत्तर 1/107/1-28.

मैथुन के द्वारा प्रजाओं को उत्पन्न किया। ब्रह्मा की यह सृष्टि मैथुनी या योनिज सृष्टि कहलाती है।[1]

प्रतिसर्ग :--

पुराण के पंच लक्षणों में यह द्वितीय लक्षण है। कल्प के अन्त में भगवान् नारायण तम: प्रधान रौद्र रूप धारण करके सम्पूर्ण प्राणियों का संहार करते हैं। सब भूतों का नाश करके संसार को एकार्णव के जल में निमग्न कर स्वयं शेष नाग की शय्या पर योग निद्रा का आश्रय लेकर शयन करते हैं। इसे प्रलय या प्रतिसर्ग कहते हैं। तत्पश्चात् जागने पर ब्रह्मा के रूप में पुन: जगत् की सृष्टि करते हैं। भागवत पुराण के अनुसार एक सहस्र चतुर्युगी के बराबर ब्रह्मा का एक दिन होता है। इसे ही कल्प कहते हैं। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। कल्प के अन्त में उतने ही काल तक प्रलय रहता है। प्रलय को ही ब्रह्मा की रात कहते हैं। उस समय तीनों लोक लीन हो जाते हैं। इसको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। महत्तत्त्व, अहङ्कार और पंचतन्मात्राओं का अपने कारण प्रकृति में लीन होना प्राकृतिक प्रलय कहा जाता है। इस प्रलय में ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़कर कारण रूप में स्थित हो जाता है। जब जीव अहङ्कार को त्यागकर अपने आत्म स्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है तब आत्मा की यह मायामुक्त स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय या मोक्ष कहलाता है। समस्त प्राणी सदैव उत्पन्न होते और नष्ट होते रहते हैं। इसे ही नित्य प्रलय कहते हैं।[2]

---

1. पद्म 1/6, हरिवंश 1/1/40-53, भागवत 3/12/4-56
2. भागवत 12/4/2-35.

इस प्रकार प्रलय चार प्रकार के होते हैं -- नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक प्रलय --

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी।।[1]

वंश :--

राजाओं एवं ऋषियों की कुल परम्परा को वंश कहा जाता है। सूर्य एवं चन्द्रवंशी राजाओं की वंश परम्परा का वर्णन पुराणों में किया गया है। पुराणों में इन वंशों का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है, जिससे हमें हिन्दू जाति के इतिहास का यथार्थ पता चलता है।

मन्वन्तर :--

भागवत में उल्लिखित है कि मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषि और भगवान् के अंशावतार -- इन छः का जिसमें उल्लेख हो, उसे मन्वन्तर कहते हैं --

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड् विधमुच्यते।।[2]

मनुष्य के काल मान के अनुसार एक वर्ष का समय देवताओं का एक दिन-रात होता है। उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन रात्रि है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग -- इन चतुर्युगों में देवताओं के कालमान से बारह सहस्र वर्ष होते हैं। इकहत्तर चतुर्युग

---

1. भागवत 12/4/38. 2. भागवत 12/7/15.

से कुछ अधिक समय [71-$\frac{6}{14}$ चतुर्युग] का एक मन्वन्तर होता है। एक सहस्र चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन बताया गया है। इसे ही कल्प कहते हैं। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। उनके समय का नाम मन्वन्तर है। चौदह मनु के नाम निम्न हैं -- [1] स्वायम्भुव, [2] स्वारोचिष, [3] उत्तम, [4] तामस, [5] रैवत, [6] चाक्षुष, [7] वैवस्वत, [8] सावर्णि, [9] ब्रह्मसावर्णि, [10] रूद्रसावर्णि, [11] दक्षसावर्णि, [12] धर्मसावर्णि, [13] रौच्य और [14] भौत्य मनु।[1]

प्रथम छः मनु भूतकाल में हो चुके हैं। वर्तमान में वैवस्वत मनु का काल चल रहा है तथा अन्तिम सात मनु भविष्य में होंगे।

वंशानुचरित :--

विभिन्न राजाओं एवं ऋषियों के चरित्र का वर्णन वंशानुचरित कहलाता है --

"वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये।"[2]

पुराणों में सूर्य एवं चन्द्र वंश के राजाओं के चरित्र का विशिष्ट वर्णन है।

--::--::--
--::--

- -

1. स्कन्द 1/2/3/55-57, भागवत 4/1 व 8/1-13 अध्याय, हरिवंश 1/7/4-7.
2. भागवत 12/7/16.

1. ब्रह्म पुराण

ब्रह्म पुराण का प्रायः सभी पुराणों में उल्लेख हुआ है। अष्टादश पुराणों में यह सर्वप्रथम और सबसे प्राचीन है। विष्णु पुराण में उल्लिखित है कि अठारह पुराणों में ब्रह्म पुराण सबसे प्रथम पुराण है--

आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते।
अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते।।[1]

किन्तु देवीभागवत के अनुसार यह पाँचवाँ पुराण है।

नारदीय पुराण में ब्रह्म पुराण का लक्षण वर्णित है कि जिसकी रचना भगवान् व्यास ने अखिल लोकों के कल्याण के लिए की है और जिसमें अनेक आख्यान तथा इतिहास वर्णित हैं, वह ब्रह्म पुराण समस्त पुराणों में प्रथम है --

ब्राह्मपुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय वै।
व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना।।
तद्वै सर्वपुराणाग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्।
नानाख्यानेतिहासाख्यं दशसाहस्रमुच्यते।।[2]

नारदीय, मार्कण्डेय, देवीभागवत, विष्णु, शिव, वायु, भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार ब्रह्म पुराण में दश हजार श्लोक हैं,[3] किन्तु मत्स्य पुराण के अनुसार इसमें तेरह सहस्र श्लोक होना चाहिए --

---

1. विष्णु 2. नारदीय 1/92/30-31.
3. देवीभागवत 1/3, वायु 104, भागवत 12/13, ब्रह्मवैवर्त 4/131.

ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते।।[1]

लिंग, वाराह, कूर्म और पद्म पुराण में भी ब्रह्म पुराण की श्लोक संख्या 13000 वर्णित है।

ब्रह्म पुराण दो भागों में विभक्त है -- पूर्व और उत्तर भाग। इसके पूर्व भाग में देव, असुर तथा दक्षादि प्रजापतियों की उत्पत्ति, सूर्यवंश तथा श्रीराम-चरित्र, चन्द्रवंश एवं कृष्ण-चरित्र, द्वीपों, नदियों, पाताल, स्वर्ग-नरक आदि का वर्णन है। इसमें पार्वती का जन्म व विवाह वर्णन, पुरी के जगन्नाथ जी का माहात्म्य, उड़ीसा के कोणादित्य तीर्थ, सूर्य पूजा तथा उसकी महिमा का वर्णन है।

इसके उत्तर भाग में पुरूषोत्तम क्षेत्र का विस्तार पूर्वक वर्णन तथा तीर्थयात्रा का विधान वर्णित हैं। कृष्ण-चरित्र, ब्रह्म-लोक, पितृ श्राद्ध का विधान, वर्णाश्रम धर्म का निरूपण, प्रलय का वर्णन तथा योग-सांख्य की व्याख्या यहाँ सुन्दर ढंग से की गई है।

इसके दोनों भागों में कुल 245 अध्याय हैं। इसे वैष्णव पुराण के अन्तर्गत रखा गया है।

2. पद्म पुराण

प्रायः सभी पुराण पद्म पुराण को दूसरा पुराण स्वीकार करते हैं, किन्तु देवीभागवत के अनुसार यह चौदहवाँ पुराण है। मत्स्य पुराण में पद्म पुराण के लक्षण का उल्लेख करते हुए वर्णित है कि जिस

---

1. मत्स्य 53/12-13.

समय समस्त संसार स्वर्णमय पद्म के रूप में परिणत था, उस समय के वृत्तान्त का जिसमें वर्णन किया गया है, उसे पदम पुराण कहते हैं। पदम पुराण में पचपन सहस्र श्लोक हैं --

एतदेव यदा पदमं ह्यभूद्धैरण्यमयं जगत्।।
तद्वृत्तान्तादयं तद्वत् पादममित्युच्यते बुधैः।
पादमं तत्पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणीह पठ्यते।।[1]

यही श्लोक संख्या नारदीय, भागवत, देवीभागवत आदि पुराणों में वर्णित किया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार भी पदम पुराण में 55000 श्लोक हैं।

नारदीय तथा स्वयं पदम पुराण में इसके पाँच खण्ड वर्णित हैं- §1§ सृष्टि खण्ड, §2§ भूमिखण्ड, §3§ स्वर्ग खण्ड, §4§ पाताल खण्ड और §5§ उत्तर खण्ड।

तत्रादौ सृष्टि खण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम्।
स्वर्गखण्डं ततः पश्चात्ततः पाताल खण्डकम्।।
पञ्चमं ततः ख्यातमुत्तरं खण्डमुत्तमम्।
एतदेव महापदममुद्भूतं यन्मयं जगत्।।[2]

कुछ संस्करणों में सात खण्डों में इसे विभाजित किया गया है -- सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, ब्रह्म, पाताल, उत्तर और क्रिया खण्ड।

सृष्टि खण्ड में सृष्टि क्रम का वर्णन, समुद्र मंथन, देव-दानवों की उत्पत्ति, पृथु-चरित्र, वामन अवतार, तारकासुर संग्राम आदि का वर्णन किया गया है।

---

1. मत्स्य 53/13-14.
2. पदम, सृष्टि 1/55-56, नारदीय 1/93/36-37.

इसके भूमि खण्ड में पितृभक्ति का प्रभाव, ययाति और च्यवन महर्षि की कथा का वर्णन किया गया है। स्वर्ग खण्ड में आदिसृष्टि के क्रम का वर्णन, विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य, वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। पातालखण्ड में श्रीरामचन्द्र का चरित्र वर्णित है। श्रीकृष्ण की महिमा तथा वृन्दावन व मथुरा के महात्म्य का सुन्दर विवेचन किया गया है। यहाँ वैसाख मास-माहात्म्य का वर्णन भी दर्शनीय है। इसके उत्तर खण्ड में एकादशी के माहात्म्य का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। कार्तिक महात्म्य, भक्ति की महत्ता, विभिन्न तीर्थों की महिमा, श्रीमद्भागवत गीता का माहात्म्य, विष्णु के अवतारों का वर्णन तथा श्रीराम नाम की महिमा का वर्णन मिलता है।

पदम पुराण विष्णु भक्ति से सम्बन्धित सबसे वृहद पुराण है। मत्स्य और नारदीय पुराण में निर्दिष्ट लक्षण प्रचलित पदम पुराण में मिलता है, किन्तु विभाग में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है।

3. विष्णु पुराण

प्रायः सभी पुराण विष्णु पुराण को तीसरा पुराण मानते हैं, किन्तु देवीभागवत में इसे दसवाँ पुराण स्वीकार किया गया है। मत्स्य पुराण में वर्णित है कि वाराह कल्प के वृत्तान्त से आरम्भ करके महर्षि पराशर ने जिसमें सम्पूर्ण धर्मों की कथा का वर्णन किया है, वही विष्णु पुराण है। इसकी श्लोक संख्या तेईस सहस्र है।

वाराह कल्प वृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत्प्राह धर्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः।।
त्रयोविंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः।[1]

विष्णु पुराण का विभाग अंशों में हुआ है। इसमें छः अंश हैं।[2] इसके प्रथम अंश में देवों, दैत्यों आदि की उत्पत्ति, राजाओं तथा ऋषियों के आख्यान तथा विष्णु भक्ति की महिमा की प्रकाशक-कथाओं का वर्णन है। द्वितीय अंश में भूगोल का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इसमें सप्तद्वीपों और समुद्रों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें भगवान् विष्णु को एक मात्र सत्य दिखाया गया है। इसके तृतीय अंश का मुख्य प्रतिपाद्य मनुओं और मन्वन्तरों का वर्णन तथा आश्रम सम्बन्धी कर्तव्य हैं। इसके चतुर्थ अंश में सूर्य और चन्द्र वंश के विविध राजाओं का वर्णन किया गया है। अतः यह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पाँचवे अंश में श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित्र का प्रतिपादन हुआ है। इसके छठें अंश में प्राचीन गद्य की झलक दिखाई देती है।

विष्णु पुराण का क्रम दार्शनिकता की दृष्टि से भागवत पुराण के बाद आता है। साहित्यिक दृष्टि से भी विष्णु पुराण रमणीय और सरस पुराण है। यह पुराण वैष्णव धर्म का मूलाधार है। उपलब्ध विष्णु पुराण में मत्स्य पुराण में निर्दिष्ट लक्षण तथा नारदीय पुराण में वर्णित विषयानुक्रम मिलता जुलता है, किन्तु श्लोक की संख्या लगभग 6000 है। इसलिए प्रायः विद्वान नारदीय पुराण में छठें अंश के पश्चात वर्णित उत्तर खण्ड को आधार मानकर विष्णु धर्मोत्तर को विष्णु पुराण का उत्तरखण्ड मानते हैं।

---

1. मत्स्य 53/16-17.
2. यत्रादिभार्ग निर्दिष्टा षडंशाः शक्तिजेन ह।
   मैत्रेयायादिने तत् पुराणस्यावतारिका।। नारदीय 1/94/2.

4. वायु पुराण

मत्स्य पुराण में वायु पुराण का परिचय देते हुए वर्णित है कि श्वेत कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में वायु ने धर्म की कथा और रुद्र-माहात्म्य का जो वर्णन किया है, वही वायु पुराण है। इसकी श्लोक संख्या चौबीस सहस्र है --

श्वेतकल्प प्रसंगेन धर्मान् वायु रिहाऽब्रवीत्।
तत् तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्य संयुतम्।।
चतुर्विंशाति सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते।[1]

नारदीय, भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराण भी इसी श्लोक संख्या की पुष्टि करते हैं।

वायु पुराण दो भागों में विभक्त है -- पूर्व भाग और उत्तर भाग। इसके पूर्व भाग में सृष्टि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। राजवंशों के चरित्रों का वर्णन तथा राजधर्म का निरूपण, भू-पातालादि एवं विविध व्रतों का वर्णन किया गया है। इसके उत्तर भाग में नर्मदा के तीर्थों तथा सहायक नदियों का वर्णन हुआ है। नर्मदा-माहात्म्य का यहाँ विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इस प्रकार भूगोल और खगोल के अध्ययन की दृष्टि से यह पुराण महत्वपूर्ण है। विभिन्न राजवंशों एवं ऋषि वंशों के इतिहास के अध्ययन हेतु यह एक उपयोगी ग्रन्थ है।

विष्णु, पद्म, मार्कण्डेय, कूर्म, लिंग, भागवत, स्कन्द आदि पुराणों में वायु पुराण के स्थान पर शिव पुराण का उल्लेख हुआ है किन्तु, मत्स्य, नारदीय और देवीभागवत में वायु पुराण वर्णित है। स्कन्द पुराण में उल्लिखित है कि शिव पुराण को वायु ऋषि ने कहा था इसलिए इसका दूसरा नाम वायु पुराण है --

---

1. मत्स्य 53/18.

चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम्।
शिवभक्ति समायोगात् शैवं तच्चापराख्यया।।[1]

अतः शिव पुराण और वायु पुराण एक ही है। शिव पुराण में भी वर्णित है कि जिसके पूर्व और उत्तर खण्ड में शिव का माहात्म्य वर्णित हो वह शिव पुराण है। रेवा माहात्म्य में भी कहा गया है कि एक ही पुराण को शिव की महिमा का सूचक होने के कारण शिव पुराण और वायु द्वारा कथित होने के कारण वायु पुराण कहते हैं।

यथा शिवस्तथा शैव पुराणं वायुनोदितम्।
शिवभक्ति समायोगान्नाम द्वय विभूषितम्।।

सम्प्रति वायु और शिव दोनों पुराणों के संस्करण उपलब्ध हैं। उपलब्ध शिव पुराण सात संहिताओं में विभक्त है -- विद्येश्वर, रुद्र, शतरुद्र, कोटिरुद्र, उमा, कैलास और वायवीय संहिता। रुद्र संहिता के पाँच और वायवीय संहिता के दो अवान्तर खण्ड भी हैं। इसमें भी चौबीस सहस्र श्लोक हैं।[2]

---

1. स्कन्द, अवन्ति, रेवा 1/33.
2. शिव, विद्येश्वर 2/

5. भागवत पुराण

नारदीय पुराण में उल्लिखित है कि इस ब्रह्म सम्मत पुराण में अष्टादश सहस्र श्लोक हैं तथा बारह स्कन्धों में विभक्त है। इसे भगवान् का स्वरूप ही समझना चाहिए —

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।।
तदष्टादश साहस्रं कीर्तितं पापनाशकम्।
सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः।।
भगवानेव विप्रेन्द्र! विश्वरूपाक्षमारितः।।[1]

पद्म पुराण के अनुसार जिस ग्रन्थ में विविध रूप से श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है तथा जो व्यास जी द्वारा भाषित हैं, उसे भागवत कहते हैं। इसे शुकदेव ने परीक्षित को सुनाया था। यह सभी पुराणों में श्रेष्ठ है —

पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
यत्र प्रतिपदं कृष्णो गीयते बहुधर्षिभिः।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कृष्णेन भाषितम्।
परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके।

इस प्रकार नारदीय और पद्म पुराण में कथित भागवत के लक्षण श्रीमद्भागवत में विशेष रूप से घटित हो रहा है। सात्विक पुराणों में यह एक अद्वितीय महिमा से विभूषित ग्रन्थ रत्न है। विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से इसे अष्टादश पुराणों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसके प्रवक्ता उग्रश्रवा सूत और श्रोता शौनक ऋषि हैं।

- -

1. नारदीय 1/96/1-3.

इसके प्रथम स्कन्ध में भगवद्भक्ति का माहात्म्य, विष्णु के अवतारों का वर्णन, नारद-चरित्र तथा परीक्षित का उपाख्यान वर्णित है। द्वितीय स्कन्ध में प्रधान रूप से सृष्टि का वर्णन किया गया है। इसमें देवताओं के चरित्र तथा सृष्टि का कारण वर्णित है। तृतीय स्कन्ध में विराट की उत्पत्ति, सृष्टि-क्रम, मन्वन्तरादि काल-विभाजन, हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष कथा तथा कपिल-अवतार आदि का वर्णन है। इस स्कन्ध का प्रधान प्रतिपाद्य अष्टांग योग का निरूपण है। चतुर्थ स्कन्ध में ध्रुव-कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। पंचम स्कन्ध में भरत-चरित्र वर्णित है। इसमें ज्योतिष शास्त्रीय तत्त्व का सुन्दर निरूपण है। यहाँ सूर्य तथा ग्रहों की गति का वर्णन किया गया है। छठें स्कन्ध में अजामिल-चरित्र, दक्ष-सृष्टि तथा वृत्रासुर-वध वर्णित है। सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद-चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अष्टम स्कन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य विषय गजेन्द्र-मोक्ष, समुद्र-मंथन तथा बली-वामन की कथा है। नवें स्कन्ध में इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं — विशेष रूप से श्रीराम-चरित्र तथा राजवंशों का वर्णन है। दशम स्कन्ध दो भागों में विभक्त है — पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। गुण तथा परिमाण दोनों दृष्टि से यह सबसे श्रेष्ठ स्कन्ध है। इसे श्रीमद्भागवत का "सर्वस्व" कहा जाता है। यहाँ श्रीकृष्ण के चरित्र का सुन्दर निरूपण किया गया है और श्रीकृष्ण को पूर्ण भगवान् के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें रास-लीला का रोचक और मार्मिक वर्णन किया गया है। इसके एकादश स्कन्ध में विशेष रूप से ज्ञान का निरूपण हुआ है। यहाँ भक्ति को ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ बताया गया है। भक्ति को सर्वोपरि प्रतिपादित करना इसका मुख्य विषय-वस्तु है। द्वादश स्कन्ध में प्रलय का वर्णन, पुराण के दश लक्षण, पुराणों की श्लोक संख्या तथा भागवत-माहात्म्य का वर्णन है।

भागवत पुराण का मुख्य उद्देश्य भक्ति तत्त्व का निरूपण करना है। यहाँ भक्ति को ही मोक्ष का मुख्य साधन बताया गया है। वैष्णव लोग विष्णु-महिमा-प्रकाशक इस श्रीमद्भागवत को ही भागवत पुराण मानते हैं, किन्तु शाक्त लोग शक्ति-महिमा सूचक देवीभागवत को भागवत पुराण मानते हैं।

मत्स्य पुराण में भी वर्णित है कि जिसमें गायत्री का अवलम्बन करके धर्मतत्त्व का विस्तृत विवेचन किया गया है और जो वृत्रासुर-वध-वृत्तान्त से परिपूर्ण एवं सारस्वत कल्प की कथाओं से युक्त है, उसे भागवत कहते हैं।

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते।।
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद् भागवतमुच्यते।।[1]

मत्स्य पुराण में वर्णित सारस्वत कल्प का प्रसंग श्रीमदभागवत में नहीं है। अतः श्रीमदभागवत को सारस्वत कल्प से सम्बन्धित पुराण नहीं कहा जा सकता। आदित्य पुराण में वर्णित है कि जिसमें महिषासुर, वृत्रासुर तथा रक्तासुर का वध वर्णित है वही भागवत पुराण है —

या जघ्ने माहिषं दैत्यं क्रूरं वृत्रासुरं तथा।
साद्य रक्तासुरं हत्वा स्वराज्यं से प्रदास्यति।।

इन श्लोकों के आधार पर देवी भागवत को भागवत पुराण मानना उचित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त मत्स्य पुराण में कथित

---

1. मत्स्य 53/20-21.

है कि वेदव्यास ने अठारह पुराणों के पश्चात् महाभारत की रचना की। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीमद्भागवत का लेखन किया।[1] इससे स्पष्ट है कि देवी भागवत महापुराण है।

उपर्युक्त उद्धरणों से श्रीमद्भागवत और देवीभागवत दोनों का महापुराण होना सिद्ध हो जाता है।

6. नारदीय पुराण

मत्स्य पुराण में नारदीय पुराण का लक्षण वर्णित है कि जिस ग्रन्थ में बृहत्कल्प प्रसंग में अनेक धर्म कथाओं का वर्णन है, वही नारदीय पुराण है। इसमें पच्चीससहस्र श्लोक हैं —

यत्राह नारदो धर्म्मान् बृहत्कल्पाश्रयान् बहून्।
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते।।[2]

स्वयं नारदीय पुराण में भी नारदीय पुराण का परिचय इसी प्रकार वर्णित है —

शृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम्।
पञ्चविंशति साहस्रं बृहत्कल्प कथाश्रयिम्।।[3]

सम्प्रति प्रचलित नारदीय पुराण में नारद पुराणोक्त विषयानुक्रम का मेल होता है, किन्तु केवल बाईस हजार श्लोक ही उपलब्ध हैं।

- -

1. अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः।
   भरताख्यानममलं चक्रे तदुपबृंहितम्।। मत्स्य पुराण

2. मत्स्य 53/23. 3. नारदीय 1/97/1.

नारदीय पुराण दो खण्डों में विभक्त है -- पूर्व और उत्तर खण्ड। इसके पूर्व खण्ड में चार पाद और 125 अध्याय तथा उत्तर खण्ड में 82 अध्याय हैं। इसमें अष्टादश पुराणों का विषयानुक्रम दिया गया है, जो इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। यह अनुक्रमणिका सभी पुराणों के विषयों को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसकी सहायता से पुराणों के मूल रूप और प्रक्षिप्त अंश की जानकारी प्राप्त करना सम्भव हो गया है।

इसके पूर्व भाग का प्रथम पाद भगवान् विष्णु की भक्ति-चर्चा से परिपूर्ण है। द्वितीय पाद में मोक्ष धर्म, सृष्टि वर्णन तथा वेदांग साहित्य का वर्णन है। तृतीय पाद में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के सैद्धान्तिक तत्त्वों का विवेचन है। यहाँ शैव, शाक्त तथा वैष्णव की पूजा-विधि, तंत्र-मंत्र आदि की चर्चा की गई है। चतुर्थ पाद में अष्टादश महापुराणों की विषयानुक्रमणी, बारह मासों के व्रत-उपवासादि का वर्णन है। इसके उत्तर भाग में एकादशी-व्रत-माहात्म्य तथा तीर्थ स्थानों के माहात्म्य का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इस पुराण में विविध विद्याओं, नानाविध अनुष्ठानों तथा विभिन्न प्रकार के समाजोपयोगी ज्ञान के अलौकिक व्याख्यानों का संग्रह है। अतः नारदीय पुराण समस्त "विद्याओं का विश्वकोश" है।

7. मार्कण्डेय पुराण

मत्स्य पुराण में मार्कण्डेय पुराण का परिचय देते हुए उल्लिखित है कि जिस पुराण में धर्मनिष्ठ मुनियों ने पक्षियों के प्रसंग में धर्म का विवेचन किया है, वह मार्कण्डेय मुनि द्वारा कथित नव सहस्र श्लोक युक्त मार्कण्डेय पुराण है --

यत्राधिकृत्य शाकुनीन् धर्मान् धर्मविचारणाः।
व्याख्याता वै मुनि प्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः।।
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते।।[1]

इसी प्रकार नारदीय पुराण में मार्कण्डेय पुराण का लक्षण वर्णित है कि जिसमें शाकुनियों का अवलम्बन करके धर्मों का निरूपण किया गया है, वही मार्कण्डेय पुराण है --

यत्राधिकृत्य शाकुनीन् सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम्।।[2]

शिव पुराण में कथित है कि जिस पुराण में मुनि मार्कण्डेय वक्ता है, वही मार्कण्डेय पुराण है।[3]

प्रचलित मार्कण्डेय पुराण में उपर्युक्त लक्षण पूर्णरूप से मिलता है किन्तु केवल 6900 श्लोक ही उपलब्ध मार्कण्डेय पुराण में हैं। प्रायः

---

1. मत्स्य 53/25-26. 2. नारदीय 1/98/2.
3. यत्र वक्ताऽभवद् खण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः।
मार्कण्डेय पुराणं हि तदाख्यातं च सप्तमम्।।

विद्वान मार्कण्डेय पुराण की प्राचीनता और मौलिकता को स्वीकार करते हैं। परिमाण की दृष्टि से यह सबसे छोटा पुराण है।

मार्कण्डेय पुराण में ब्रह्मवादिनी मदालसा का चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। दुर्गा सप्तशती इसका एक विशिष्ट अंश है। जिसमें देवी भक्ति के लिए जगज्जननी सर्वस्वरूपा दुर्गाजी का पावन चरित्र विस्तारपूर्वक उल्लिखित है। यह अंश सभी हिन्दुओं के लिए श्रेय एवं उपादेय है। इष्ट-सिद्धि के लिए इसका पाठ किया जाता है। आश्विन और चैत्र मास के नवरात्रों में सभी हिन्दू चण्डी-पाठ करते हैं।

8. अग्नि पुराण

मत्स्य पुराण के अनुसार जिस पुराण में अग्नि ने वसिष्ठ से ईशानकल्प के वृत्तान्त का वर्णन किया है, उसे आग्नेय पुराण कहा जाता है —

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तद् प्रचक्षते।।
तच्च षोडश साहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम्।।[1]

इसी प्रकार नारदीय पुराण में उल्लिखित है कि अग्नि ने वसिष्ठ से ईशानकल्प के अद्भुत चरित्रों से युक्त वृत्तान्त का जिसमें वर्णन किया है, वही अग्नि पुराण है —

---

1. मत्स्य 53/30.

अथातः संप्रवक्ष्यामि तवाग्नेय पुराणकम्।
ईशानकल्प वृत्तान्तं वसिष्ठायानलोऽब्रवीत्।।
तत्पञ्चदशसाहस्रं नाम्ना चरितमद्भुतम्।[1]

स्कन्द पुराण के अनुसार अग्नि पुराण का प्रधान लक्ष्य अग्नि का माहात्म्य प्रकाशित करना है।[2]

नारदीय पुराण के अनुसार अग्नि पुराण में पन्द्रह सहस्र श्लोक हैं, किन्तु मत्स्य और देवीभागवत में अग्नि पुराण की श्लोक संख्या सोलह सहस्र व भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त में इसकी श्लोक संख्या पन्द्रह हजार चार सौ बतायी गयी है।[3]

अग्नि पुराण में विविध विषयों का सन्निवेश आश्चर्यजनक है। इसमें तन्त्र, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, शिक्षा, योग, आयुर्वेद, गान्धर्व वेद, दर्शन, राजनीति, कोश आदि विविध विद्याओं का संक्षिप्त परिचय मिलता है। इसलिए यह भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में "समस्त विद्याओं का कोश" है। अग्नि पुराण विषय-वैचित्र्य के कारण पुराणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य है। गरूड़ और नारदीय पुराणों में भी विविध विद्याओं का वर्णन मिलता है किन्तु अग्नि पुराण में यह अधिक मात्रा में है। इसलिए अग्नि पुराण अपने को "विद्यासार" कहता है।

पुराण परम्परा में प्रसिद्ध सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित -- ये पाँच विषयों को प्रतिपादन विविध अध्यायों में किया गया है। इसमें अवतार तत्त्व के साथ रामायण, महाभारत एवं हरिवंश

---

1. नारदीय 1/99/1-2. 2. स्कन्द, शिवरहस्य खण्ड.
3. देवीभागवत 1/3/9, भागवत 12/13/5.

की कथाओं का सार दिया गया है। इस प्रकार अग्नि पुराण में भारतीय साहित्य और संस्कृति के समस्त विषयों का पूर्ण परिचय उपलब्ध है।

9. भविष्य पुराण

नारदीय और मत्स्य पुराण में भविष्य पुराण का लक्षण दिया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार जिस ग्रन्थ में ब्रह्मा जी ने सूर्य-माहात्म्य का वर्णन करके अघोरकल्प वृत्तान्त के प्रसंग में जगत् की स्थिति और भूतग्राम का लक्षण वर्णित किया है और जिसमें अधिकांशतः भविष्य के चरित्र का वर्णन किया गया है, वह भविष्य पुराण के नाम से विख्यात है --

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्प वृत्तान्त प्रसंगेन जगत्स्थितम्।।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।
चतुर्दश सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
भविष्य चरित प्रायं भविष्यं तदिहोच्यते।।[1]

इसी प्रकार नारदीय पुराण उल्लिखित है कि जिसमें अनेक आश्चर्यजनक कथाओं से युक्त अघोरकल्प का वृत्तान्त वर्णित है, वह भविष्य पुराण है --

अथातः संप्रवक्ष्यामि पुराणं सर्वसिद्धिदम्।
भविष्यं भवतः सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम्।

---

1. मत्स्य 53/31-32.

चतुर्दश सहस्रं तु पुराणं परिकीर्तितम्।।
भविष्यं सर्वदेवानां साम्य यत्र प्रकीर्तितम्।[1]

शिव पुराण के उत्तर खण्ड में लिखा है कि भविष्य का वर्णन होने से इसका नाम भविष्य पुराण पड़ा —
"भविष्योक्ते भविष्यकम्।"

अग्नि और नारदीय पुराण के अनुसार भविष्य पुराण में चौदह हजार श्लोक हैं किन्तु भागवत, ब्रह्मवैवर्त, देवीभागवत और मत्स्य पुराण में इसकी श्लोक संख्या चौदह हजार पाँच सौ बतायी गई है।[2]

भविष्य पुराण पाँच पर्वों में विभक्त है, ब्राह्म पर्व, वैष्णव पर्व, शैव पर्व, सौर पर्व और प्रतिसर्ग पर्व। इसमें कुल 605 अध्याय हैं। इसमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणों और पारसियों के रीति रिवाज और उनके सम्बन्ध में प्राचीन साहित्य का वर्णन है। कलि में उत्पन्न होने वाले विभिन्न राजवंशों के इतिहास जानने हेतु यह उपादेय ग्रन्थ है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति तथा भूगोल का सुन्दर वर्णन है। भविष्य पुराण में सूर्य-पूजा का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य-पूजा के द्वारा साम्ब को रोगमुक्त करने का वर्णन किया गया है।

- -

1. नारदीय 1/100/12-14.
2. अग्नि 2/272/1-24, भागवत 12/13, देवीभागवत 1/3.

10. ब्रह्मवैवर्त पुराण

मत्स्य पुराण में ब्रह्मवैवर्त पुराण का परिचय देते हुए वर्णित है कि रथन्तर कल्पवृत्तान्त के प्रसंग में सावर्णि मनु ने नारद से कृष्ण-माहात्म्य तथा वाराह-चरित्र का बारम्बार वर्णन किया है, वही ब्रह्मवैवर्त पुराण है --

रथन्तरस्यकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्।।
यत्र ब्रह्मवाराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः।
तदष्टादश साहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते।।[1]

इसी प्रकार नारदीय पुराण में ब्रह्मवैवर्त पुराण का लक्षण वर्णित है कि जिसमें भगवान् सावर्णि ने नारद से पुराण के अलौकिक अर्थ -- हरि तथा हर से प्रेम करना-बताया है तथा रथन्तर कल्प का वृत्तान्त वर्णित है, वह ब्रह्मवैवर्त पुराण है --

सावर्णि यत्र भगवान् साक्षाद् वर्ण्येऽर्थितः।
नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम्।।
धर्म्मार्थकाम मोक्षाणां सारं प्रीतिहरौहरे।
तयोरभेद सिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्।।[2]

शिव पुराण के उत्तर खण्ड में ब्रह्मवैवर्त पुराण के नामकरण का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ब्रह्मा के विवर्त प्रसंग का वर्णन करने के कारण इसका नाम ब्रह्मवैवर्त पुराण पड़ा -- "विवर्तनाद् ब्रह्मणस्तु

---

1. मत्स्य 53/33-34. 2. नारदीय 1/101/2-3.

ब्रह्मवैवर्तमुच्यते"। किन्तु स्वयं ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसका नाम ब्रह्मवैवर्त पड़ने का कारण इस प्रकार वर्णित है --

विवर्त ब्रह्म कात्स्न्येन कृष्णेन यत्र शौनका:।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविद:।।[1]

मत्स्य, नारदीय और शिव पुराण में वर्णित लक्षण एवं कथाओं का उपलब्ध ब्रह्मवैवर्त पुराण में एकता नहीं है। प्रचलित ब्रह्मवैवर्त पुराण में रथन्तरकल्प, नारद-सावर्णि संवाद, वराह वृत्तान्त और ब्रह्म-विवर्त प्रसंग का अभाव है। इस पुराण की विशेषता है कि इसमें भागवत पुराण के समान पुराण के दस लक्षण का उल्लेख हुआ है।

श्रीमद्भागवत, नारदीय, मत्स्य, शिव और स्वयं ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसकी श्लोक संख्या अष्टादश सहस्र बतायी गयी है।[2] यह पुराण चार खण्डों में विभक्त है। ब्रह्म, प्रकृति, गणेश और कृष्ण जन्म खण्ड। इसके आधे में प्रथम तीन खण्ड हैं और आधे में कृष्ण-जन्म खण्ड है। कृष्ण जन्म खण्ड दो भागों में विभाजित है -- पूर्व और उत्तर खण्ड।

ब्रह्मखण्ड में परब्रह्म द्वारा जगत् एवं जीवों की उत्पत्ति का वर्णन है। प्रकृति खण्ड में देवियों का चरित्र, जीवों का कर्मविपाक तथा प्रकृति का वर्णन मिलता है। गणेशखण्ड में गणेश जी का जन्म एवं चरित्र का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में श्रीकृष्ण का जन्म, एवं पावन चरित्र का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रधान प्रतिपाद्य विषय भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र चरित्र का सांगोपांग वर्णन करना

---

1. ब्रह्मवैवर्त 1/1/10.
2. भागवत 12/13, मत्स्य 53/34, नारदीय 1/101/5.

है। इसके आधे से अधिक भाग में कृष्ण-चरित्र का वर्णन होने के कारण यह वैष्णवों के "गले का हार" बना हुआ है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त श्रीकृष्ण-चरित्र का इतना विस्तृत वर्णन अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता है।

11. लिंग पुराण

शिव पुराण में लिखा है कि लिंग के चरित्र का वर्णन होने के कारण इसका नाम लिंग पुराण हुआ --

"लिंगस्य चरितोक्तत्वात् पुराणं लिंगमुच्यते।"

मत्स्य पुराण में लिंग पुराण का लक्षण लिखा है कि जिसमें अग्निलिंग के मध्य में स्थित होकर भगवान महेश्वर ने कल्पान्त में अग्नि को लक्ष्य कर धर्म का उपदेश किया है, उस पुराण को स्वयं ब्रह्मा ने लिंग पुराण कहा। इसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं --

यत्राग्निलिंग मध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः।
धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च।।
कल्पान्तं लिंगमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्।
तदेकादश साहस्रं फाल्गुन्यां य प्रयच्छति।।[1]

नारदीय पुराण में लिंग पुराण का परिचय देते हुए लिखा है कि वह्नि लिंग में रहते हुए भगवान् शिव ने धर्मादि की सिद्धि के लिए अग्नि कल्प की कथाओं का जिसमें वर्णन किया है, वह लिंग पुराण है। इसमें एकादश सहस्र श्लोकों में शिव-माहात्म्य वर्णित है --

---

1. मत्स्य 53/36-37.

यच्च लिंगाभिधे तिष्ठन् वह्निलिंगे हरोऽभ्यधात्।
मह्यं धर्मादिसिद्ध्यर्थमग्निकल्पकथाश्रयम्।।
पुराणं लिंगमुदितं बह्वाख्यान विचित्रितम्।
तदेकादशसाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम्।[1]

लिंग पुराण में उल्लिखित है कि ईशान कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में ब्रह्मा द्वारा जो पुराण कहा गया है, उसका नाम लिंग पुराण है--

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैंगमुत्तमम्।।

अधिकांश पुराणों में लिंग पुराण की श्लोक संख्या ग्यारह हजार वर्णित है। लिंग पुराण दो भागों में विभाजित है -- पूर्व और उत्तर भाग। इसमें शिवलिंग की पूजा विधान का सुन्दर वर्णन किया गया है। लिंग पुराण में भगवान् शिव के द्वारा सृष्टि का आविर्भाव वर्णित है। इसमें भगवान् शिव के अट्ठाईस अवतारों, शिव सम्बन्धी व्रतों एवं तीर्थों का वर्णन है। यहाँ लिंगोपासना का सुन्दर वर्णनउपलब्ध है। यह शिवतत्त्व मीमांसा के लिए बड़ा ही उपादेय है। यह शैवों का अतिविशिष्ट पुराण है।

---

1. नारदीय 1/102/2-4.

12. वाराह पुराण

प्रायः सभी पुराणों में वाराह पुराण क्रम में बारहवें क्रम पर परिगणित है, किन्तु श्लोक संख्या भिन्न-भिन्न वर्णित है। अग्नि, नारदीय और मत्स्य पुराण के अनुसार इसमें चौबीस सहस्र श्लोक हैं, किन्तु भागवत पुराण में वाराह पुराण की श्लोक संख्या पच्चीस हजार वर्णित है।

मत्स्य पुराण के अनुसार जिस ग्रन्थ में मानव कल्प के प्रसंग में विष्णु भगवान ने पृथ्वी के समक्ष महावाराह के माहात्म्य का वर्णन किया है, वह वाराह पुराण कहा गया --

महावाराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च।
विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद् वाराहमिहोच्यते।।
मानवस्य प्रसंगेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते।।[1]

नारदीय पुराण में वाराह पुराण का लक्षण वर्णित करते हुए लिखा है कि जिसमें मानव कल्प के प्रसंग में विष्णु का माहात्म्य वर्णित है, वह वाराह पुराण है। यह दो भागों से युक्त चौबीस हजार श्लोक का पुराण है --

भागद्वययुते शश्वद्विष्णुमाहात्म्यसूचकम्।।
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसंग मत्कृतं पुरा।
निबन्ध पुराणोऽस्मिंश्चतुर्विंशत्सहस्रके।।
व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि।[2]

---

1. मत्स्य 53/38-39. 2. नारदीय 1/103/1-3.

इस समय उपलब्ध वाराह पुराण में सत्रह हजार श्लोक हैं किन्तु नारदीय और मत्स्य पुराण के अनुसार इसमें चौबीस हजार श्लोक होना चाहिए। इसमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्ड हैं। इसमें भगवान् विष्णु विषयक विविध व्रतों का उल्लेख है। इसके मथुरा-माहात्म्य में मथुरा के तीर्थों का विस्तृत वर्णन है तथा नाचिकेतोपाख्यान में यम और नचिकेता की कथा के अन्तर्गत स्वर्ग और नरक का सुन्दर विवेचन हुआ है। इसमें शक्ति-महिमा तथा गणेश, कार्तिकेय, सूर्य, शिव एवं ब्रह्मा आदि के चरित्रों का भी निरूपण किया गया है।

13. स्कन्द पुराण

स्कन्द पुराण श्लोक संख्या की दृष्टि से सबसे बृहद् पुराण है। नारदीय पुराण के अनुसार स्कन्द पुराण में 81000 श्लोक हैं, किन्तु मत्स्य पुराण में इसकी श्लोक संख्या 81100 बतायी गई है तथा अग्नि पुराण में इसे 84000श्लोक का होना वर्णित है।[1]

मत्स्य पुराण में स्कन्द पुराण का परिचय देते हुए वर्णित है कि जिस पुराण में कार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म के विषय पर तत्पुरुष कल्प में शिव के चरित्रों का गुणगान किया है, वह इक्यासी सहस्र एक सौ श्लोकों में विस्तृत स्कन्द पुराण कहा जाता है --

यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ते चरित्रैरुपबृंहितम्।।

---

1. नारदीय 1/104/3, मत्स्य 53/43, अग्नि 272/17.

स्कन्दं नाम पुराणं तदेकाशीति निगद्यते।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते।।[1]

नारदीय पुराण में स्कन्द पुराण का लक्षण लिखा है कि इसके प्रत्येक पद में महादेव अवस्थित है। इसमें सात खण्ड और इक्यासी हजार श्लोक हैं। जहाँ कार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म विषय पर शिव-चरित्र का वर्णन किया है, वह स्कन्द पुराण है --

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं स्कन्द संज्ञकम्।
यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः।।
स्कान्दाह्वयस्यात्र खण्डाः सप्तैव परिकल्पिताः।
एकाशीति सहस्रन्तु स्कान्दं सर्वाघकृन्तनम्।।
यः शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः।
यत्र माहेश्वराधर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः।।[2]

नारदीय पुराण में स्कन्द पुराण के सात खण्डों का उल्लेख है -- माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, अवन्ती, नागर और प्रभास खण्ड। इन खण्डों के अवान्तर खण्ड भी हैं, किन्तु मत्स्य पुराण के अनुसार स्कन्द पुराण छः संहिताओं में विभक्त है -- सनत्कुमार, सूत, शंकर, वैष्णव, ब्राह्म और सौरसंहिता।

सम्प्रति स्कन्द पुराण के दो संस्करण उपलब्ध हैं। एक में सात खण्ड हैं और दूसरे में छः संहिताएँ हैं। स्कन्द पुराण अनेक आश्चर्य जनक आख्यानों से भरा हुआ है। शैवों के लिए यह परम आदरणीय ग्रन्थ है। प्राचीन भारत के भौगोलिक अध्ययन के लिये इसमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

---

1. मत्स्य 53/42-43.   2. नारदीय 1/104/1-4.

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड में वर्णित है कि कैलास शिखर पर देवताओं के समक्ष भगवान् शिव ने पार्वती से इस पुराण को कहा था। तत्पश्चात पार्वती नें कार्तिकेय से, कार्तिकेय ने नन्दी से, नन्दी ने अत्रिकुमार से तदनन्तर व्यास ने सूत से यह पुराण कहा था।

स्कन्द पुराण के माहेश्वर खण्ड का मुख्य प्रतिपाद्य विषय भगवान् शिव और पार्वती की विचित्र लीलाओं का मनोरम वर्णन करना है। वैष्णव खण्ड में मुख्य रूप से उड़ीसा के जगन्नाथ मन्दिर, उसकी प्रतिष्ठा और पूजा विधान तथा उससे सम्बन्धित विविध आख्यानों का वर्णन है। यह जगन्नाथ पुरी के ऐतिहासिक अध्ययन हेतु उपादेय है। ब्रह्म खण्ड में उज्जैन स्थित महाकाल की प्रतिष्ठा एवं पूजा-विधान का वर्णन किया गया है। काशी खण्ड में प्राचीन नगरी काशी का ऐतिहासिक वर्णन मनोरम ढंग से वर्णित है। इसमें काशी पुरी के देवताओं एवं शिवलिंग के आविर्भाव का चित्रण हुआ है। अवन्ती खण्ड का मुख्य विषय परम पावन नर्मदा नदी है। इसमें नर्मदा की उत्पत्ति तथा उसके तट पर स्थित तीर्थों का विस्तृत वर्णन किया गया है। नागर खण्ड में नर्मदा की सहायक नदी तापी के तट पर स्थित विभिन्न तीर्थों का वर्णन प्राप्त होता है। प्राचीन भारत की सामाजिक-दशा के अध्ययन हेतु यह उपादेय है। इसके अन्तिम प्रभास खण्ड में द्वारिकापुरी का भौगोलिक दशा को विशेष रूप से वर्णित किया गया है।

14. वामन पुराण

नारदीय पुराण में वामन पुराण का लक्षण करते हुए वर्णित है कि जिसमें त्रिविक्रम-चरित्र का चित्रण हुआ है तथा कूर्मकल्प का समाख्यान तथा त्रिवर्ग की कथा का निरूपण किया गया है, वह वामन पुराण है --

शृणु वत्स! प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम्।
त्रिविक्रमचरिताढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम्।।
कूर्मकल्प समाख्यानं वर्गत्रय कथानकम्।
भागद्वय समायुक्तं वक्तृश्रोतृशुभावहम्।।[1]

मत्स्य पुराण के अनुसार जिसमें ब्रह्माजी ने वामन के माहात्म्य का अवलम्बन करके त्रिवर्ग का विषय कीर्तन किया है, उसे वामन पुराण कहा गया --

त्रिविक्रम माहात्म्यधिकृत्य चतुर्मुखः।
त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामन परिकीर्तितम्।।
पुराणं दश साहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्।[2]

नारदीय और मत्स्य पुराण के अनुसार इसमें दस हजार श्लोक हैं। इसके दो खण्ड हैं -- पूर्व और उत्तर खण्ड।

पुलस्त्य ने सर्वप्रथम वामन पुराण को नारद से कहा था। नारद से व्यास को, व्यास से रोमहर्षण को प्राप्त हुआ तथा इन्होंने नैमिषारण्य में महर्षियों के समक्ष इस पुराण को सुनाया।

वामन पुराण में विष्णु के अवतारों की कथाओं के साथ वामन अवतार की कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें शिव-माहात्म्य,

---

1. नारदीय 1/105/1-2. 2. मत्स्य 53/44-45.

शैव तीर्थ, उमा-शिव का विवाह, गणेश-उत्पत्ति तथा कार्तिकेय चरित्र का वर्णन मिलता है। इसमें सृष्टि वर्णन तथा धर्म का निरूपण किया गया है।

वामन पुराण के प्रचलित संस्करण में 95 अध्याय हैं और वामन पुराण की पूर्व खण्ड की कथा ही वर्णित है। इसका उत्तर खण्ड नहीं मिलता है। अतः यह पुराण अपूर्ण है।

15. कूर्म पुराण

नारदीय पुराण में वर्णित है कि जिसमें लक्ष्मी-कल्प की कथा, हरि के कूर्मावतार और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है, वही कूर्म पुराण है --

शृणु वत्स। मरीचेऽद्य पुराणं कूर्मसंज्ञितम्।
लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्म्म वपुर्हरिः।।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यं च पृथक् पृथक्।[1]

मत्स्य पुराण के अनुसार जिस पुराण में कूर्म रूपी जनार्दन ने रसातल में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का माहात्म्य इन्द्रद्युम्न के प्रसंग में इन्द्र और ऋषियों के निकट वर्णन किया और जिसमें लक्ष्मी कल्प का विषय वर्णित है, वह कूर्म पुराण है --

यत्र धर्म्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः।।

---

1. नारदीय 1/106/1-2.

इन्द्रद्युम्न प्रसंगेन ऋषिभ्यः शक्र सन्निधौ।
अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषंगिकम्।।[1]

नारदीय पुराण के अनुसार कूर्म पुराण में 18000 श्लोक होना चाहिए किन्तु मत्स्य पुराण में इसकी श्लोक संख्या 17000 बतायी गयी है। कूर्म पुराण दो खण्डों में विभक्त है -- पूर्व और उत्तर खण्ड। पूर्व भाग में पार्वती की तपश्चर्या तथा उनके सहस्रनाम का उल्लेख है। इसमें काशीपुरी तथा प्रयाग का माहात्म्य वर्णित है। इसके उत्तर भाग में चारों आश्रम के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। ईश्वर-गीता के अन्तर्गत ध्यान-योग के द्वारा शिव के साक्षात्कार का वर्णन है। कूर्म पुराण में सर्वत्र शिव ही मुख्य देवता के रूप में वर्णित . . हैं।

सम्प्रति उपलब्ध कूर्म पुराण अपूर्ण है। इसमें केवल 6000 श्लोक हैं।

16. मत्स्य पुराण

नारदीय पुराण में मत्स्य पुराण का परिचय देते हुए वर्णित है कि व्यास जी ने जिसमें सात कल्पों के संक्षिप्त वृत्तान्त का वर्णन किया गया है और जिसके उपक्रम में नरसिंह का वर्णन हुआ है, वही मत्स्य पुराण है --

अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम।
यत्रोक्तं सप्त कल्पानां वृत्तं संक्षिप्य भूतले।।
व्यासेन वेदविदुषा नरसिंहोपवर्णनम्।
उपक्रम्य तद्उद्दिष्टं चतुर्दश सहस्रकम्।।[2]

- -

1. मत्स्य 53/47-48. 2. नारदीय 1/107/1-2.

स्वयं मत्स्य पुराण में लिखा है कि जिस पुराण में कल्प के आदि में जनार्दन ने मत्स्य रूप में नरसिंह वर्णन प्रसंग में सात कल्प का विषय वर्णित किया है, वही मत्स्य पुराण है --

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः।
मत्स्य रूपेण मनवे नरसिंहस्य वर्णनम्।।
अधिकृत्याब्रवीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः।[1]

नारदीय, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त और स्वयं मत्स्य पुराण के अनुसार मत्स्य पुराण में 14000 श्लोक हैं, किन्तु देवीभागवत में इसकी श्लोक संख्या 19000 बतायी गयी है।

मत्स्य पुराण में श्राद्धकल्प तथा उससे सम्बन्धित व्रतों का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। यहाँ सोमवंश तथा विशेष रूप से ययाति-चरित्र का वर्णन किया गया है। भगवान् शिव तथा त्रिपुरासुर के युद्ध का विस्तार-पूर्वक वर्णन हुआ है। इसके अलावा तारकासुर-वध की कथा भी यहाँ वर्णित है। तीर्थराज प्रयाग का भौगोलिक वर्णन तथा उसके महत्त्व का यहाँ सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। काशी और नर्मदा के माहात्म्य का वर्णन भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इसमें राजधर्म का भी सुन्दर विवेचन हुआ है।

मत्स्य पुराण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अष्टादश पुराणों के लक्षण का निर्देश किया गया है, जो पुराणों का परिचय प्राप्त करने में सहायक है।

यह पुराण रचना क्रम की दृष्टि से सोलहवाँ है, किन्तु देवी-भागवत के अनुसार यह पहला पुराण है। यह नारदीय पुराण में निर्देशित

---

1. मत्स्य 53/49-50.

सूची से पूर्ण मेल रखता है और इसकी श्लोक संख्या भी 14000 है। अतः सभी समालोचकों ने इसकी वास्तविकता और प्रमाणिकता स्वीकार की है।

17. गरूड़ पुराण

मत्स्य पुराण में गरूड़ पुराण का लक्षण वर्णित है कि विष्णु ने गरूड़ कल्प में गरूड़ के उद्भव के प्रसंग में विश्वाण्ड से आरम्भ करके जिस पुराण का वर्णन किया है, वह गरूड़ पुराण है --

यदा च गारूडे कल्पे विश्वाण्डाद्गरूडोद्भवम्।
अधिकृत्याऽब्रवीद्विष्णुर्गारूडं तदिहोच्यते।।
तदष्टादशकं चैव सहस्राणीह पठ्यते।[1]

इसी प्रकार नारदीय पुराण में लिखा है कि तार्क्ष्य कल्प की कथा से युक्त गरूड़ पुराण को भगवान् विष्णु ने गरूड़ को सुनाया है --

मरीचे! शृणु वक्ष्यामि पुराणं गारूडं शुभम्।
गारूडायाब्रवीत् पृष्ठो भगवान् गरूडासनः।।
एकोनविंशं साहस्रं तार्क्ष्य कल्प कथान्वितम्।।[2]

मत्स्य पुराण के अनुसार गरूड़ पुराण में 18000श्लोक हैं किन्तु नारदीय, भागवत, देवीभागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में उल्लिखित है कि गरूड़ पुराण में 19000 श्लोक हैं।[3]

---

1. मत्स्य 53/53-54. 2. नारदीय 1/108/1-2.
3. भागवत 12/13, देवीभागवत 1/3, ब्रह्मवैवर्त 4/113/

गरूड पुराण दो खण्ड में विभाजित है -- पूर्व और उत्तर खण्ड। इसके पूर्व खण्ड में भगवान् विष्णु के विविध अवतारों का माहात्म्य वर्णित है। इसमें नाना प्रकार की जीवनोपयोगी विद्याओं का वर्णन किया गया है। अनेक प्रकार के रत्नों की परीक्षा का विधान तथा राजनीति का सुन्दर विवेचन भी हुआ है। आयुर्वेद, छन्दशास्त्र और सांख्य-योग का भी गरूड पुराण में वर्णन मिलता है। विविध विद्याओं का संग्रह होने के कारण इसे "विद्याओं का कोश" कहा जाता है।

इसके उत्तर खण्ड में प्रेतकल्प का वर्णन किया गया है। यह हिन्दू समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसका श्रवण श्राद्ध-कर्म का एक अंग माना जाता है। इसमें नरक, यम का मार्ग, प्रेत का वास स्थान, प्रेत-योनि से मुक्ति, यम लोक का विस्तार, सपिण्डीकरण की विधि आदि का रोचक वर्णन किया गया है।

सम्प्रति उपलब्ध गरूड पुराण में मत्स्य पुराण में वर्णित लक्षण तथा नारदीय पुराण में दिये गये विषय वस्तु से मेल है, किन्तु श्लोक की संख्या कम है।

18. ब्रह्माण्ड पुराण

नारदीय पुराण में ब्रह्माण्ड पुराण का परिचय देते हुए लिखा है कि प्राचीन ब्रह्माण्ड पुराण आदि कल्प की कथाओं से युक्त है--

श्रृणु वत्स। प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डाख्यं पुरातनम्।
यच्च द्वादश साहस्रमादिकल्पकथायुतम्।।[1]

---

1. नारदीय 1/109/1.

किन्तु मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्माण्ड-माहात्म्य का अवलम्बन करके भविष्य कल्प का वृत्तान्त जिसमें विस्तारपूर्वक वर्णित है, वह ब्रह्माण्ड पुराण है --

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीद् पुनः।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्।।
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः।
तद् ब्रह्माण्ड पुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम्।।[1]

शिव पुराण के अनुसार ब्रह्माण्ड का भौगोलिक वर्णन होने के कारण इसका नाम ब्रह्माण्ड पुराण पड़ा --

ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्।
ब्रह्माण्डं चातिपुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः।।

नारदीय, भागवत, अग्नि और ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार ब्रह्माण्ड पुराण 12000 श्लोक हैं किन्तु मत्स्य पुराण में इसकी श्लोक संख्या 12200 तथा देवीभागवत एवं वायु पुराण में इसे 12100 श्लोक का वर्णित किया गया है।[2]

ब्रह्माण्ड पुराण तीन भागों में विभाजित है -- पूर्व, मध्यम और उत्तर भाग। इसमें चार पाद हैं -- प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात और उपसंहार पाद। प्रथम दो पाद पूर्व भाग में, तीसरा पाद मध्यम भाग में और चतुर्थ पाद उत्तर भाग में है।

---

1. मत्स्य 53/55-56.
2. भागवत 12/13, अग्नि 272/1-24, ब्रह्मवैवर्त 4/113/
   देवीभागवत 1/3, वायु 104/2-10.

इसके पूर्व भाग में विश्व के भूगोल का विस्तृत और रोचक वर्णन है। जम्बूद्वीप, पर्वत और नदियों का व्यापक वर्णन किया गया है। इसमें चन्द्रद्वीप, पुष्करद्वीप आदि का वर्णन भी मिलता है। इसके मध्यम भाग में क्षत्रिय-वंशों का ऐतिहासिक वर्णन अत्यन्त उपादेय है। ब्रह्माण्ड पुराण भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

प्रचलित ब्रह्माण्ड पुराण में नारदीय पुराण में वर्णित विषय-सूची की एकता है। मत्स्य पुराण में कथित भविष्यकल्प के वृत्तान्त का ब्रह्माण्ड पुराण के तीन अध्यायों में विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके 33 से 58 अध्याय तक भौगोलिक वर्णन उपलब्ध हैं।

--:: अध्याय - 1 ::--

यक्षों की उत्पत्ति एवम् स्वरूप

अ. यक्षों की उत्पत्ति एवं स्वरूप.

आ. कुबेर का ऐतिहासिक वर्णन --

1. कुबेर
2. कुबेरसभा
3. पुष्पक विमान
4. चैत्ररथ-वन.
5. अलकापुरी

इ. प्रमुख यक्ष --

1. कपिल
2. धन यक्ष
3. नलकूबर
4. पुष्पमित्र
5. पूर्णभद्र
6. मणिभद्र
7. मचक्रुक
8. मणिवर
9. रजतनाभ
10. शङ्.खचूर्ण
11. स्थूणाकर्ण
12. सुमन्यु
13. सूर्यवर्चा
14. संयोधकण्टक
15. सूर्यभानु
16. सुकेतु
17. हरिकेश.

ई. यक्षिणी --

1. उलूखलमेखला
2. ताटका
3. समा.

यक्षों की उत्पत्ति एवं स्वरूप

पुराणों के पंचलक्षणों में सृष्टि सर्वप्रथम और प्रधान लक्षण है। इसमें जगत् की सृष्टि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यक्षों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में विविध वर्णन हैं।

वायु, मार्कण्डेय, विष्णु, भागवत, गरूड, कूर्म, हरिवंश, और विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मा द्वारा यक्षों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। वायु और विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि प्रजापति ब्रह्मा ने रजस्तम प्रधान शरीर धारण कर क्षुधाकुल प्रजाओं को उत्पन्न किया। वह प्रजा भूख से पीड़ित होकर जल को भक्षण करने के लिए तैयार हो गयी। "हम जल को खा जायेंगे, नष्ट कर देंगे" ऐसा कहने वाले क्रूरकर्मा गुह्यक "यक्ष" कहलाये। "क्षि" धातु क्षयार्थक होने के कारण ही इसका नाम "यक्ष" पड़ा।[1]

मार्कण्डेय, भागवत और विष्णु पुराण में यक्षों की सृष्टि का वर्णन करते हुए लिखा है कि ब्रह्मा ने रजोमात्रात्मक शरीर धारण करके अंधकार में स्थित होकर क्षुधाग्रस्त, बड़े कुरूप और कृश दाढ़ी-मूँछ वाली प्रजा की सृष्टि की। वह प्रजा स्वयं ब्रह्मा को ही भक्षण करने के लिए प्रवृत्त हुई। "भक्षण करूंगा" ऐसा कहने के कारण वह "यक्ष" नाम से विख्यात हुआ।[2] हरिवंश पुराण के अनुसार ब्रह्मा के पैरों से यक्षगण

---

1. वायु 9/29-33, रामायाण 7/4/9-13, विष्णुधर्मोत्तर 1/107/16-21.
2. मार्कण्डेय 45/18-20, भागवत 3/20/19-21, विष्णु 1/5/41-43.

उत्पन्न हुए।[1] इसी प्रकार गरूड़ और कूर्म पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने तमोरजः शरीर से अंधकार में, क्षुधा से आविष्ट यक्षों को उत्पन्न किया।[2] विष्णु पुराण में उल्लेख है कि प्रजापति ब्रह्मा ने संकल्प के द्वारा यक्षों की सृष्टि की।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने संकल्पादि के द्वारा यक्षों को उत्पन्न किया। यह ब्रह्मा की अयोनिज सृष्टि थी। मन के संकल्प द्वारा उत्पन्न होने के कारण इसे मानसी या मानसिक सृष्टि भी कहते हैं।

जब संकल्पादि के द्वारा प्रजा की वृद्धि नहीं हो सकी, तब स्त्री-पुरूष के द्वारा मैथुनी सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। पुराणों में उल्लिखित है कि प्रजापति दक्ष ने अपनी कन्याओं का विवाह कश्यप मुनि से किया और उन्हीं कन्याओं से देवता, असुर, दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर, पिशाच आदि की उत्पत्ति हुई।[4] विविध पुराणों में कश्यप की पत्नियों के नाम एवं संख्या में भिन्नता दिखाई देती है।[5]

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि कश्यप-पत्नी खशा ने पुरूषादक (पुरूषों को भक्षण करने वाले) दो पुत्रों को उत्पन्न किया। विलोहित विकर्ण नामक ज्येष्ठ पुत्र, चतुर्भुज, चतुष्पाद, द्विमूर्धा, द्विधागति, सर्वांगकेश, स्थूलांग, तुंगनास, महोदर, स्थूलशीर्ष, महाकर्ण,

---

1. हरिवंश 3/20/10-11.
2. कूर्म 1/7/53, गरूड़ 4/28-30.
3. विष्णु 1/5/57-58. 4. मत्स्य 171/55-63.
5. कूर्म 1/16/17 स्कन्द, प्रभास 21/8, मत्स्य 6/1-2.

मुंजकेश, ह्रस्त्योष्ठ, दीर्घजंघ, अश्वदंष्ट्र, महाहनु, रक्तजिह्व, जटाक्ष, स्थूलास्य, दीर्घनासिक, गुह्यक, शितिकर्ण, महानन्द एवं महामुख से युक्त था। यह बड़ी क्रूर प्रकृति का था। यह उत्पन्न होते ही बढ़ गया था और अपनी माता को घसीटने लगा। यह अपनी माता को ही भक्षण करने के लिए उद्यत हो गया। "यक्ष" धातु भक्षण तथा कर्षण के अर्थ में प्रयुक्त होती है। "यक्षमति" उच्चारण के कारण कश्यप मुनि ने इस ज्येष्ठ पुत्र का नाम "यक्ष" रखा।[1] हरिवंश, पद्म, विष्णुधर्मोत्तर, अग्नि, मार्कण्डेय और विष्णु पुराण में भी वर्णित है कि ब्रह्मा ने यक्षों को उत्पन्न किया।[2] परन्तु नरसिंह में खसा को यक्षों की जननी कहा गया है।[3]

मत्स्य और हरिवंश पुराण के अनुसार क्रोधा ने यक्षों को उत्पन्न किया।[4] मत्स्य पुराण में ही वर्णित है कि यक्षों की उत्पत्ति विश्वा से हुई।[5] कूर्म पुराण में उल्लिखित है कि कश्यप-पत्नी मुनि से यक्षगण उत्पन्न हुए।[6] वायु पुराण के अनुसार प्रचेता के संयोग से गन्धर्व पुत्री सुयशा ने कम्बल, हरिकेश, कपिल, कांचन और मेघमाली नामक महाबलवान और पराक्रमी यक्षगणों को उत्पन्न किया। विशाल ने लोहेयी, भरता, कृशांगी और विशाला से क्रमशः लोहेय, भरतेय, कृशांगेय और विशालेय नामक यक्षगणों को उत्पन्न किया।[7]

---

1. वायु 69/75-100, ब्रह्माण्ड 2/7/38-60.
2. हरिवंश 1/3/118, पद्म 1/6/78, विष्णु धर्मोत्तर 1/197/3-9, अग्नि 1/19/18, ब्रह्म 3/105, विष्णु 1/*21/25, मार्कण्डेय 101/6.
3. नरसिंह 5/59.
4. मत्स्य 171/61, हरिवंश 3/14/63.
5. मत्स्य 6/46. 6. कूर्म 18/13.
7. वायु 69/10-16.

वायु पुराण में कम्पन नामक यक्ष के द्वारा केशिनी के गर्भ से यक्षों की उत्पत्ति का उल्लेख है।[1]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि खशा, क्रोधा, मुनि, स्वशा, सुयशा और केशिनी के गर्भ से यक्षगणों का जन्म हुआ।

विष्णुधर्मोत्तर, ब्रह्माण्ड और वायु पुराण में यक्षों के स्वरूप का वर्णन किया गया है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में यक्षों के स्वरूप का उल्लेख किया गया है। वे महाबलवान्, महान् पराक्रमी, विशालकाय, मायावी, क्रूर प्रकृति और भीषण आकृति से युक्त, इच्छानुसार स्वरूप धारण में समर्थ होते हैं। ये प्राणियों की हिंसा में तत्पर रहते हैं तथा कुत्सित एवं अखाद्य वस्तुओं का भक्षण करते हैं।[2] कश्यप जी ने इसे रक्त और चर्बी भक्षण करने का आदेश दिया था।[3]

महाभारत में यक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि यक्ष विकट नेत्रों, ताड के समान लम्बा और विशाल शरीर, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी और दुर्धर्ष आकृति से युक्त होता है। उसकी वाणी मेघ के समान गम्भीर, कठोर और अमंगलकारी होती है।[4] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में यक्ष के स्वरूप का उल्लेख निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है --

दंष्टाकरालवदनं पिंगलोद्धलोचनम्।।
आकर्णदारितास्य च स्थूलास्तागमुल्वणम्।
विकचं विकटाटोपं शंकुकर्णं विभीषणम्।।[5]

---

1. वायु 69/177-178.
2. वायु 69/108-109, ब्रह्माण्ड 2/7/68-70.
3. वायु 69/103.
4. वनपर्व 313/37-40.
5. विष्णुधर्मोत्तर 1/197/5-6.

मानसार में यक्षों के लक्षण का उल्लेख करते हुए लिखा है --

द्विभुजं च त्रिनेत्रं च करण्डमकुटान्वितम्।।
चरणाम्बर संयुक्तं राक्षसाकारवद् भवेत्।
श्यामवर्णं च पीतं च यक्षाणां वर्णमिव च।।[1]

हरिवंश पुराण के अनुसार यक्षों के शरीर काले और नेत्र लाल वर्ण के होते हैं।[2]

कुबेर
=====

धनाध्यक्ष कुबेर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराण और महाभारत में विविध वर्णन मिलता है। वायु, लिंग और ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लिखित है कि कुबेर विश्रवा ऋषि के ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनकी माता का नाम देववर्णिनी था।[3] परन्तु महाभारत के अनुसार पुलस्त्य-पत्नी गौ के गर्भ से उनका जन्म हुआ। पितामह की सेवा में सदैव रहने के कारण पुलस्त्य इनसे क्रोधित होकर अपने आधे शरीर से विश्रवा के रूप में प्रगट हुए थे।[4] वराह पुराण में वर्णित है कि सृष्टि की इच्छा करते हुए ब्रह्मा के मुख से निकले हुए वायु से धूल की प्रचण्ड वर्षा होने लगी। ब्रह्मा की आज्ञा से वही वायु शरीर धारण कर कुबेर के रूप में प्रकट हुआ।

- -

1. मानसार 58/1-2.   2. हरिवंश 3/52/29.
3. वायु 70/35-36, लिंग 1/63/61, विष्णु धर्मोत्तर 1/219/3-5, ब्रह्माण्ड 2/8/40, कूर्म 1/19/11, रामायण 7/3/4-6, स्कन्ध प्रभास 20/20.
4. वनपर्व 274/12-14.

ब्रह्मा द्वारा धन-रक्षा का दायित्व देने के कारण वे "धनपति" कहलाये। ब्रह्मा ने उन्हें "एकादशी का अधिष्ठाता" बना दिया।[1] श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार विश्रवा मुनि ने इडविला से यक्षराज कुबेर को उत्पन्न किया।[2] अग्निपुराण में उल्लिखित है कि विश्रवा द्वारा पुष्पोत्कटा के गर्भ से कुबेर नामक पुत्र हुआ।[3] पद्मपुराण में वर्णित है कि विश्रवा की पत्नी मंदाकिनी ने कुबेर को जन्म दिया।[4]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कुबेर विश्रवा मुनि के ज्येष्ठ पुत्र हैं, किन्तु उनकी माता के सम्बन्ध में पुराणों में मतवैभिन्नता दिखाई देती है।

वायु, ब्रह्माण्ड और स्कन्द पुराण में इनके स्वरूप का वर्णन किया गया है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है कि उनका विधान देवताओं का, श्रुति-ज्ञान ऋषियों का, रूप राक्षसों का तथा बल असुरों का था। उनके तीन चरण, विशाल शरीर, बहुत बड़ा सिर, आठ दाँत, हरे रंग की श्मश्रु, खूँटे जैसे कान, लाल वर्ण, एक छोटी और दूसरी बहुत बड़ी भुजा थी। देखने में उनका रूप पीत वर्ण का तथा परम भयानक था। वह माया तथा ज्ञान से सम्पन्न था।[5] स्कन्द पुराण में निम्नलिखित श्लोक में भी कुबेर की भयानक आकृति का उल्लेख हुआ है —

अष्टदन्तं हरिच्छ्मश्रुं शंकुकर्णं विलोहितम्।
श्वपादं ह्रस्वबाहुं च पिंगलं शुचिभूषणम्।।

---

1. संक्षिप्त वराह पुराण, पृष्ठ 81-82.
2. भागवत 4/1/37, भागवत 9/2/32.
3. अग्नि 1/11/2-4.   4. पद्म, पाताल 6/17-18.
5. वायु 70/36-38, ब्रह्माण्ड 2/8/41-43.

त्रिपादं तु महाकायं स्थूलशीर्षं महाहनुम्।
एवविधं सुत दृष्ट्वा विरूपं रूपतस्तदा।।
तदा दृष्ट्वा ब्रवीतं तु कुबेरोऽमिति स्वयम्।[1]

कुबेर के पर्याय के रूप में वैश्रवण, राजाधिराज, धनद, ऐडविड, गुह्यकेश, यक्षराज, नरवाहन, एकाक्षपिंगली, अलकाधिपति, धनाध्यक्ष आदि का प्रयोग हुआ है। कुत्सित शरीर से युक्त होने के कारण इनका नाम "कुबेर" पड़ा।[2] किन्तु स्कन्द पुराण में वर्णित है कि उमा पर दृष्टि पड़ने से इनकी बायीं आँख नष्ट हो गई थी। उमा के रूप पर ईर्ष्या करने के कारण इनका नाम "कुबेर" हुआ।[3] विश्रवा मुनि के समान आकृति होने से कुबेर का नाम "वैश्रवण" प्रसिद्ध हुआ --

यस्माद विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद विश्रवा इव।
तस्माद वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः।।[4]

पार्वती के तेजस्वी रूप को देखने से कुबेर की बायीं आँख जल गई और दूसरी आँख पिंगलवर्ण की हो गई थी, इसलिए उनका नाम "एकाक्ष पिंगली" पड़ गया।[5] मनुष्यों द्वारा ढोयी जाने वाली पालकी की सवारी पर चलने के कारण वे "नरवाहन" कहे जाते हैं।[6]

---

1. स्कन्द, प्रभास 20/21-23.
2. वायु 70/39, भविष्य, ब्राह्मखंड 125/28, ब्रह्माण्ड 2/8/44, और स्कन्द, प्रभास 20/23-24.
3. स्कन्द, काशी, 1/13/160.
4. वायु 70/40, रामायण 7/3/8, ब्रह्माण्ड 2/8/45.
5. स्कन्द, काशी 1/13/159, रामायण 7/13/24-31.
6. शांतिपर्व 59/119, वनपर्व 275/3.

स्कन्द पुराण के अनुसार शिव की तपस्या करके कुबेर निधियों, गुह्यकों, यक्षों, किन्नरों, राजाओं तथा धन के स्वामी और भगवान शिव के मित्र हुए।[1] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि ब्रह्मा की तपस्या करके वैश्रवण लोकपाल व अक्षय निधि के स्वामी बने तथा तेजस्वी पुष्पक विमान को सवारी के लिए प्राप्त किया।[2]

कुबेर उग्र तपस्या से भगवान शिव को प्रसन्न करके उनके सखा हुए तथा पद्मादि नवनिधियों के दाता और भोक्ता हुए।[3] उन्होंने शिव की उपासना करके चतुर्थ दिक्पाल, धनाध्यक्ष और शिव-सखा का वर प्राप्त किया।[4]

ब्रह्म पुराण में वर्णित है कि उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर पूर्व में लंका के अधिपति थे। रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण उनके सौतेले भाई थे। ब्रह्मा द्वारा दिये गये पुष्पक विमान में कुबेर अपने भाईयों के साथ आते-जाते थे। रावण ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके, मामा, मातामह और माता से प्रेरित होकर कुबेर से लंका का आधिपत्य माँगा। रावण ने कुबेर से पुष्पक विमान, लंकापुरी और उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली। तदनन्तर वैश्रवण ने गौतमी के तट पर शिव की स्तुति की और उन्हें प्रसन्न करके दिक्पाल और धनपाल की पदवी प्राप्त की।[5]

---

1. स्कन्द, काशी 1/13/155-157.
2. वाल्मीकि रामायण 7/3/11-19.
3. स्कन्द, काशी 1/13/31-32, स्कन्द, प्रभास 290/38.
4. स्कन्द, प्रभास 290/36.   5. ब्रह्म 97/1-29.

वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से कुबेर पर आक्रमण किया। रावण और कुबेर के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। कुबेर ने गदा से रावण के मस्तक पर प्रहार किया। तत्पश्चात् रावण द्वारा गदा से कुबेर के मस्तकपर आघात करने से वे रक्त से नहा उठे और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय पद्म आदि निधियों के अधिष्ठाता देवताओं ने उन्हें उठाकर नन्दन वन में ले गये। कुबेर को जीत कर रावण ने विजय-चिह्न के रूप में उनका पुष्पक विमान को अपने अधिकार में कर लिया।[1]

वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि रावण ने प्रहस्त को दूत बनाकर कुबेर के पास भेजा और लंकापुरी को लौटाने कहा था। तदनन्तर कुबेर अपने अनुचरों सहित लंका को रावण के लिए छोड़कर कैलास पर्वत पर चला गया और वहाँ अलकापुरी नामक नगरी बसायी।[2]

रावण के अत्याचार का समाचार पाकर कुबेर ने उसके पास एक दूत भेजकर समझाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उनके संदेश को सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ और अपने तलवार से दूत के दो टुकड़े कर दिये।[3]

महाभारत में उल्लिखित है कि ब्रह्मा की तपस्या से वर प्राप्त करके रावण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर को युद्ध में परास्त किया और उन्हें लंका से बहिष्कृत किया। लंका को त्याग कर कुबेर अपने अनुचरों गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा किम्पुरुषों के साथ गन्धमादन पर्वत पर रहने लगा। रावण ने कुबेर पर आक्रमण करके उनका पुष्पक विमान भी छीन लिया। उस समय

---

1. वाल्मीकि रामायण 7/15/29-38.
2. वाल्मीकि रामायण 7/11/30-52, विष्णुधर्मोत्तर 1/220/31-34.
3. वाल्मीकि रामायण 7/13/32-40, विष्णुधर्मोत्तर 1/122/2-3.

कुबेर ने रावण को शाप दिया — "यह विमान उसकी सवारी नहीं होगा। युद्ध में जो उसे मारेगा, उसी का यह वाहन होगा। सज्जनों का अपमान करने के कारण शीघ्र ही उसका नाश होगा।" विभीषण ने सदा कुबेर का अनुसरण किया, इसलिए कुबेर ने संतुष्ट होकर उसे यक्ष-राक्षस का सेनापति बनाया।[1]

वायु पुराण के अनुसार कुबेर पुलस्त्य, अगस्त्य और विश्वामित्र गोत्र में उत्पन्न यक्षों और राक्षसों का राजा था।[2] ब्रह्मा जी ने कुबेर को राजाओं, यक्षों, राक्षसों, गुह्यकों, धनों और रत्नों का आधिपत्य प्रदान किया था।[3] कुबेर ने धनदेश्वर लिंग की स्थापना करके अलकापुरी के स्वामी हुए और धनद का पद प्राप्त किया।[4]

महाभारत के अनुसार कुबेर ने कुबेर-तीर्थ में तपस्या करके धनाध्यक्ष का पद प्राप्त किया। वहीं उनके पास धन और निधियाँ आ गयीं। तदनन्तर कुबेर ने रुद्र के साथ मित्रता की और धन का स्वामित्व, देवत्व, लोकपालत्व और नलकूबर नामक पुत्र प्राप्त किया। वहीं आकर देवताओं ने उनका अभिषेक किया, उनके लिए दिव्य पुष्पक विमान दिया और उन्हें यक्षों का राजा बनाया।[5]

वराह पुराण के अनुसार एकादशी के दिन स्वयं पके हुए फल के आहार लेकर व्यक्ति व्रत करता है, तो कुबेर उसकी कामनाएँ पूर्ण करते

---

1. वन 275/32-37.
2. वायु 69/196-197, वायु 70/52-54.
3. वायु 70/7, ब्रह्माण्ड 2/8/7-8, हरिवंश 3/37/9.
4. स्कन्द, प्रभास 36/2-3. 5. शल्य पर्व 47/25-31.

है।[1] स्कन्द पुराण में लिखा है -- "कुबेर दरिद्रता का नाश करने वाला है। पंचमी को भक्तिभाव से कुबेर की पूजा करने से अनुपम निधि की प्राप्ति होती है।[2] वराह पुराण में लिखा है कि कुबेर की नगरी का नाम महोदयापुरी है। वहाँ वैदूर्यमणि से बनी हुई वेदियाँ हैं।[3]

कुबेर की सेवा से प्रसन्न होकर पितामह ब्रह्मा ने उन्हें अमरत्व प्रदान किया, धन का स्वामी तथा लोकपाल बनाया, उनकी शिव से मैत्री करायी, उन्हें नलकूबर नामक पुत्र दिया, लंका को उनकी राजधानी बनायी, उन्हें पुष्पक विमान दिया तथा यक्षों का स्वामी बनाया और राजराज की पदवी प्रदान की।[4]

रामायण के अनुसार कैलास में विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कुबेर का रमणीय भवन है। वहाँ स्थित सरोवर में यक्षों के साथ कुबेर भी विहार करते हैं। कुबेर विश्ववंदनीय एवं धनदाता हैं।[5]

कुबेर अलकापुरी में पधारे हुए अष्टावक्र मुनि को ससम्मान भवन में ले गये और उन्हें पाद्य, अर्घ्य तथा आसन प्रदान किया। तत्पश्चात उनके आतिथ्य-सत्कार के लिए भव्य संगीत का आयोजन किया। उस समय अप्सराओं तथा गन्धर्वों का नृत्य-गान हुआ।[6]

भारद्वाज मुनि के आह्वान पर कुबेर ने भरत की सेना के आतिथ्य-सत्कार के लिए बीस हजार दिव्य महिलाएँ प्रेषित किया था।[7]

---

1. वराह 30/ 2. स्कन्द, प्रभास 293/1-2.
3. वराह 76/
4. वनपर्व 274/15-17, विष्णुधर्मोत्तर 1/219/5-7.
5. वाल्मीकि रामायण 4/43/21-23.
6. अनुशासन पर्व 19/37-46. 7. रामायण 2/91/44.

रंभा में आसक्त होकर सेवा में ठीक समय पर उपस्थित नहीं होने पर कुबेर ने तुम्बुरु को राक्षस होने का शाप दिया था।[1] कुबेर के मित्र राक्षसराज मणिमान् ने महर्षि अगस्त्य के मस्तकपर थूक दिया था, जिससे उन्होंने क्रोधित होकर कुबेर को शाप दिया था कि यह दुष्ट मणिमान् समस्त सैनिकों के साथ एक मनुष्य से मारा जायेगा। इन सैनिकों के मारे जाने पर कुबेर उस मनुष्य का दर्शन करके शापमुक्त होगा।[2] इसी शाप के कारण भीमसेन के द्वारा सहस्रों योद्धाओं सहित मणिमान् मारा गया।[3]

तारकामय संग्राम में कुबेर और कालनेमि का उत्तर दिशा में भयंकर संग्राम हुआ। इस युद्ध में कालनेमि ने अपने परिघों से वैश्रवण को पराजित कर दिया था।[4] हरिवंश पुराण के अनुसार अनुह्लाद दैत्य और कुबेर के मध्य महान् युद्ध हुआ था। अन्त में कुबेर रणभूमि को त्याग कर इन्द्र के पास चले गये थे।[5]

कुबेर की भार्या का नाम ऋद्धि था। उसने नलकूबर को उत्पन्न किया।[6] भागवत पुराण में वर्णित है कि नलकूबर और मणिग्रीव कुबेर के पुत्र थे। एक दिन वे मदिरापान करके मदोन्मत्त हो स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा कर रहे थे। तदनन्तर वहाँ नारद आ गये। उन्हें देखकर वस्त्रहीन अप्सराओं ने कपड़ा पहन लिया, किन्तु इन यक्षों ने कपड़ा धारण नहीं किया। तब नारद ने उन्हें वृक्ष योनि में जाने का शाप दिया। नलकूबर

---

1. रामायण 3/4/16-19.
2. वनपर्व 161/60-61.
3. वनपर्व 160/59-76.
4. मत्स्य 177/49.
5. हरिवंश 3/60/1-74.
6. वायु 70/41, ब्रह्माण्ड 2/8/46.

और मणिग्रीव ही यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुए और श्रीकृष्ण ने उनका उद्धार किया।[1] स्कन्द पुराण में कुबेर की पत्नी का नाम वृद्धि बताया गया है।[2]

यक्षों ने कुबेर को बछड़ा बनाकर पृथ्वी से कच्चे पात्र में अन्तर्धान-विद्यारूपी दूध का दोहन किया था।[3] राक्षसों और पिशाचों ने पृथ्वी से कपाल रूपी पात्र में रक्तमय दूध का दोहन कुबेर को दोग्धा बनाकर दिया था।[4] महाभारत के अनुसार कुबेर ने राजा पृथु को राजा के पद पर अभिषेक करते समय पर्याप्त धन दिया था।[5] स्कन्द पुराण में वर्णित है कि विश्वामित्र के शिष्य कौत्स को गुरु दक्षिणा की पूर्ति के लिए रघु राजा कुबेर पर आक्रमण का विचार किया था, जिससे कुबेर ने अयोध्या में सुवर्ण की अक्षय वर्षा की थी।[6]

अग्नि पुराण में कुबेर के पर्याय के रूप में गुह्यकेश, यक्षराज, राजराज, धनाधिप आदि पर्याय उल्लिखित हैं।[7] अमरकोष में कुबेर से सम्बन्धित विवरण दिया गया है --

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः।
मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः।।

---

1. भागवत 10/10/2-23, ब्रह्म 184/37-40, अग्नि 1/12/16-17.
2. स्कन्द, प्रभास 20/24.
3. मत्स्य 10/22, हरिवंश 1/6/32-33, वायु 62/184-185, स्कन्द, प्रभास 336/159, ब्रह्म 4/105, द्रोणपर्व 69/24.
4. स्कन्द, प्रभास 336/161-163.
5. शांति पर्व 59/119.
6. स्कन्द, वैष्णव, अयोध्या, अध्याय 3-4.
7. अग्नि 2/260/19.

किन्नरेशो वैश्रवण: पौलस्त्यो नरवाहन:।
अक्षिकपिंगिलविल श्रीद पुण्यजनेश्वर:।।
अस्योद्यानं चैत्ररथं पुत्रस्तु नलकूबर:।
कैलास: स्थानमलकापूर्विमानन्तु पुष्पकम्।।[1]

इसी प्रकार हलायुधकोष में इनके सम्बन्ध में वर्णित है --

ऐलविल: पौलस्त्यो वैश्रवणा किन्नरेश्वरो धनद:।
श्रीद: श्रीकण्ठसखो मनुष्यधर्मा धनाध्यक्ष:।।
उत्तरदिशापतिर्यक्ष कुबेरो नरवाहन:।
गुह्यको राजराजश्च धनी पुण्यजनेश्वर:।।
उद्यानं स्याच्चैत्ररथं विमानं चास्य पुष्पकम्।
अलकानगरी क्षेया पुत्रस्तु नलकूबर:।।[2]

शिवपुराण और स्कन्दपुराण में वर्णित है कि पूर्व जन्म में कुबेर गुणानिधि नामक ब्राह्मण था। वह ब्राह्मण कर्म से च्युत होकर द्यूत क्रीड़ा करने लगा था, जिससे उसके पिता ने उसे त्याग दिया। एक दिन वह शिव-मन्दिर में नैवेद्य चुराते हुए पकड़ा गया और उसे प्राण दण्ड मिला। शिव कृपा से वह शिवलोक पहुँचा और दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए शिव-पार्वती की सेवा करते रहे। कालान्तर में वह कलिंगराज अरिंदम का दम नामक पुत्र हुआ। बाल्यकाल से ही वह शिव का भजन-कीर्तन करता था। पिता के परलोक सिधारने पर राजा दम अपने राज्य में शिव-मन्दिर में दीपदान करना सबके लिए अनिवार्य कर दिया था। उन्होंने शिवालयों में दीप जलवाये और जन्मान्तर में अलकापुरी के स्वामी कुबेर हुए।[3]

---

1. अमरकोष 1/68-70. 2. हलायुधकोष 1/78-79 एवं 83.
3. शिवपुराण, रुद्र संहिता, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 115, स्कन्द, काशी 1/13/31-132.

पादमकल्प में उन्होंने विश्रवा के पुत्र वैश्रवण के रूप में जन्म लिया। अत्यन्त उग्र तपस्या के द्वारा उन्होंने महादेव की आराधना करके विश्वकर्मा रचित अलकापुरी का उपभोग किया। मेघवाहन कल्प में, यज्ञदत्त के पुत्र गुणनिधि के रूप में दीपदान के प्रभाव को जानकर शिव की पूजा की। शिवलिंग की प्रतिष्ठा करके कुबेर ने दस हजार वर्ष तक तपस्या की। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें निधियों, गुह्यकों, यक्षों, किन्नरों, राजाओं और पुण्यजनों का स्वामी तथा धनदाता बनाकर उन्हें अपना सखा कहा और अलकापुरी के निकट शिवजी रहने लगे।[1]

पद्मपुराण में वर्णित है कि नर्मदा-कावेरी संगम में स्नान करके कुबेर ने सौ दिव्य वर्षों तक शिवजी की भारी तपस्या की। भगवान् महेश्वर ने प्रसन्न होकर यक्षों का स्वामी होने का वर दिया। वर पाकर कुबेर अलकापुरी में गये। यक्षों ने उन्हें राजा के पद पर अभिषिक्त किया।[2] पितामह ने राजाओं के राज्य पर कुबेर का अभिषेक किया।[3]

भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा पर कुबेर ने तेजस्वी वानर गन्धमादन को उत्पन्न किया था।[4] भारद्वाज मुनि ने भरत की सेना का सत्कार करने के लिए कुबेर के दिव्य चैत्ररथ नामक उपवन का आवाहन किया था।[5] धनाध्यक्ष कुबेर सार्वभौम नामक दिग्गज पर सवारी करते हैं।[6] राम के समक्ष उपस्थित सीता के अग्नि-प्रवेश के पश्चात् कुबेर ने

- -

1. शिवपुराण, रुद्र संहिता, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 116, स्कन्द, काशी 1/13/133-158.
2. पद्म, स्वर्ग, 16/5-10.
3. हरिवंश 1/4/3.
4. वा.रा. 1/17/12.
5. वा.रा. 2/91/19.
6. वा.रा. 6/4/19.

देवताओं के साथ, श्रीराम की देवी सीता की उपेक्षा के लिए, भर्त्सना की।[1] रावण ने कुबेर के फाटक पर स्थित उनके सूर्यभानु नामक द्वारपाल का वध कर दिया था।[2] कुबेर रावण से युद्ध के लिए अपने शुक्र और प्रोष्ठपद नामक मंत्री के साथ गये थे।[3] ब्रह्मा के आदेशानुसार कुबेर ने हनुमान् को वर दिया था कि कुबेर गदा युद्ध में उसका वध न कर सकेगा और युद्ध में उसे कभी विषाद न होगा।

वरं ददामि संतुष्टं अविषादं च संयुगे।
गदेयं मामिका नैनं संयुगेषु वधिष्यति।।[4]

भरत का आतिथ्य-सत्कार करने के लिए भरद्वाज मुनि ने कुबेर का भी आवाहन किया था।[5] कुबेर नगरी अलकापुरी का एक नाम वस्वौकसारा भी है।[6] रावण से युद्ध के लिए उपस्थित कुबेर ने रावण के मंत्रियों को अनेक प्रकार से फटकारा तथा उन पर शस्त्रों द्वारा प्रहार किया, इससे आहत होकर मारीच आदि सब राक्षस युद्ध से भाग गये।[7]

भागवत पुराण के अनुसार राजा के शरीर में विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, वरुण आदि देवताओं के अंश विद्यमान होते हैं।[8] राजा पृथु को कुबेर ने स्वर्ण निर्मित मनोहर सिंहासन प्रदान किया था।[9] कुबेर ने भगवान् वामन को उपनयन-संस्कार के समय भिक्षा-पात्र दिया था।[10] कुबेर ने ध्रुव को भगवत्स्मृति का वर प्रदान किया था।[11]

---

1. वा.रा. 6/117/9. 2. वा.रा. 7/14/25.
3. वा.रा. 7/15/16. 4. वा.रा. 7/36/16-17.
5. वा.रा. 2/91/13. 6. वा.रा. 2/94/26.
7. वा.रा. 7/15/28. 8. भागवत 4/14/26-27.
9. भागवत 4/15/14. 10. भागवत 8/18/17.
11. भागवत 4/12/9.

कुबेर-सभा

महाभारत के अनुसार कुबेर-सभा एक सौ योजन लम्बी और सत्तर योजन चौड़ी है। यह श्वेत वर्ण की आभा से युक्त है। कुबेर ने तपस्या के द्वारा इसे प्राप्त किया है। यह रत्नों से निर्मित, विचित्र झाँकी युक्त, आकर्षक और दिव्य सुगंध युक्त श्वेत बादलों के समान दिखायी देती है। इसकी दीवारें सुनहले रंगों से चित्रित हैं। इस सभा में दिव्य चमकीले बिछौने से ढके और दिव्य पादपीठों से युक्त श्रेष्ठ सिंहासन हैं, जिसमें कुबेर बैठते हैं।[1]

यहाँ सौगंधिक कानन, अलका नामक पुष्करिणी और नन्दन-वन की सुगन्धयुक्त शीतल वायु बहती है। नृत्य और गीत में कुशल सहस्रों अप्सराओं और गन्धर्वों के समुदाय वहाँ दिव्य वाद्य, नृत्य और गीतों से कुबेर की सेवा करते हैं। मिश्रकेशी, रम्भा, घृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी आदि सहस्रों अप्सराएँ तथा मणिभद्र, श्वेतभद्र, प्रद्योत, कुस्तुम्बुरु, गजकर्ण, वराह-कर्ण, हंसचूर्ण आदि किन्नर, पिशाच, गुह्यक एवं यक्ष लाखों की संख्या में उस सभा में कुबेर की सेवा करते हैं।[2]

लक्ष्मी देवी, नारद, नलकूबर, देवी पार्वती और भगवान् शिव तथा भूतप्रेतादि कुबेर सभा में सदैव रहते हैं। विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, पर्वत, शैलूष, चित्ररथ और चित्रसेन आदि सैकड़ों गन्धर्व कुबेर की उपासना करते हैं। शंखपद्मादि निधियाँ भी कुबेर की सेवा और आराधना करती हैं।[3]

---

1. सभापर्व 10/1-6.
2. सभापर्व 10/7-18.
3. सभापर्व 10/19-39.

इस तरह कुबेर की सभा में देव, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, पिशाच, विद्याधर, निशाचर आदि उपस्थित रहते हैं। यह सभा आकाश में विचरती रहती है और श्वेत बादल की तरह दिखाई देती है।[1]

वायु पुराण में उल्लिखित है कि कुबेर के सभा-भवन का नाम विपुला है। यह कुबेर-नगर अलकापुरी के मध्य में स्थित है। उस सभा में पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, शंख, नील और निधि श्रेष्ठ नन्दन नामक अष्ट अक्षय दिव्य महानिधि स्थित हैं।[2]

पुष्पक विमान

कुबेर ने तेजस्वी पुष्पक विमान को ब्रह्मा जी से प्राप्त किया था। रामायण, महाभारत और पुराण में इस विमान के सम्बन्ध में विविध वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि पुष्पक विमान में सोने के खम्भे और वैदूर्यमणि के फाटक, मणि और सुवर्ण की सीढ़ियाँ तथा सोने की वेदियाँ बनी थीं। यह मोतियों की जाली से ढका हुआ था। वह मन के समान तीव्रगामी, चालक के इच्छानुसार चलने वाला तथा इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ था। वह देवताओं का वाहन था और उसमें टूट-फूट नहीं होता था। वह सदा सुन्दर और चित्त को प्रसन्न करने वाला था। वह विचित्र चित्रों से चित्रित था। वह मनोवांछित वस्तुओं से सम्पन्न और परम उत्तम था।

---

1. सभापर्व 10/40.
2. वायु 41/5-11.

वह सभी ऋतुओं में आराम पहुँचाने वाला तथा मंगलकारी था। वह न अधिक ठण्डा और न अधिक गरम था।[1] वह सूर्य के समान प्रकाशित था। वह अत्यन्त रमणीय तथा विशाल था।[2]

मेघ के समान ऊँचा, सुवर्ण के समान क्रांति युक्त मनोहर पुष्पक विमान भूतल पर बिखरे हुए स्वर्ण के समान जान पड़ता था। अपनी कांति से प्रज्वलित, अनेकानेक रत्नों से युक्त वह विमान पर्वत शिखर के समान सुशोभित था। उस विमान का आधार भाग सोने और मणियों के द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्वत-मालाओं से बनाया गया था। उसमें हरे-भरे पत्तों, पुष्पों और फलों से युक्त वृक्षों, सुन्दर पुष्पों से सुशोभित पोखरों तथा अद्भुत सरोवरों से चित्रित श्वेतवर्ण के भवन बने हुए थे। उसमें नीलम, चाँदी और मूँगों के पक्षी बनाये गये थे। नाना प्रकार के रत्नों से विचित्र वर्ण के सर्प बने हुए थे। उसके कमलमंडित सरोवर में हाथी लक्ष्मी देवी का अभिषेक करते हुए चित्रित किये गये थे।[3] इस प्रकार पुष्पक विमान अनेकानेक विचित्र चित्रों से चित्रित था। विश्वकर्मा ने इसे बनाया था। वह आकाश में सौर चिन्ह सा सुशोभित होता था। विमान का प्रत्येक अंग बहुमूल्य रत्नों से जटित था। स्वामी के मन में जहाँ भी जाने का संकल्प होता था वहीं वह पहुँच जाता था। स्वामी के मन का अनुसरण करते हुए वह वायु के समान शीघ्रता से चलता था। यह चन्द्रमा के समान निर्मल और मन को आह्लाद प्रदान करने वाला था। वह वसन्त ऋतु से भी अधिक सुहावना और अद्भुत शिखरों से युक्त था।[4]

---

1. वा. रा. 7/15/38-42. 2. वा. रा. 3/55/29-30.
3. वा. रा. 5/7/5-15. 4. वा. रा. 5/8/1-8.

रत्नों से विभूषित पुष्पक विमान को ब्रह्मा जी के लिए स्वर्ग-लोक में विश्वकर्मा ने बनाया था। कुबेर ने उसे ब्रह्मा से उग्र तप करके प्राप्त किया था और कुबेर को युद्ध में परास्त करके रावण ने उसे छीन लिया था। उसमें सोने-चाँदी के सुन्दर स्तम्भ बने थे। उसमें अनेकानेक गुप्त गृह और मंगल-भवन बने हुए थे। पुष्पक विमान में सोने और स्फटिक के झरोखे और खिड़कियाँ, इन्द्रनील और महानील मणियों की श्रेष्ठतम वेदियाँ बनायी गयी थीं। उसके फर्श मूँगे, मणियों तथा अनुपम मोतियों से जड़ी हुई थीं। वह नाना प्रकार की सुन्दर अट्टालिकाओं से विभूषित था। उसमें विविध प्रकार के पेय, भक्ष्य और अन्न की दिव्य गंध फैलती थी।[1]

पुष्पक विमान का प्रत्येक अंग सोने से जड़ा हुआ था। उसकी वेदियाँ वैदूर्यमणि से बनीं थीं। उसका गुप्त-गृह चाँदी के समान चमक रहा था। उसमें श्वेत-पीत वर्ण की पताकाओं और ध्वजों का अलौकिक सौन्दर्य था। उसकी अट्टालिकाएँ सोने के कमलों से सुसज्जित थीं। उसमें बँधे हुए घंटों से मधुर ध्वनि निकलती रहती थी। वह मोती और चाँदी से सुसज्जित बड़े-बड़े कमरों से विभूषित था। वैदूर्य-मणि से बने हुए बहुमूल्य सिंहासन पर महामूल्यवान् बिस्तर लगे हुए थे। मन के समान वेगवान् और इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान को देखकर राम-लक्ष्मण आश्चर्यचकित हो गये थे। श्रीराम अपने सेनापतियों के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या आये थे।[2]

तत्पश्चात श्रीराम की आज्ञा पाकर वह विमान कुबेर की सेवा में चला गया था।[3] वायुपुराण के अनुसार "पुष्पक विमान नाना

---

1. वा. रा. 5/9/11-19. 2. वा. रा. 6/121/24-30.
3. वा. रा. 6/127/62-63.

रत्नों से विभूषित और सोने के तारों से मढ़ा हुआ सुन्दर महाविमान है। यह सभी भोग्य पदार्थों से युक्त, मन की तरह शीघ्रगामी और स्वामी के इच्छानुसार चलने वाला विमान है। यह कुबेर की सवारी में काम आता है।[1] वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि ब्रह्माजी ने वैश्रवण को सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पक विमान की सवारी के लिए देकर उन्हें देवता के समान बना दिया।[2] कुबेर को युद्ध में परास्त करके रावण ने पुष्पक विमान को अपने अधिकार में कर लिया था।[3]

महाभारत के अनुसार पुष्पक विमान को अपने अधिकार में लेने के कारण कुबेर ने रावण को शाप दिया था "यह विमान उसकी सवारी नहीं बन सकेगा, युद्ध में उसका वध करने वाले का यह वाहन होगा। शीघ्र ही उसका नाश होगा।"[4]

पद्मपुराण में उल्लिखित है कि श्रीराम ने तपस्यारत शम्बूकशूद्र का वध करने के लिए प्रस्थान करते समय पुष्पक विमान का आवाहन किया था। उस समय पुष्पक विमान एक ही मुहूर्त में उनके समीप उपस्थित हो गया था। तत्पश्चात् श्रीराम अस्त्र-शस्त्र लेकर विमान में आरूढ़ हुए। श्रीराम के इच्छानुसार स्वर्ण से विभूषित वह विमान दक्षिण दिशा की ओर चला गया।[5] श्रीराम ने लंका के राजा विभीषण से मिलने हेतु लंका जाने के लिए पुष्पक विमान का स्मरण किया था। तदनन्तर विमान पर राम और भरत आरूढ़ होकर भरत को विभिन्न स्थानों को बताते हुए किष्किन्धा पुरी पहुँचे। फिर सुग्रीव को साथ में लेकर लंका पहुँचे।[6]

---

1. वायु. 41/6-7.
2. वा.रा. 7/3/19.
3. वा.रा. 7/15/37-38, ब्रह्म 97/11-12, शल्यपर्व 47/31, वन पर्व 274/17, पद्म, पाताल 7/5.
4. वन पर्व 275/34-35
5. सं.पद्म सृष्टि पृष्ठ 115.
6. सं.पद्म सृष्टि पृष्ठ 122-124.

महाभारत के अनुसार विश्वकर्मा रचित कुबेर का पुष्पक विमान विचित्र निर्माणकौशल की पराकाष्ठा था। यह सुन्दर और श्रेष्ठ विमान है।[1] कुबेर पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर उमा-स्वयंवर में आये थे।[2]

चैत्ररथ वन

कुबेर के चैत्ररथ नामक वन का उल्लेख रामायण और पुराणों में विविध स्थलों पर हुआ है।

भरद्वाज मुनि ने भरत की सेना का आतिथ्य-सत्कार करने के लिए चैत्ररथ वन का आवाहन किया था।[3] यह वन उत्तर कुरु देश में स्थित है। कुबेर का यह वन दिव्य वस्त्र, आभूषण तथा दिव्य नारियों से सम्पन्न है --

वनं कुरुषु यद् दिव्यं वासोभूषणपत्रवत्।
दिव्यनारी फलं शश्वत् तत्कौबेरमिहैव तु।।

यहाँ दिव्य भोग सामग्रियों का भण्डार है। यहाँ की रमणीय नदियों के तटवर्ती वृक्ष बड़े सुहावने हैं।[4]

---

1. वन पर्व 161/37.
2. ब्रह्म 36/15-16.
3. वा.रा. 2/91/19.
4. वा.रा. 2/91/31-33.

कुबेर ने भरत के सत्कार के लिए आभूषणों से अलंकृत बीस हजार दिव्य नारियों के साथ चैत्ररथ वन को भरद्वाज मुनि के आश्रम में प्रेषित किया था —

सुवर्णमणिमुक्तेन प्रवालेन च शोभिताः।
आगुर्विंशतिसाहस्रा: कुबेर प्रहिता स्त्रियः।।
याभिर्गृहीतः पुरुषः सोन्माद इव लक्ष्यते।[1]

यहाँ के वृक्षों में सभी ऋतुओं में फल लगे रहते हैं। पुष्प के पराग से सुगन्धित तथा कोयल आदि पक्षियों के मधुर कलरव से यह वन सदैव सुशोभित रहते हैं। पुष्पों से पराग लेते हुए भौंरे हमेशा यहाँ गुंजार करते हैं।[2]

चैत्ररथ वन के जलाशय लाल और सुनहले कमलों से मंडित होते हैं। केसरयुक्त नीलकमल भी सर्वत्र मिलते हैं। नदियों के तटीय प्रदेश मोतियों, मणियों और सुवर्ण से सम्पन्न हैं। वृक्ष सदैव फल-फूल से लदे होते हैं और प्राणियों की मनचाही वस्तुओं की वर्षा करते हैं—

नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः।
दिव्य गन्धरसस्पर्शाः सर्वकामान् स्रवन्ति च।।

सूर्य के समान तेजस्वी गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर आदि यहाँ सदैव क्रीडा-विहार करते हैं। यहाँ कोई अप्रसन्न नहीं रहता।[3]

---

1. वा.रा. 2/91/44-45.   2. वा.रा. 3/73/7-8.
3. वा.रा. 4/43/39-52.

हरिवंश और भागवत पुराण के अनुसार पुरूरवा और उर्वशी ने चैत्ररथ वन में दस वर्ष तक विहार किया था।[1] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि यह वन अच्छोदा नदी के किनारे स्थित है। चैत्ररथ वन के समीप स्थित एक पर्वत पर मणिभद्र नामक यक्ष-सेनापति गुह्यकों के साथ निवास करता था।[2] वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि रावण ने इस वन को अनेक बार विध्वंस किया था।[3]

अलकापुरी

पुराण, महाभारत, वाल्मीकि रामायण आदि में अलकापुरी को कुबेर की राजधानी बताया गया है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर रावण ने प्रहस्त को दूत बना कर कुबेर के पास भेजा था। प्रहस्त ने कुबेर के पास जाकर लंकापुरी को रावण को लौटाने कहा। कुबेर ने प्रहस्त को बताया कि लंका का राज्य और धन रावण से अलग नहीं है, यह उनके लिए प्रस्तुत है। तत्पश्चात् कुबेर लंका को छोड़कर अपने अनुचरों सहित कैलास पर्वत को चले गये और अलकापुरी नामक नगरी बसायी।[4]

वायुपुराण के अनुसार यह सुवर्ण- मणियों से चित्रित अनेक विशाल भवनों से विभूषित विशाल नगर है। यह शत्रुओं

---

1. हरिवंश 3/26/5, भागवत 9/14/24.
2. मत्स्य 121/7-8.
3. वा.रा. 3/32/15-16.
4. वा.रा. 7/11/23-52.

के आक्रमण से सुरक्षित है तथा भव्य और वैभव से सम्पन्न है।[1] यहाँ कुबेर यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण और अप्सराओं के साथ सतत निवास करते रहते हैं।[2] यहाँ मनोरम मंदाकिनी नदी है, जिसमें मणियों के घाट बने हैं। उसमें यक्ष-गन्धर्वों की स्त्रियाँ और अप्सराएँ सदा स्नान करती हैं। उसके जल को देव, गन्धर्व, यक्ष आदि सदैव पिया करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अलकनन्दा और नन्दा नामक दो नदियाँ बहती हैं।[3]

वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि अलकापुरी के फाटक के प्रत्येक अंग में सुवर्ण जड़ा हुआ है तथा वैदूर्य मणि और रजत से विभूषित है। वहाँ द्वारपालों का पहरा रहता है। जब रावण कुबेर से युद्ध के लिए फाटक के भीतर प्रवेश करने लगा उस समय फाटक पर स्थित सूर्यभानु नामक द्वारपाल ने उसे रोका और फाटक में लगे हुए एक खम्भे को उखाड़कर रावण पर प्रहार किया, जिससे उसके शरीर से रक्त की धारा बहने लगी। तत्पश्चात् रावण ने उसी खम्भे से उस द्वारपाल का वध कर दिया था।[4]

रामायण के अनुसार कैलास पर्वत में अलकापुरी नामक नगरी में विश्वकर्मा ने कुबेर के लिए रमणीय भवन निर्मित किया। यह भवन जाम्बूनद नामक सुवर्ण से विभूषित है।[5]

तत्र पाण्डुरमेघाभं जाम्बूनद परिष्कृतम्।
कुबेर भवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा।।

---

1. वायु 41/3-4
2. वायु 41/9.
3. वायु 41/13-18.
4. वा.रा. 7/14/24-29.
5. वा.रा. 4/43/21.

यहाँ पधारे हुए अष्टावक्र ऋषि को कुबेर अपने भवन में ले गये थे। उन्हें पाद्य, अर्घ्य और आसन प्रदान किया तथा उनके आतिथ्य-सत्कार के लिए गन्धर्वों तथा अप्सराओं के नृत्य-गान का आयोजन किया गया।[1]

कुबेर ने भगवान् शिव की उग्र तपस्या करके विश्वकर्मा रचित अलकापुरी का उपभोग किया। वर प्राप्त करके वे अलकापुरी गये। वहाँ यक्षों ने कुबेर को राजा के रूप में अभिषिक्त किया।[3] हरिवंश पुराण के अनुसार राजा पुरुरवा ने उर्वशी के साथ यहाँ पाँच वर्ष तक विहार किया था।[3] एक यक्ष द्वारा ध्रुव के भ्राता उत्तम का वध किये जाने पर शोक, क्रोध और उद्वेग से भरकर ध्रुव ने यक्षों से भरी हुई अलकापुरी पर आक्रमण कर दिया था। उस समय ध्रुव के साथ असंख्य यक्षगणों ने युद्ध किया था। अनेकों यक्ष मारे गये और शेष युद्धभूमि से भाग गये। मनु के समझाने पर यह युद्ध समाप्त हुआ। तदनन्तर कुबेर ने ध्रुव को श्रीहरि की अखण्ड स्मृति का वर प्रदान किया।[4]

महाभारत में वर्णित है कि कुबेर का भवन सुवर्ण और स्फटिक मणि से विभूषित है* था। उसके चारों ओर सोने की चारदिवारी बनी थी। वहाँ बहुत से भवनों और अट्टालिकाओं से बड़ी शोभा हो रही थी। द्वार, तोरण, बुर्ज और ध्वजों से भवन अत्यन्त

---

1. अनुशासन पर्व 19/40-46.
2. पद्म, स्वर्ग 16/8-10, स्कन्द, काशी 1/13/133-134, शिव, रूद्र, सृष्टि अध्याय 19;
3. हरिवंश 3/26/5.
4. भागवत 4/10-12 अध्याय.

सुशोभित हो रहा था। आज भी उस भवन में विलासिनी अप्सरा नृत्य करती रहती हैं और वह पताकाओं से अलंकृत है। वहाँ गंधमादन पर्वत की सुगंध युक्त शीतल वायु मंद गति से बहती रहती है। वहाँ लगे हुए विविध वृक्ष तथा उनकी मंजरियाँ अत्यन्त कांतियुक्त हैं। कुबेर का भवन रत्नों तथा विचित्र मालाओं से विभूषित है।[1]

कपिल

वायु और नारदीय पुराण में कपिल नामक यक्ष का उल्लेख हुआ है। वायुपुराण के अनुसार सुयशा ने प्रचेता के संयोग से इसे जन्म दिया।[2]

नारदीय पुराण में उल्लिखित है कि पुष्कर तीर्थ में कपिल नामक महायक्ष द्वारपाल के रूप में रहता है। वह पापियों के लिए विघ्न तथा धर्मात्माओं को पुण्य देता है। उसकी पत्नी का नाम उलूखलमेखला है। उसकी पत्नी भी पापियों को पुष्कर तीर्थ में स्नान करने नहीं देती है। पुण्यात्मा व्यक्ति ही पुष्कर तीर्थ में स्नान कर पाते थे। उसकी पत्नी पुष्कर तीर्थ में नित्य भ्रमण करती रहती है।[3]

---

1. वन पर्व 160/37-44. 2. वायु 69/9-12.
3. नारदीय 2/65/18-42.

धन यक्ष

स्कन्द और पद्म पुराण में धन यक्ष का उल्लेख किया गया है। यह यक्ष पूर्वकाल में अवन्तीपुरी में धनेश्वर नामक ब्राह्मण था। वह ब्राह्मणोचित कर्म से भ्रष्ट, पाप-परायण और दुष्ट बुद्धि वाला था। वह क्रय-विक्रय के कार्य में संलग्न था। क्रय-विक्रय करते हुए वह देश-देशान्तर में भ्रमण करते हुए माहिष्मतीपुरी में गया। वहाँ कार्तिक-व्रत करने वाले मनुष्यों को एक मास तक सामान बेचता रहा और उनके मुख से भगवान् विष्णु के नामों का भजन-कीर्तन सुनता रहा। तदनन्तर एक दिन सर्प ने उसे डँस लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। उसके द्वारा किये गये पापकर्म के कारण उसे कुम्भीपाक कुण्ड के खौलते तेल में डाल दिया गया। कुम्भीपाक में उसके पड़ते ही कुण्ड का तेल शीतल हो गया था।[1]

एक मास तक कार्तिक-व्रत करने वाले वैष्णवों के साथ रहकर विष्णु-कीर्तन श्रवण से प्राप्त पुण्य के कारण उसे सम्पूर्ण नरकों का दर्शन मात्र कराकर यक्ष-लोक प्रदान किया गया। यक्ष लोक में वह कुबेर का अनुचर धन यक्ष के नाम से विख्यात हुआ।[2]

राजा हरिश्चन्द्र से दान में उसका राज्य और धन लेकर विश्वामित्र मुनि ने इसी धन यक्ष के संरक्षण में रखा था। तदनन्तर इस यक्ष पर प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उस स्थल को धन यक्ष तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध होने का वर प्रदान किया।[3]

---

1. स्कन्द, वैष्णव, कार्तिकमाहात्म्य 29/2-12, पद्म, उत्तर 113/1-21.
2. स्कन्द, वैष्णव, कार्तिकमाहात्म्य 29/16-27, पद्म, उत्तर 113/25-33, पद्म, उत्तर 114/27-28.
3. स्कन्द, वैष्णव, अयोध्या मा. 7/35-47.

नलकूबर

यह कुबेर का पुत्र है, इसकी माता का नाम ऋद्धि है।[1] यह तीनों लोकों में विख्यात है। यह धर्मानुष्ठान की दृष्टि से ब्राह्मण और पराक्रम की दृष्टि से क्षत्रिय है। उनका क्रोध अग्नि के समान भयंकर और क्षमा में पृथ्वी के समान है। नलकूबर का रम्भा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था।[1]

इनसे मिलने के लिए रम्भा दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित हो दिव्य चन्दन का अनुलेप लगाकर दिव्य पुष्पों से अपना श्रृङ्गार करके जा रही थी। उस समय मार्ग में रावण ने रम्भा के प्रति कामासक्त होकर उसके साथ बलपूर्वक समागम किया। तदनन्तर लज्जा और भय से काँपती हुई रम्भा नलकूबर को रावण के अत्याचार को बताया।[2]

उस समय क्रोधित होकर नलकूबर ने जल लेकर विधिपूर्वक आचमन करके रावण को शाप दिया कि वह किसी ऐसी युवती से मैथुन नहीं कर सकेगा जो उसे न चाहती हो। यदि वह उसे न चाहने वाली स्त्री के साथ समागम करेगा तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे —

अकामा तेन यस्माद् त्वं बलाद् भद्रे प्रधर्षिता।।
तस्माद् स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति।
यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम्।।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा।[4]

---

1. वायु 70/41, ब्रह्माण्ड 2/8/46, 2. वा.रा. 7/26/32-35.
3. वा.रा. 7/26/40-51. 4. वा.रा. 7/26/54-55.

पुष्पमित्र

हरिवंश पुराण में पुष्पमित्र नामक यक्ष का उल्लेख हुआ है। यह सर्वत्र जाने में समर्थ, महातेजस्वी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय यक्ष है। पुष्पमित्र एकाग्रचित्त होकर पुष्कर में तपस्या में लगे रहते हैं। सूर्यमंडल के मध्य भाग में एकटक आँखें लगाकर वे सहस्रों वर्षों तक जगत को देखते रहते हैं। पुष्पमित्र के नेत्रप्रान्त सूर्यमंडल में पहुँचते ही सूर्य की प्रभा से मिले हुए नेत्रों के साथ, वे सूर्य रश्मियाँ सर्वत्र फैल जाती हैं और सूर्य को धारण करने वाले उन यक्षराज के लिए सैकड़ों और हजारों नेत्र बन जाती हैं। वे {भावी कुबेर} पुष्पमित्र प्रलय के समय आग की चिनगारियों के समान प्रकाशित होने वाले अपने नेत्रों के द्वारा सूर्य का अनुवर्तन करते हैं। तत्पश्चात् वे इन्द्रियों को वश में करके एक सहस्र वर्षों तक पुनः दारूण तपस्या करते रहे। तदनन्तर मेरू पर्वत के शिखर पर भोग के द्वारा ही काम का परित्याग करते हुए उन्होंने अप्सराओं के साथ रमण किया। ये पुष्पमित्र यक्ष ही नरवाहन कुबेर हुये।[1]

पूर्णभद्र

स्कन्दपुराण में पूर्णभद्र नामक यक्ष का वर्णन किया गया है। इसके पिता का नाम रत्नभद्र और पत्नी का नाम कनककुण्डला था। बह बहुत समय तक इसके पुत्र उत्पन्न नहीं हुए। तदनन्तर पत्नी से परामर्श कर इसने भगवान् शिव की आराधना की और भगवान् शिव की कृपा

---

1. हरिवंश 3/28/21-28.

से इसने अपनी पत्नी के गर्भ से एक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया। यही पुत्र हरिकेश नाम से प्रसिद्ध हुआ। पूर्णभद्र संगीत-कला में पारंगत था।[1]

मणिभद्र

वायु पुराण में वर्णित है कि अनुह्लाद की पुत्री भद्रा ने रजतनाभ यक्ष के संयोग से मणिभद्र यक्ष को उत्पन्न किया। यह उसका कनिष्ठ पुत्र था। इसका विवाह क्रतुस्थली अप्सरा की पुत्री पुण्यजनी से हुआ। इसके संयोग से पुण्यजनी ने चौबीस शुभाचारी पुत्रों को उत्पन्न किया। इसके पुत्र -- सिद्धार्थ, सूर्यतेज, सुमन्त, नन्दन, कन्यक, यविक, मणिदत्त, वसु, सर्वानुभूत, शंख, पिंगाक्ष, भीरू, मन्दरशोभि, पद्म, चन्द्रप्रभ, मेघपूर्ण, सुभद्र, प्रद्योत, महौजस, द्युतिमान, केतुमान, मित्र, मौलि और सुदर्शन,-सदाचारी और पुण्यात्मा थे।[2]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार मणिभद्र नामक महायक्ष अत्यन्त दुर्जय वीर था। कुबेर ने इसे रावण की सेना से युद्ध के लिए चार हजार यक्षों की सेना देकर प्रेषित किया था। रावण और कुबेर की सेना के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। धूम्राक्ष और मणिभद्र आपस में युद्ध करने लगे। मणिभद्र ने अपनी गदा के प्रहार से धूम्राक्ष को युद्ध-भूमि में गिरा दिया। तदनन्तर रावण और मणिभद्र संग्राम करने लगे। मणिभद्र की शक्ति से आहत रावण ने मणिभद्र के मुकुट पर गदा से प्रहार

- -

1. स्कन्द काशी 1/32/7-46.
2. वायु 69/150-157, ब्रह्माण्ड 2/7/119-126.

किया, जिससे उसका मुकुट खिसक कर बगल में आ गया और वह "पार्श्वमौलि" नाम से विख्यात हुआ --

ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद् रणे।
तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम्*।
ततः प्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरभूत् किल।

अन्त में रावण से पराजित होकर वह युद्ध स्थल से पलायन कर गया।[1]

वायु पुराण में वर्णित है कि वह कैलास के उत्तर-पूर्व में स्थित चन्द्रप्रभ नामक स्थान पर अपने अनुचरों के साथ निवास करता था। इसके साथ गुह्यकगण भी रहते थे।[2] ब्रह्म पुराण के अनुसार मणिभद्र शिव के सिंहद्वार का पहरेदार था। उसने शिव को सूचित किया कि श्रीकृष्ण व बलराम ने असंख्य सेना सहित आकर मल्लों का वध कर दिया, उद्यानों की चार-दिवारी तोड़ दी और द्वारपालों का वध करके महाद्वार में घुस आये हैं।[3] महाभारत में उल्लिखित है कि मणिभद्र आदि यक्ष गण कुबेर की मंदाकिनी नामक पुष्करिणी की रक्षा करते थे। अलकापुरी में पधारे हुए अष्टावक्र मुनि को देखकर उनके स्वागत के लिए सभी यक्षों के साथ मणिभद्र भी खड़े हो गये।[4] हजारों गन्धर्व, यक्ष तथा किन्नर इसकी उपासना करते हैं।[5]

सामविधान ब्राह्मण के अनुसार सुवर्ण प्राप्ति के लिए सामगान के साथ मणिभद्र को मांस बलि तथा पूजा का विधान है।[6] चैत्ररथ वन के समीप स्थित पर्वत पर अपने अनुचरों के साथ क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति मणिभद्र गुह्यकों द्वारा रक्षित होकर निवास करता है।[7]

---

1. वा.रा. 7/15/1-15.
2. वायु 47/7.
3. ब्रह्मवैवर्त अध्याय 118.
4. अनुशासन पर्व 19/33-41.
5. वन पर्व 139/6-7.
6. सामविधान ब्रा. 3/3/3.
7. मत्स्य 121/8-9.

मचक्रुक
======

महाभारत के अनुसार चमक्रुक एक महाबली यक्ष है। वह कुरुक्षेत्र का द्वारपाल है। इसको प्रणाम करने मात्र से सहस्र गोदान का फल मिलता है। इसे नमस्कार कर कोटि तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य प्रचुर सुवर्ण प्राप्त करता है।[1]

मणिवर
========

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण तथा महाभारत में मणिवर नामक यक्ष का उल्लेख हुआ है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार यह रजतनाभ और अनुह्लाद दैत्य की कन्या भद्रा का ज्येष्ठ पुत्र है। यह महातेजस्वी, जितेन्द्रिय तथा महाबलवान् यक्ष है। कृतुस्थली अप्सरा की पुत्री देवजनी से इसने पूर्णभद्र, हेमरथ, मणिमद, नंदिवर्धन, कुस्तुम्बुर, पिशंगाभ, स्थूलकर्ण, महाजय, श्वेत, विपुल, पुष्पवान, भयावह, पद्मवर्ण, सुनेत्र, पक्ष, बाल, बक, कुमुद, क्षेमक, वर्धमान, दम, पद्मनाभ, वरांग, सुवीर, विजय, कृति, पूर्णभास, हिरण्याक्ष, सुरूप, आदि पुत्रों को उत्पन्न किया। ये सब पुत्र गुह्यक नाम से स्मरण किये जाते हैं। मणिवर के सभी पुत्र सुन्दर स्वरूप वाले, माला धारण करने वाले तथा देखने में प्रिय लगते थे। इसके पुत्र-पौत्रादि की संख्या सहस्रों तक थी।[2] वायु पुराण में एक अन्य स्थान पर मणिवर को

---

1. वनपर्व 83/9-200.
2. वायु 69/150-163, ब्रह्माण्ड 2/7/119-131.

जातनाभ नामक यक्ष का पुत्र बताया गया है।[1] महाभारत के अनुसार मणिवर यक्ष कैलास तथा मन्दराचल पर निवास करते हैं।[2]

हरिवंश पुराण में भी इसके पिता रजतनाभ को बताया गया है।[3] किन्तु पद्मपुराण में मणिधर पाठान्तर है।[4] विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में रजतनाभ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम मणिचर वर्णित है।[5]

रजतनाभ
========

स्कन्द, वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश और ब्रह्म पुराण में रजतनाभ यक्ष का वर्णन मिलता है। यह गुह्यकों का पितामह है। इसने अनुह्लाद दैत्य की परम सुन्दरी कन्या भद्रा से विवाह किया। भद्रा से इसके दो पुत्र उत्पन्न हुऐ -- ज्येष्ठ पुत्र का नाम मणिवर तथा कनिष्ठ का नाम मणिभद्र। किन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इनके नाम मणिचर और वीरभद्र वर्णित है।[6] वह महातेजस्वी और महातपस्वी था। इसके तीन सिर थे। प्राचीन काल में यक्षों और राक्षसों ने रजतनाभ को दोग्धा बनाकर कच्चे पात्र में पृथ्वी से अन्तर्धान होने की अक्षय विद्या को दुहा था। तदनन्तर राक्षसों और पिशाचों

---

1. वायु 62/184.
2. वन पर्व 39/5.
3. हरिवंश 1/6/33.
4. पद्म भूमि 29/57.
5. विष्णुधर्मोत्तर 1/197/10-11.
6. वायु 69/150-152, ब्रह्माण्ड 2/7/119-120, विष्णुधर्मोत्तर 1/197/10-11.

ने इसे दोग्धा बनाकर मुर्दे की खोपड़ी में पृथ्वी से रक्त रूपी दूध दुहा था।[1] किन्तु स्कन्द पुराण में पाठान्तर दृष्टिगोचर होता है। वहाँ वर्णित है कि यक्षराज रजतनाभ ने कच्चे पात्र में यक्षों के लिए अन्तर्धान विद्या को पृथ्वी से दुहा था।[2]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार रजतनाभ का जन्म कश्यप पत्नी खशा के यक्ष नामक पुत्र के द्वारा कृतस्थला अप्सरा से हुआ।[3] वायु पुराण में रजतनाभ के स्थान पर जातुनाभ पाठभेद मिलता है। वहाँ उल्लिखित है कि यक्षों ने जातुनाभ को दोग्धा बनाकर पृथ्वी से अन्तर्धान विद्या रूपी दूध दुहा था।[4] पद्म पुराण में रजतनाभ को मणिधर का पिता कहा गया है। इसके आठ भुजा तथा दो तेजस्वी शिर थे। इसने यक्षों के लिए अन्तर्धान विद्या का दोहन किया था।[5]

शंखचूर्ण

श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित है कि शंखचूर्ण कुबेर का अनुचर था। एक दिन वह श्रीकृष्ण और बलराम के समक्ष गोपियों को लेकर भागने लगा। तत्पश्चात् दोनों भाई हाथ में शाल का वृक्ष लेकर उसका पीछा किये, जिससे घबराकर वह गोपियों को छोड़कर भागने लगा। श्रीकृष्ण ने शंखचूर्ण का वध करके उसके सिर की चूड़ामणि लेकर उसे बलराम को दे दिया था।[6]

---

1. हरिवंश 1/6/32-36, ब्रह्म 4/105-106.
2. स्कन्द/प्रभास 336/159-160.
3. विष्णुधर्मोत्तर 1/197/9-10
4. वायु 62/184.
5. पद्म, भूमि 29/56-59.
6. भागवत 10/35/25-32.

स्थूणाकर्ण

महाभारत में इस यक्षराज का उल्लेख किया गया है। इसने राजा द्रुपद की कन्या शिखण्डी को अपना पुरुषत्व प्रदान करके पुरुष बना दिया था और शिखण्डी का स्त्रीत्व धारण करके स्त्री हो गया था।[1]

स्थूणाकर्ण का भवन विचित्र हारों से सुसज्जित, शंख और चँदोवों से सुशोभित तथा धूप एवं अन्य सुगंधित पदार्थों से अर्चित था। अनेकानेक ध्वज और पताकाएँ वहाँ की शोभा बढ़ा रही थीं। यक्षराज कुबेर स्थूणाकर्ण से मिलने के लिए उसके भवन में आये थे। उस समय स्त्री रूप होने के कारण शर्म से वह कुबेर के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका था। यक्षों से स्थूणाकर्ण के स्त्रीरूप में होने का समाचार सुनकर कुबेर ने उसे शाप दिया कि यक्ष का तिरस्कार करके शिखण्डी को अपना पुरुषत्व देकर और उसका स्त्रीत्व ग्रहण करने के कारण वह स्त्री ही बना रहेगा। तदनन्तर यक्षों के निवेदन पर कुबेर प्रसन्न होकर स्थूणाकर्ण को शिखण्डी की मृत्यु के पश्चात अपना पुरुषत्व प्राप्त करने का वर प्रदान किया।[2]

---

1. आदिपर्व 63/125. 2. उद्योग पर्व 192/9-52.

सुमन्यु

ब्रह्म पुराण में सुमन्यु नामक यक्ष का उल्लेख मिलता है। इसकी भार्या का नाम समा था। यह हिमालय की एक गुफा में रहता था। इसकी गुफा नाना-रत्नों से सुसज्जित थी। वन-विहार के लिए आए हुए राजा इल अपनी सेना के साथ इसकी गुफा में रहने लगे। सुमन्यु मृगरूप धारण करके पत्नी के साथ नृत्य-गान करता हुआ वन-विहार करता था। इल को अपनी गुफा में देखकर इसने युद्ध के लिए अनेक धनुर्धर यक्षों को प्रेषित किया था, किन्तु वे राजा इल से पराजित हो गये। तत्पश्चात् इल से प्रतिशोध के लिए इस यक्ष ने अपनी भार्या को आदेश दिया कि वह राजा इल को उमा-वन में प्रवेश करावे। इसके आदेशानुसार यक्षिणी समा मृगी का रूप धारण कर शिकार के लिए निकले हुए राजा इल के समक्ष प्रकट हुई। राजा इल इसका पीछा करते हुए उमा-वन में पहुँच गया और स्त्री-रूप होकर इला नाम धारण किया।[1]

सूर्यवर्चा

स्कन्द पुराण में सूर्यवर्चा नामक यक्ष का वर्णन प्राप्त होता है। इसने ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के समक्ष कहा था कि वे उसके रहते मनुष्यलोक में क्यों अवतार लेते हैं? वह पृथ्वी पर अवतार लेकर अकेला ही सब दैत्यों का संहार करेगा। उसकी अहंकारपूर्ण बात सुनकर ब्रह्मा जी क्रोधित हो गये और शाप देते हुए बोले कि पृथ्वी का यह

---

1. ब्रह्म 108/8-38.

महान् कार्य देवताओं के लिए भी दुःसह है, उसे वह मोहवश अपने द्वारा साध्य बतला रहा है, अतः पृथ्वी का भार उतारते समय श्रीकृष्ण के द्वारा उसके शरीर का नाश होगा। तदनन्तर सूर्यवर्चा ने भगवान् विष्णु को प्रार्थना द्वारा प्रसन्न करके जन्म से ही सब अर्थों को सिद्ध करने वाली बुद्धि प्राप्त करने का वर प्राप्त किया था। देव-सभा में विष्णु ने उसे वरदान देते हुए कहा था कि देवियाँ उसके मस्तक की पूजा करेंगी और वह पूज्य हो जायेगा।

तत्पश्चात् सूर्यवर्चा घटोत्कच के पुत्र बर्बरीक के रूप में अवतीर्ण हुआ। श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक काट दिया था। श्रीकृष्ण की आज्ञा से चंडिका देवी ने अमृत खींचकर उसके सिर को अजर-अमर कर दिया था। श्रीकृष्ण से कौरव-पाण्डव का युद्ध देखने की आज्ञा लेकर उसका मस्तक पर्वत-शिखर पर स्थित हो गया था।[1]

संयोधकण्टक
==========

यह एक यक्षराज था। रावण के सेनाओं से युद्ध करते हुए यक्ष गण जब पराजित होकर भागने लगे, तब महाबाहु धनाध्यक्ष कुबेर ने इस यक्षराज को राक्षसों से युद्ध के लिए बहुत-सी सेना के साथ प्रेषित किया। इसने रणभूमि में पहुँच कर चक्र से मारीच पर प्रहार किया और उसे घायल कर गिरा दिया। तदनन्तर होश में आने पर मारीच के साथ उनका भयानक युद्ध हुआ। अंत में मारीच से पराजित होकर वह यक्षराज भाग खड़ा हुआ।[2]

- -

1. स्कन्द, माहे.कुमारिका खंड 61 2. वा.रा. 7/14/20-23.

सूर्यभानु

यह कुबेरपुरी के फाटक का एक द्वारपाल था। जब रावण फाटक के भीतर प्रवेश करने लगा, तब इसने रावण को रोका। इसके रोकने पर भी जब रावण भीतर प्रविष्ट हो गया तब इसने फाटक में लगे हुए एक खम्भे को उखाड़कर उसे रावण के ऊपर प्रहार किया। जिससे रावण के शरीर से रक्त बहने लगा। तदनन्तर रावण ने भी उसी खम्भे से इस यक्ष के ऊपर आघात किया। रावण के प्रहार से सूर्यभानु का शरीर चूर-चूर हो गया। इसके वध होते ही सभी यक्ष भयभीत होकर भाग गये।[1]

सुकेतु

वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि सुकेतु एक प्रसिद्ध यक्ष थे। वे बड़े पराक्रमी और सदाचारी थे। संतान प्राप्ति के लिए इन्होंने ब्रह्माजी की कठोर तपस्या की। उस तपस्या से यक्षराज सुकेतु पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने उन्हें ताटका नामक एक कन्या रत्न प्रदान किया। ब्रह्माजी ने ताटका को एक हजार हाथियों का बल दिया था --

पितामहस्तु सुप्रीतस्तस्य यक्षपतेस्तदा।
कन्या रत्नं ददौ राम ताटका नाम नामतः।।
ददौ नागसहस्रस्य बलं चास्या पितामहः।

---

1. वा.रा. 7/14/25-30.

सुकेतु ने अपनी पुत्री ताटका को सुन्द नामक दैत्य को पत्नी के रूप में प्रदान कर दिया था।[1]

हरिकेश

मत्स्य और स्कन्द पुराण में हरिकेश नामक यक्ष का उल्लेख किया गया है। यह पूर्णभद्र नामक यक्ष का पुत्र था तथा इसकी माता का नाम कनककुण्डला था। भगवान् शिव की आराधना करके पूर्णभद्र ने इसे वरदान के रूप में प्राप्त किया था।[2] आठ वर्ष की अवस्था में ही इसमें शिव-भक्ति का प्रादुर्भाव हो गया था। यह सदैव शिव-चिन्तन में लगा रहता था। एक दिन घर को त्याग कर यह काशीपुरी चला गया। वहाँ आनन्दवन में इसने शिवजी की दारूण तपस्या की और शिवजी को प्रसन्न करके काशीपुरी का दण्डनायक हुआ। इस प्रकार इसका नाम "दण्डपाणि" विख्यात हो गया। भगवान् शिव ने संभ्रम और उद्भ्रम नामक दो गणों को इसका सेवक बनाया था।[3]

शिवजी की कृपा से यह काशीपुरी का स्वामी बनकर पापियों को दण्ड और भक्तजनों को अभयदान देकर मोक्ष प्रदान करता है।[4] इसे पिंगलनेत्र युक्त, पीत जटाधारी तथा दण्डरूप महान आयुध वाला कहा गया है --

---

1. वा.रा. 1/25/5-8. 2. स्कन्द, काशी 1/32/7-46.
3. स्कन्द, काशी 1/32-151-152.
4. स्कन्द, काशी 1/32/157-160.

जय यक्षपते धीरं जय पिंगल लोचन।
जय पिंगजटाभार जय दण्ड महायुध।।[1]

मत्स्य पुराण के अनुसार हरिकेश ब्राह्मणों का प्रतिपालक धार्मिक यक्ष था। इसकी जन्म से ही भगवान् शिव में परम भक्ति थी। उन्हीं की भक्ति में वह सर्वदा लीन रहता था। शिव-भक्ति में अनन्य भाव से लीन हरिकेश को देखकर उसके पिता ने कहा कि वह उसे अपना पुत्र नहीं मानता। वह किसी दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न हुआ है, क्योंकि यक्षों की ऐसी वृत्ति नहीं होती।[2] तत्पश्चात् पिता के आदेश पर वह घर-परिवार को त्यागकर वाराणसी चला गया और उसने एक सहस्र दिव्य वर्ष तक भगवान् शिव की घोर तपस्या की।[3] उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उसके समक्ष प्रकट हुए और उसे दिव्य दृष्टि प्रदान किया। तत्पश्चात् हरिकेश ने शिवजी से निश्चल-भक्ति, अन्नदाता तथा गणों के स्वामी होने का वर प्राप्त किया। भगवान् शिव की कृपा से हरिकेश वृद्धावस्था, मृत्यु तथा व्याधियों से रहित होकर पूज्य एवं गणों के स्वामी, धनपति, अन्नदाता तथा क्षेत्रपाल हुए।[4]

उलूखलमेखला
============

नारदीय पुराण में उलूखलमेखला नामक यक्षिणी का उल्लेख हुआ है। यह पुष्कर तीर्थ के द्वारपाल कपिल नामक महायक्ष की भार्या थी। यह पापियों को पुष्कर तीर्थ में स्नान करने से रोकती थी। पुष्कर तीर्थ में यह नित्य भ्रमण करती रहती थी।[5]

---

1. स्कन्द, काशी 1/32/171.
2. मत्स्य 180/5-9.
3. मत्स्य 180/10-20.
4. मत्स्य 180/88-98.
5. नारदीय 2/65/20-42.

ताटका

स्कन्द, विष्णु, अग्नि, ब्रह्म और हरिवंश पुराण तथा वाल्मीकि रामायण में ताटका नामक यक्षिणी का वृत्तान्त वर्णित है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार ताडका के शरीर में एक हजार हाथियों का बल था और इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ थी। इसके पुत्र का नाम मारीच था।

कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षिणी कामरूपिणी।।
बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ह्यभूत्।
ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः।।
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्र पराक्रमः।

यह और इसका पुत्र मारीच सदा मलद और करूष जनपदों को नष्ट करता रहता था। यह डेढ़ योजन मार्ग को घेरकर रहती थी।[1] हरिवंश पुराण में वर्णित है कि सुन्द से ताटका ने मारीच के अतिरिक्त शिवमाण और सुरकल्प नामक पुत्र भी उत्पन्न किये थे।[2]

ताटका के पिता का नाम सुकेतु था। तपस्या से ब्रह्माजी को प्रसन्न करके सुकेतु ने कन्या-रत्न के रूप में ताटका को प्राप्त किया था और यौवनावस्था प्राप्त होने पर सुन्द से उसका विवाह किया। अगस्त्य मुनि के शाप से वह विकराल मुख वाली नरभक्षिणी राक्षसी हो गयी थी।

अगस्त्यः परमामर्षस्ताटकामपि शप्तवान्।।
पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना।

---

1. वा.रा. 1/24/24-30.   2. हरिवंश 1/3/102.

विश्वामित्र के आदेश पर श्रीराम ने उसका वध किया।[1]

ताटका दुष्ट प्रकृति, भयंकर तथा दुराचारिणी थी। उसके शरीर की ऊँचाई बहुत अधिक थी। उसका मुख विकृत आकृति का था तथा शरीर दारुण एवं भयंकर था --

तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्।
पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः।
भिद्येरन् दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च।।

उसने राम लक्ष्मण पर भयंकर धूल उड़ाई तथा माया का आश्रय लेकर पत्थरों की वर्षा की थी। श्रीराम ने इसके दोनों हाथ तथा लक्ष्मण ने नाक-कान काट दिये थे। तदनन्तर बाण मारकर श्रीराम ने इसकी हत्या कर दी थी।[2] अग्नि, विष्णु और ब्रह्म पुराण में भी उल्लिखित है कि विश्वामित्र मुनि से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा ग्रहण करके श्रीराम ने वन में ताटका का वध किया था।[3] स्कन्द पुराण में सुन्द नामक दैत्य द्वारा ताटका से मारीच की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है --

मारीचः सुन्द पुत्रस्तु ताडकायामजायत।[4]

- -

1. वा.रा. 1/25/5-22.   2. वा.रा. 1/26/9-25.

3. अग्नि 1/5/7, विष्णु 4/4/88-89, ब्रह्म 123/99.

4. स्कन्द, प्रभास 21/28.

उमा
=====

ब्रह्म पुराण में उमा नामक यक्षिणी का वर्णन है। इसके पति का नाम सुमन्यु था। यह अपने पति के साथ हिमालय की एक गुफा में रहती थी। दोनों दम्पत्ति मृगरूप धारण कर नृत्य-गान करते हुए वन-विहार करते थे। उसकी गुफा नाना-रत्नों से सुसज्जित थी। शिकार के लिए वन में गये हुए राजा इल इसकी गुफा में सेना सहित रहने लगे। जब राजा इल ने गुफा को नहीं छोड़ा तब पति के आदेश से यह यक्षिणी मृगी का रूप धारण करके राजा इल के समक्ष आयी। उसे देखकर राजा इल ने उसके शिकार के लिए पीछा करते हुए उमा वन में प्रवेश किया। उमा वन में पहुँचते ही राजा इल स्त्रीरूप हो गये और इला कहलाने लगे। इस यक्षिणी ने इला को स्त्रीजनोचित नृत्य, गीत, अलंकार, स्त्रियों के हाव-भाव, सौन्दर्य आदि कलाओं की शिक्षा दी थी।[1]

--::--::--
--::--

1. ब्रह्म 108/8-55.

--:: अध्याय 2 ::--

गन्धर्वों की उत्पत्ति एवं स्वरूप

§अ§ गन्धर्वों की उत्पत्ति एवं स्वरूप.

§आ§ प्रमुख गन्धर्व:--

§1§ चित्ररथ	§2§ चित्रसेन
§3§ तुम्बुरु	§4§ नारद
§5§ पर्वत	§6§ विश्वावसु
§7§ हाहा	§8§ हूहू

§इ§ अन्य गन्धर्व :--

§1§ इन्दीवर	§2§ उपबर्हण
§3§ उग्रसेन	§4§ ऊर्णायु
§5§ कलि	§6§ गोलभ
§7§ ग्रामणी	§8§ धनवाहन
§9§ चित्राङ्गद	§10§ तनय
§11§ धृतराष्ट्र	§12§ पद्मशेखर
§13§ रङ्गविद्याधर	§14§ वसुरुचि
§15§ वररुचि	§16§ शैलूष
§17§ सुरुचि	§18§ सुन्दर
§19§ सुषाङ्ग	§20§ सूर्यवर्चा
§21§ हंस	

§ई§ गन्धर्वी --

§1§ दुन्दुभी	§2§ नर्मदा
§3§ सोमदा.	

गन्धर्वों की उत्पत्ति एवं स्वरूप

देवयोनियों में गन्धर्वों का सम्बन्ध संगीत विद्या में विशेष रूप से वर्णित है। पुराणों में गन्धर्वों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में नाना प्रकार के वर्णन हैं। पुराणों में ये गायक के रूप में विख्यात हैं।

वायु पुराण में गन्धर्वों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उल्लिखित है कि ब्रह्मा ने तेज का पान करके गन्धर्वों को उत्पन्न किया। तेज का पान करने से इनका नाम गन्धर्व पड़ा। यहाँ "धे" धातु पानार्थक है और "गा:" का तात्पर्य तेज है।[1]

विष्णु पुराण में लिखा है कि गान करते समय ब्रह्मा के शरीर से गन्धर्व उत्पन्न हुए। वे वाणी का उच्चारण करते हुए उत्पन्न हुए थे, अतः गन्धर्व नाम से विख्यात हुए।[2] हरिवंश पुराण में वर्णित है कि ब्रह्मा ने नासिका के अग्रभाग से विचित्र वस्त्रधारी गन्धर्वों की सृष्टि की। वे नृत्य, सामगान व वाद्य में कुशल थे।[3]

मार्कण्डेय और विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने गौ का चिंतन करते हुए गन्धर्वों को उत्पन्न किया।[4] भागवत पुराण में उल्लिखित है कि ब्रह्मा ने अपनी कांतिमयी मूर्ति से गन्धर्वों को उत्पन्न किया।[5] कूर्म पुराण से भी ब्रह्मा द्वारा गन्धर्वों की उत्पत्ति की पुष्टि होती है।[6]

- -

1. वायु. 9/39-40.
2. विष्णु 1/5/46, गरूड़ 1/1/4/30.
3. हरिवंश 3/20/3-8.   4. मार्कण्डेय 45/23-24.
5. भागवत 3/20/38.   6. कूर्म. 1/7/61-62.

नारदीय पुराण में गन्धर्व का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए वर्णित है कि गन्धर्व शब्द गा + ध + र्व से निष्पन्न हुआ है। गा का अर्थ "गेय", ध का तात्पर्य कलापूर्वक वाद्य बजाना और "र्व" का अभिप्राय वाद्य सामग्री है।[1] अतः गन्धर्व वाद्य एवं गीत में प्रवीण होते है।

वायु पुराण में उल्लिखित है कि दक्ष से भी गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई। दक्ष ने अपने शरीर को विभक्त कर प्रजाओं को उत्पन्न किया। मानसिक संकल्पों के द्वारा उन्होंने ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों आदि को उत्पन्न किया।[2] इसकी पुष्टि कूर्मपुराण से भी होती है।[3]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सृष्टि के आरम्भ में मानसिक संकल्पों के द्वारा गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की सृष्टि से जब प्रजा की वृद्धि नहीं हो सकी, तब मैथुन के द्वारा गन्धर्व उत्पन्न हुए। वायु पुराण में गन्धर्वों को मुनि का संतान बताया गया है। मुनि ने कश्यप जी के संयोग से चित्रसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, धृतराष्ट्र, पुलोमा, सूर्यवर्चा, युगप्द, तृणपद, कालि, दिति, चित्ररथ, अमिशिरा, पर्जन्य, कलि और नारद को उत्पन्न किया। ये 16 मुनिपुत्र देवगन्धर्व कहलाते हैं।[4] महाभारत में भी मुनि-पुत्र सोलह गन्धर्वों का उल्लेख हुआ है, किन्तु उनके नामों में किंचित पाठान्तर मिलता है। इसमें उनके नाम भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरूण, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, सत्यवाक, अर्कपर्ण,

1. नारदीय 50/58.
2. वायु 65/123-126.
3. कूर्म 1/16/1-2.
4. वायु 69/1-3.

प्रद्युत, भीम, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य, कलि और नारद वर्णित हैं।[1] इसी प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी मुनि पुत्रों का उल्लेख किया गया है --

चित्रसेनोग्रसेनौ च ऊर्णायुरनघस्तथा।।
धृतराष्ट्रश्च गोपश्च सूर्यवर्चास्तथैव च।
युगमस्तृणपः पार्ष्णिर्रथश्चित्ररथस्तथा।।
कलिः शालिशिराश्चैव पर्जन्यो नारदस्तथा।।[2]

मत्स्य, मार्कण्डेय, हरिवंश और अग्नि पुराण में भी गन्धर्वों को मुनि से उत्पन्न बताया गया है।[3] विष्णु पुराण के अनुसार पर्वकाल में रसातल में छः करोड़ मौनेय गन्धर्व रहते थे। उन्होंने समस्त नागकुलों के प्रधान प्रधान रत्न और अधिकार छीन लिये थे। भगवान् पुरुषोत्तम ने मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स में प्रविष्ट होकर उनका वध किया था।[4]

पुराणों में गन्धर्वों को कश्यप-पत्नी अरिष्टा से भी उत्पन्न कहा गया है। कूर्म, अग्नि, हरिवंश, पद्म, नरसिंह, विष्णु, मत्स्य, ब्रह्म आदि पुराणों में अरिष्टा को गन्धर्वों की जननी वर्णित किया गया है।

अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम्।[5]

---

1. आदिपर्व 65/42-44.
2. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7
3. मत्स्य 171/60, मार्कण्डेय 101/6, हरिवंश 3/14/61, अग्नि 69/1.
4. विष्णु 4/3/4-10.
5. कूर्म 1/18/10.

अग्निपुराण में उल्लिखित है कि कश्यप से अरिष्टा ने गन्धर्वों को उत्पन्न किया।[1] हरिवंश पुराण में लिखा है — अरिष्टा तु महासत्वान् गन्धर्वानमितौजसः।[2]

ब्रह्म पुराण में इससे सम्बन्धित निम्न श्लोक है —

अरिष्टा तु महासिद्धा गन्धर्वानमितौजसः।[3]

नरसिंह[4], विष्णु[5], मत्स्य[6], पद्म[7] आदि पुराणों में भी इसकी पुष्टि होती है।

महाभारत में प्राधा के 14 देवगन्धर्व पुत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वावसु, भानु, सुचन्द्र, अतिबाहु, हाहा, हूहू और तुम्बुरु — ये देव-गन्धर्व प्राधा के पुत्र कहे गये हैं।[8] भद्रा के गर्भ से सुविख्यात अश्वों के पुत्र हुए। वे हयगन्धर्व कहलाये और देवताओं के वाहन बने।[9]

महात्मा विक्रान्त ने परम पराक्रमी और औदार्यगुणों से सम्पन्न वालेय नामक गन्धर्वों को उत्पन्न किया। उनके नाम महावीर चित्रांगद, चित्रवर्मा, चित्रकेतु और सोमदत्त हैं।[10] विक्रान्त की

- -

1. अरिष्टायास्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्धि स्थिरं चरम। अग्नि/19/18
2. हरिवंश 1/3/119.   3. ब्रह्म 3/105.
4. अरिष्टायां तु गन्धर्वा जज्ञिरे कश्यपात्तथा। नरसिंह 5/54.
5. अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वान्समजीजनत्। विष्णु 1/21/25.
6. मत्स्य 6/45.   7. पद्म 1/6.
8. आदिपर्व 65/46-51.   9. वायु 66/73-74.
10. वायु 69/17-20.

अग्निका, कम्बला और वसुमती नामक कन्याओं से कुमार नामक गन्धर्व ने आग्नेय, काम्बलेय और वसुमती-सुतों के नाम से प्रसिद्ध परमवीर और युद्ध-कुशल गन्धर्वों को उत्पन्न किया।[1] इनके अतिरिक्त महात्मा विक्रान्त ने हिरण्यरोमा, कपिल, सुलोमा, मागध, चन्द्रकेतु, गांग एवं गोद नामक रूप, विद्या एवं सम्पत्ति से समृद्ध, विद्वान्, पराक्रमी और तपस्वी गन्धर्वगणों को उत्पन्न किया।[2]

प्रवाही ने सत्त्वन्, सत्त्वात्मक, कलाप, वीर्यवान्, कृतवीर्य, ब्रह्मचारी, सुपाण्डु, घन, तरण्य और सुचन्द्र नामक दस गन्धर्वों को उत्पन्न किया। ये देवगन्धर्व कहे जाते हैं।[3] वरिष्ठा ने हंस, अन्य, हहा, हूहू, विश्वणा, वासिरुचि, तुम्बुरू और विश्वावसु नामक आठ गन्धर्वों को उत्पन्न किया। अरिष्टा की कन्यायें पुण्यलक्षणों से सम्पन्न दिव्य अप्सरायें वरिष्ठा, अनवद्या, अनवशा, अन्वता, मदनप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी इनकी अर्धांगिनी हैं।[4]

विष्णु पुराण के अनुसार गन्धर्व तथा अप्सरायें कपिला की संतान हैं।[5] इसके अतिरिक्त नरसिंह पुराण में वर्णित है कि क्षीर सागर का मंथन करने से सहस्रों गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई।[6]

इस प्रकार पुराणों के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वकाल में ब्रह्मा जी और दक्ष-प्रजापति ने संकल्पादि के द्वारा

---

1. वायु 69/21-22.   2. वायु 69/23-27.
3. वायु 68/37-39.   4. वायु 69/45-48.
5. विष्णु 1/21/25.
6. क्षीरोदधेरुत्थिताश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः। नरसिंह 38/29.

गन्धर्वों को उत्पन्न किया था, किन्तु कालान्तर में कश्यप के संयोग से दक्ष-पुत्री अरिष्टा, मुनि, प्राधा और कपिला ने गन्धर्वों को उत्पन्न किया।

पुराणों में गन्धर्वों के लिए पुण्यात्मा, नृत्य-गीतकुशल, परम पराक्रमी, औदार्यगुण सम्पन्न, महाबलवान्, महाभाग्यशाली, परमवीर, युद्ध-कुशल, विद्यावान्, रूप और विद्या से सम्पन्न, महात्मा, महाविद्वान, परमतपस्वी एवं विक्रम सम्पन्न, परम यशस्वी, देव-उपासक, महासत्त्वान्, तेजस्वी, यथेच्छरूपधारी, वेगवान्, कीर्तिमान, आकाशगामी आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त विशेषणों से इनके स्वरूप का स्पष्ट प्रतिबिम्ब परिलक्षित हो रहा है।

चित्ररथ

वायु पुराण के अनुसार मुनि के 16 देवगन्धर्व पुत्रों में चित्ररथ एक है।[1] विष्णु धर्मोत्तर पुराण और महाभारत में भी इसे मुनि का पुत्र बताया गया है।[2]

परशुराम की माता रेणुका गंगा-तट पर कमलों की माला धारण किये हुए गन्धर्वराज चित्ररथ और अप्सराओं के जल विहार को देखने लगी। उसका मन चित्ररथ की ओर खिंच गया था, जिससे उन्हें पति का कोप-भाजन बनना पड़ा।[3] अर्जुन के रथ में

- -

1. वायु॰ 69/1-3.
2. आदिपर्व 65/42-44, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7.
3. भागवत 9/16/2-5.

चित्ररथ के द्वारा दिये गये श्वेत वर्ण के दिव्य एवं उत्तम जाति के वेगशाली अश्व जुते हुए थे।[1] गन्धर्वों ने इसे बछड़ा बनाकर पृथ्वी से सुगन्धों का दोहन किया था।[2] पितामह ब्रह्मा ने चित्ररथ को गन्धर्वों का स्वामी बनाया था।[3]

ये वारित्रक पर्वत पर गन्धर्वों के साथ मनोहरगीत गाते हुए शिव-पार्वती के समक्ष महोत्सव करते हैं।[4] अर्जुन के जन्मोत्सव में चित्ररथ भी उपस्थित हुए थे।[5] भगवान् शिव ने इसे दूत बनाकर शंखचूड के पास भेजा था। इसने शंखचूड को भगवान् महादेव का संदेश देकर देवताओं का राज्य लौटाने कहा था। शंखचूड द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार कर देने के पश्चात् वह महेश्वर के पास लौट गया।[6] इसने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ में वेगशाली चार सौ दिव्य अश्व भेंट किये थे।[7]

उपबर्हण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पचास गन्धर्व कन्याओं ने चित्ररथ की पुत्री के रूप में जन्म लिया और इनकी आज्ञा से उपबर्हण के साथ विवाह किया।[8] भगवान् शिव की पूजा

---

1. उद्योग पर्व 56/13.
2. ब्रह्म 4/107, मत्स्य 10/24-25, अग्नि 1/19/26, पद्म, सृष्टि 8/24-25, हरिवंश 1/6/38, द्रोण 69/25, वायु 62/189- 190.
3. हरिवंश 1/4/10, वायु 70/9, ब्रह्म 4/7, ब्रह्माण्ड 2/8/10, पद्म, भूमि 27/14, अग्नि 1/19/26, हरिवंश 3/37/12.
4. वायु 108/49-51. 5. आदि पर्व 122/56.
6. शिव, रूद्र संहिता 5/32, 7. सभापर्व 52/23-24.
8. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म खण्ड, 13.

के लिए इन्द्र-भवन में आयोजित उत्सव में गन्धर्वराज चित्ररथ पुत्र सहित प्रसन्नतापूर्वक वाद्य का वादन कर रहे थे।[1]

महाभारत में वर्णित है कि चित्ररथ का पूर्व नाम अंगारपर्ण था। सोमाश्रयायण तीर्थ में पहुँचे हुए पाण्डवों को इसने, गंगाजी में अपनी स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा करते हुए, अपने भयानक धनुष को टंकारते हुए युद्ध के लिए ललकारा था। यह स्वाभिमानी, ईर्ष्यालु और कुबेर का मित्र है। अर्जुन का जवाब सुनकर यह क्रोधित होकर बाण छोड़ने लगा था, तदनन्तर अर्जुन ने प्रज्वलित आग्नेयास्त्र से इसके रथ को जला दिया था, जिससे रथ-हीन होकर यह गिरने लगा था। अर्जुन ने इसके केश पकड़ कर घसीटते हुए अपने भाइयों के पास लाया था। इसकी पत्नी कुम्भीनसी के निवेदन करने पर युधिष्ठिर ने इसे छुड़ा दिया था। अर्जुन से पराजित होकर इसने अपने पूर्व नाम अंगारपर्ण का त्याग कर दिया था। इसका रथ विचित्र और उत्तम था। विचित्र रथ वाला होने के कारण ही इसका नाम चित्ररथ पड़ा। अर्जुन के दिव्यास्त्र से दग्ध होने के कारण इसे दग्धरथ भी कहा जाता है।[2]

चित्ररथ ने अर्जुन से कहा — "मैं तपस्या से अर्जित किये हुए चाक्षुषी विद्या आपको अर्पित करूँगा तथा आपको और आपके भाइयों को दिव्य कान्तियुक्त, मन के समान वेगशाली, आवश्यकतानुसार दुबले-मोटे होने वाले, अश्वों में शूरवीर, इच्छानुसार वर्ण बदलने में समर्थ, सवार की इच्छानुसार चलने वाले, आवश्यकतानुसार इच्छा मात्र से उपस्थित होने वाले, देवताओं और गन्धर्वों के वाहन

---

1. हरिवंश 2/69/14. 2. आदिपर्व 169/3-40.

गन्धर्व लोक के श्रेष्ठ सौ अश्व भेंट करता हूँ और आपसे उत्तम आग्नेयास्त्र ग्रहण करूँगा तथा घोड़े देकर सदा के लिए आपका मित्र बन जाऊँगा।"[1]

अर्जुन ने प्रसन्न होकर चित्ररथ को विधिपूर्वक आग्नेयास्त्र प्रदान किया और कहा "आपके द्वारा दिये गये अश्वों को आवश्यकता के समय हम तुमसे ले लेंगे।"[2]

विमान पर स्त्रियों के साथ जाते हुए चित्ररथ का विमान वैष्णवी-विद्या धारण कर योग से शरीर त्यागे हुए ब्राह्मण के हड्डियों के ऊपर से निकले। उस समय उस विद्या के प्रभाव से वे विमान सहित पृथ्वी पर गिरे पड़े थे। तब उन्होंने उस ब्राह्मण की हड्डियों को सरस्वती नदी में प्रवाहित किया।[3]

चित्रसेन

वायु और विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार चित्रसेन का जन्म कश्यप के द्वारा मुनि से हुआ। यह मुनि के सोलह देवगन्धर्व पुत्रों में एक है।[4] महाभारत में विश्वावसु के चित्रसेन नामक पुत्र का भी उल्लेख मिलता है। जिसने अर्जुन को गीत, वाद्य और नृत्य की शिक्षा प्रदान किया था।[5] इन्द्र ने इसे उर्वशी के पास प्रेषित किया और

---

1. आदिपर्व 169/41-58. 2. आदिपर्व 182/3-4.
3. भागवत 6/8/39-40. 4. वायु 69/1-3. विष्णु धर्मोत्तर 1/128/5-7.
5. वन पर्व 44/9, वन पर्व 91/14, वनपर्व 168/57.

उर्वशी को अर्जुन की सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया गया था। इन्द्र का आदेश लेकर उर्वशी के भवन में आये हुए गन्धर्वराज चित्रसेन का उर्वशी ने सत्कार किया। इसके द्वारा, अर्जुन की सेवा में जाने का, इन्द्र की आज्ञा सुनकर उर्वशी अत्यन्त प्रसन्न हो गई थी।[1] चित्रसेन को विदा कर उर्वशी अर्जुन के पास जाने के लिए अलंकृत हुई थी।[2]

चित्रसेन संगीत-कला कोविद, गान-निपुण और नृत्य विशारद हैं। युधिष्ठिर के यज्ञ में गन्धर्व और अप्सराओं के साथ इसने भी ब्राह्मणों का मनोरंजन किया था।[3] हेमन्त ऋतु में यह सूर्य के रथ में निवास करता है और उनकी आराधना करता है।[4] मार्गशीर्ष मास में सूर्य के रथ में रहने वाले छः गणों में यह भी एक है।[5] इन्द्र के शिव-पूजोत्सव में चित्रसेन ने भी गन्धर्वों के साथ गीत गाया था।[6] यह व्यासजी के साथ धृतराष्ट्र से मिलने आये हुए गन्धर्वों में एक था।[7] सूर्य के रथ में गान करने वाले श्रेष्ठ द्वादश गन्धर्वों में यह एक है।[8]

द्वैतवन में चित्रसेन के नेतृत्व में गन्धर्वों और कौरवों का भयंकर युद्ध हुआ था। कुबेर भवन से आये हुए गन्धर्वराज चित्रसेन ने अपने सेवकों के साथ क्रीडा-विहार के लिए द्वैतवन सरोवर को घेर

---

1. वनपर्व 45/1-15. 2. वन पर्व 46/1-2.
3. आश्रमवासिक पर्व 86/39-40.
4. वायु 52/17, लिंग 1/55/60, ब्रह्माण्ड 1/23/17, मत्स्य 126/18.
5. गरुड़1/58/16, विष्णु 2/10/13.
6. हरिवंश 2/69/14. 7. आश्रमवासिक पर्व 29/9.
8. लिंग 1/55/29-31, कूर्म 1/42/12-13.

लिया था।[1] दुर्योधन के आदेश पर कौरवों ने गन्धर्वों पर आक्रमण कर दिया। उस समय कौरव-योद्धा गन्धर्वों को रौंदकर बलपूर्वक द्वैतवन में घुस गये। चित्रसेन ने गन्धर्वों को युद्ध का आदेश दिया। तदनन्तर गन्धर्वों को अस्त्रशस्त्र लेकर आते देख कौरव-सैनिक युद्धभूमि से भागने लगे। कर्ण ने बाणों की वर्षा करके सैकड़ों गन्धर्वों को घायल कर दिया। गन्धर्वों को भयभीत देखकर गन्धर्वराज चित्रसेन क्रोधित हो गये। वे युद्ध की विचित्र पद्धति के ज्ञाता थे। वे मायामय अस्त्र का प्रयोग करके कौरवों को खदेड़ने लगे। महाबली गन्धर्वों ने कर्ण के रथ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उसके सारथी तथा घोड़ों का वध कर दिया।[2] उस समय कर्ण और कौरव-सेना युद्ध-स्थल से पलायन कर गयी। तत्पश्चात् गन्धर्वों ने दुर्योधन पर आक्रमण करके उनके रथ, सारथि और घोड़ों को काट डाला। तब चित्रसेन ने दुर्योधन को बंदी बना लिया। गन्धर्वों ने दुःशासन आदि अन्य धृतराष्ट्र पुत्रों तथा राजकुल की महिलाओं को भी अपने अधिकार में ले लिया था। इस प्रकार चित्रसेन के कुशल मार्ग-दर्शन में गन्धर्वों ने कौरवों को पराजित कर दिया था। उस समय भागे हुए कौरव, पाण्डवों की शरण में चले गये।[3]

युधिष्ठिर की आज्ञा पर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव कौरवों को गन्धर्वों से मुक्त करने के लिए आये। चारों पाण्डवों और गन्धर्वों का भीषण युद्ध हुआ। पाण्डवों की मार से गन्धर्वगण नष्ट होने लगे। अर्जुन दिव्यास्त्रों का प्रयोग करके गन्धर्वों को दग्ध करने लगे। अर्जुन से त्रस्त गन्धर्वों को देखकर चित्रसेन ने गदा लेकर अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा उसकी गदा को

- -

1. वन पर्व 240/21-23. 2. वनपर्व 241/5-31.
3. वनपर्व 242/1-9.

सात टुकड़ों में काट दिया था। तदनन्तर चित्रसेन अन्तर्धान विधा के द्वारा छिप कर अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे। अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्र का प्रयोग करके उसकी अन्तर्धान रूप माया को नष्ट कर दिया। चित्रसेन अर्जुन के सखा थे। उन्होंने अर्जुन के बाणों से अत्यन्त घायल होकर अपने आप को उनके सामने प्रकट कर दिया। अपने सखा चित्रसेन को देखकर अर्जुन ने अपने अस्त्र-शस्त्र समेट लिया।[1] अर्जुन चित्रसेन के प्रिय सखा तथा शिष्य हैं।[2] कुबेर सभा में चित्रसेन कुबेर की उपासना करते हैं।[3]

तुम्बुरु

महाभारत के अनुसार तुम्बुरु प्राधा से उत्पन्न चौदह देव-गन्धर्वों में एक है,[4] किन्तु वायु पुराण में वर्णित है कि वरिष्ठा ने अपने आठ गन्धर्वपुत्रों के साथ इसे उत्पन्न किया। इसकी अर्धांगिनी का नाम सुभगा है।[5] हरिवंश पुराण में उल्लिखित है कि ब्रह्माजी ने मानसिक संकल्प के द्वारा नासिका के अग्रभाग से विचित्र वस्त्रधारी गन्धर्वों की सृष्टि की थी। उन सहस्रों गन्धर्वों में तुम्बुरु आदि प्रधान थे। ये गन्धर्व नृत्य और वाद्य में निपुण और साम-गान में कुशल थे।[6]

---

1. वनपर्व 245/1-30.
2. वनपर्व 246/7.
3. सभापर्व 10/26.
4. आदिपर्व 65/46-51.
5. वायु. 69/45-48.
6. हरिवंश 3/20-1-4.

पुराणों में तुम्बुरु गन्धर्वों के पुरोहित के रूप में विख्यात हैं। उसने समिधा और कुश लेकर उपस्थित हुए और मदालसा का विवाह सम्पन्न कराया।[1] एक दिन रंभा में अत्यधिक आसक्त होकर तुम्बुरु समय पर कुबेर की सेवा में नहीं पहुँच सके थे, जिससे कुबेर ने उन्हें राक्षस होने का शाप दे दिया था और वह विराध नामक राक्षस बन गया था।

अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसं तनुम्।
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि।।

श्रीराम ने वध करके उनको शापमुक्त किया।[2] ये गान विद्या के आचार्य हैं।[3] ये गान्धर्व विद्या में कुशल तथा षड्ज, मध्यम और गान्धार स्वर के विशारद हैं।[4] भरद्वाज मुनि ने भरत के आतिथ्य-सत्कार के लिए अप्सराओं के साथ तुम्बुरु का भी आवाहन किया था कि वे अलंकारों तथा नृत्य-गीत के लिए अपेक्षित उपकरणों के साथ उपस्थित हों —

शक्रं याश्चोपतिष्ठन्ति ब्रह्माणं याश्च भामिनीः।
सर्वास्तुम्बुरुणा सार्धमाह्वये सपरिच्छदाः।।[5]

इसने उनके आवाहन पर उपस्थित होकर भरत के समक्ष गान किया था।[6]

---

1. मार्कण्डेय 19/60-63.
2. वा.रा. 3/4/16-19.
3. वा.रा. 5/1/174.
4. ब्रह्म 32/97-98.
5. वा.रा. 2/91/18.
6. वा.रा. 2/91/45.

कथा सरित्सागर में वर्णित है कि मायाधर असुर की मृत्यु के पश्चात् इन्द्रलोक में आयोजित उत्सव में रंभा के नृत्य में त्रुटि देखकर पुरूरवा हँस दिया था, जिससे रंभा चिढ़ गई। उस समय पुरूरवा ने रंभा से कहा था "उर्वशी के सम्पर्क में रहकर वह उनके गुरु तुम्बुरु से भी अधिक जानते हैं।" तब तुम्बुरु ने क्रोधित होकर राजा को शाप दिया था कि जब तक वह श्रीकृष्ण की आराधना नहीं करेगा, तब तक उर्वशी से उसका वियोग रहेगा। तदनन्तर तुम्बुरु की आज्ञा से गन्धर्वों ने गुप्त रूप से उर्वशी का अपहरण कर लिया।[1]

पार्वती की आज्ञा से इसने चंचुला के पति बिन्दुग ब्राह्मण को शिवपुराण सुनाया था, जिससे वह ब्राह्मण पिशाच-योनि से मुक्त होकर शिवधाम चला गया था। यह हाथ में वीणा धारण करता है।[2] इन्द्र-भवन में आयोजित शिव-पूजा महोत्सव में गन्धर्वों के साथ तुम्बुरु ने भी छः गुणों से युक्त गीत गाया था।[3] शुकदेव के जन्म पर ये अत्यन्त हर्षित हुए थे। उनके दर्शनार्थ आकर वे गान व स्तुति करने लगे थे।[4] तुम्बुरु ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ में सुवर्ण-हारों से अलंकृत हरे वर्ण के सौ अश्व भेंट किये थे।[5] इनके द्वारा दिये गये दिव्य घोड़े ही शिखण्डी को वहन करते थे।[6]

- -

1. कथासरित्सागर 3/3/19-25.
2. शिवपुराण माहात्म्य अध्याय 5, स्कन्द 3/3/22/122-130.
3. हरिवंश 2/69/14.
4. देवीभागवत 1/14, नारदीय 1/58/30-31, शान्तिपर्व 324/15-16.
5. सभापर्व 52/23-24. 6. द्रोण पर्व 23/20.

तुम्बुरु की मनोवती और सुकेशा नामक दो पुत्रियाँ हुईं।[1] आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण तुम्बुरु ने अपनी पत्नी को मेंढक होने का शाप दे दिया था।[2] तुम्बुरु अर्जुन का सखा था। यह युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित होता रहता था।[3] अर्जुन ने तुम्बुरु आदि गन्धर्वों से, तपस्या द्वारा अस्त्र प्राप्त किया था।[4] ये सर्व-विद्याविशारद हैं।[5] तुम्बुरु धैवत और निषाद स्वर में गाते हैं।[6] पर्व संधि के समय गन्धमादन पर्वत पर तुम्बुरु कुबेर की सेवा में उपस्थित होकर साम-गान करते हैं।[7]

तुम्बुरु रम्भा के साथ रमण करता है।[8] यह विलोमक के पुत्र राजा तम का मित्र था।[9] यह सूर्य के रथ में रहने वाले द्वादश श्रेष्ठ गायकों में एक है।[10] वसन्त ऋतु में ये सूर्य के रथ में रहते हैं।[11] शिव-विवाह के निमित्त ब्रह्मा द्वारा निर्मित नगरी में नारद, हाहा, हूहू के साथ ये भी रमणीय वाद्यों को लेकर उपस्थित हुये थे।[12]

---

1. वायु 69/49-50.
2. स्कन्द, वैष्णव, वेंकटाचल 26/58-59.
3. सभापर्व 4/36-37. 4. द्रोण पर्व 45/22.
5. स्कन्द, वैष्णव, वेंकटाचल 26/42.
6. नारदीय 1/50/72-73. 7. वन पर्व 159/29.
8. उद्योग पर्व 117/16. 9. कूर्म 1/24/49.
10. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
11. वायु 52/3, ब्रह्माण्ड 1/23/4, लिंग 1/55/46, मत्स्य 126/4.
12. ब्रह्म 36/67.

विष्णु पुराण के अनुसार तुम्बुरु चैत्रमास में सूर्य के रथ में रहते हैं।[1] भगवान् वामन के समक्ष गन्धर्वों के साथ तुम्बुरु ने भी गीत गाया था।[2] नारदीय पुराण में उल्लिखित है कि साम के सम्पूर्ण लक्षणों को, स्वर की सूक्ष्मता के कारण तुम्बुरु आदिगन्धर्व भी नहीं जान पाये हैं।[3] व्यास के साथ धृतराष्ट्र से मिलने आये गन्धर्वों में यह भी एक था।[4] युधिष्ठिर यज्ञ में यह गन्धर्वों के साथ ब्राह्मणों का मनोरंजन करता था। ये संगीत कलाकोविद, गान-निपुण तथा नृत्य विशारद थे।[5] प्राचीन संगीताचार्यों में तुम्बुरु का भी उल्लेख मिलता है। संगीत रत्नाकर में तुम्बुरु को अवनद्ध वाद्य का आचार्य बताया गया है।[6] अभिनवभारती में भी तुम्बुरु के नाट्य विषयक मत का उल्लेख है — "तुम्बुरुणेदमुक्तम् — अंगहाराभिधानात्तु करणे रेचकान्विदुः।"[7] अभिधानचिन्तामणि में तुम्बुरु की वीणा का नाम "कलावती" वर्णित है।[8] कुबेर सभा में गन्धर्वों के साथ तुम्बुरु भी कुबेर की उपासना करते हैं।[9]

---

1. विष्णु 2/10/3-4, गरुड़ 1/58/8.
2. हरिवंश 3/70/10. 3. नारदीय 1/50/207.
4. आश्रमवासिक पर्व 29/9. 5. आश्रमवासिक 88/39-40.
6. संगीतरत्नाकर 6/19 व 1/80.
7. अभिनवभारती पृष्ठ 165.
8. अभिधानचिन्तामणि, देवकाण्ड, 289.
9. सभा पर्व 10/25.

नारद

वायु और विष्णु धर्मोत्तर पुराण तथा महाभारत के अनुसार नारद को कश्यपजी ने मुनि से उत्पन्न किया। वे मुनि से उत्पन्न सोलह देवगन्धर्वों में एक हैं।[1]

नाट्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्माजी ने नारदादि गन्धर्वों को गाने के लिए नियुक्त किया था।[2] पुराणों में प्रायः हाहा, हूहू और तुम्बुरु के साथ इनका उल्लेख मिलता है।[3] भगवान् वामन के समीप गन्धर्वों के साथ इसने भी गीत गाया था।[4] शुकदेव के जन्म के समय उन्हें देखकर विश्वावसु, तुम्बुरु आदि गन्धर्वों के साथ नारद को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी। उनके दर्शन के लिए आकर वे गान करने लगे थे।[5] गन्धर्वों के साथ नारद भी शुकदेव के जन्म की बधाई गाने लगे थे।[6]

---

1. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128 /5-7, आदिपर्व 65/42-44.
2. नाट्यशास्त्र 1/51.
3. शांति पर्व 324/14-15, नारदीय 1/58/29-30, हरिवंश 3/70/13, अनुशासन पर्व 165/13-14.
4. हरिवंश 3/70/10-13.
5. देवीभागवत 1/14, नारदीय 1/58/29-30.
6. शांति पर्व 324/10-16.

हरिवंश पुराण में वर्णित है कि हाहा, हूहू, तुम्बुरु और नारद गान में प्रवीण हैं।[1] इसने गन्धर्वों के साथ गान करते हुए ब्रह्माजी की उपासना की।[2] ये इन्द्र-सभा में उपस्थित रहते हैं और इन्द्र की स्तुति करते हैं।[3] युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में प्रतिदिन यज्ञ कार्य के बीच-बीच में समय मिलने पर गन्धर्वों के साथ नारद भी गान कलाओं के द्वारा ब्राह्मणों का मनोरंजन करते थे। नारद संगीत कलाकोविद, गान-निपुण एवं नृत्य विशारद हैं।[4] व्यास के साथ धृतराष्ट्र से मिलने गये गन्धर्वों में ये भी एक थे।[5] नारद ने कार्तवीर्य अर्जुन के यज्ञ में उसकी महिमा का गान किया था।[6]

सूर्य के रथ में रहने वाले द्वादश श्रेष्ठ गन्धर्वों में यह एक हैं। ये सूर्य की स्तुति करते हैं।[7] वसन्त ऋतु में सूर्य के रथ में ये निवास करते हैं और सूर्य के यश का गान करते हैं।[8] विष्णु और गरूड पुराण के अनुसार बैसाख मास में सूर्य के रथ में रहकर गान करते हैं।[9] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि नारद, तुम्बुरु और गोप — इन तीनों ने भरत के सामने गीत गाया —

नारदस्तुम्बुरुर्गोपः प्रभया सूर्यवर्चसः।
एते गन्धर्वराजानो भरतस्याग्रतो जगुः।।[10]

---

1. हरिवंश 2/104/51.
2. अनुशासन पर्व 83/9.
3. वन पर्व 43/14-15.
4. आश्रमवासिक पर्व 88/39-40.
5. आश्रमवासिक पर्व 29/9.
6. हरिवंश 1/33/19.
7. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
8. वायु 52/3, ब्रह्माण्ड 1/23/4, लिंग 1/55/46.
9. विष्णु 2/10/5-6, गरूड 1/58/9.
10. वा.रा. 2/91/45.

नारद, तुम्बुरु तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व भी साम के विषयमें शिक्षा शास्त्रोक्त सम्पूर्ण लक्षणों को स्वर की सूक्ष्मता के कारण नहीं जान पाते थे।[1]

विश्वकर्मा द्वारा खरादे जाते हुए सूर्य के समक्ष हाहा, हूहू और तुम्बुरु के साथ नारद नें भी मूर्च्छना और तालों से युक्त सुखप्रद गीत गाये थे। ये गान्धर्व विद्या में कुशल तथा षड्ज, मध्यम और गान्धार गानों में विशारद हैं।[2] शिव-विवाह के लिए ब्रह्मा द्वारा रचित नगरी में तुम्बुरू, हाहा और हूहू के साथ नारद रमणीय वाद्यों को लेकर उपस्थित हुए थे।[3] दत्तिल ने भूमण्डल पर गान्धर्व का प्रचार करने का श्रेय नारद को प्रदान किया है।[4]

नाट्यगृह के निर्माण पर दिव्य गन्धर्वों के साथ नारद गन्धर्व की विशिष्ट पूजा का उल्लेख है।[5] नारद के मतानुसार ही नाट्यशास्त्र में गान्धर्व के विवेचन का उल्लेख किया गया है।[6] स्वाति और नारद के ग्रन्थ के आधार पर गान्धर्व के वाद्यों का विवरण होने का उल्लेख नाट्यशास्त्र में किया गया है।[7] ध्रुवागीतों को नारदोक्त कहा गया है।[8] नारदीय शिक्षा में

- -

1. नारदीय 1/50/207, ना. शि. 2/7/12,
2. ब्रह्म 32/97-98.
3. ब्रह्म 36/67.
4. दत्तिलम् 2.
5. नाट्यशास्त्र 3/62.
6. "गान्धर्वमेतत्कथितं मया हि पूर्वं यदुक्तं त्विह नारदेन।" नाट्यशास्त्र 32/484.
7. नाट्यशास्त्र 33/3.
8. नाट्यशास्त्र 32/1.

वर्णित गान्धर्व विषयक समस्त विवरण नारद द्वारा रचित बताया गया है।[1] इसमें गान्धर्व के स्वरों का आरम्भ नारद के नामोल्लेख से हुआ है।[2] यहाँ नारद के गांधार ग्राम का उल्लेख वर्णित है।[3] नारद पंचम स्वर का गान करते हैं।[4] नारद कुबेर-सभा में उपस्थित रहते हैं।[5]

पर्वत

वायु और महाभारत में पर्वत नामक गन्धर्व का वर्णन किया गया है। वायु पुराण में उल्लिखित है कि वारित्रक पर्वत के शिखर में गन्धर्वों के साथ पर्वत नामक गन्धर्व भी मनोहर और दिव्य गीत का गान करते हुए महोत्सव में भाग लेते हैं।[6]

महाभारत के अनुसार यह गन्धर्व ब्रह्माजी की उपासना करते हुए गन्धर्वों के साथ मधुर गीत का गान करते हैं।[7] व्यासजी के साथ धृतराष्ट्र से मिलने गये गन्धर्वों में यह भी सम्मिलित था।[8] द्रौपदी का स्वयंवर देखने के लिए विश्वावसु, नारद, पर्वत आदि प्रमुख गन्धर्व अप्सराओं के साथ आकाश में उपस्थित हुए थे।[9] कुबेर-सभा में गन्धर्वों के साथ यह भी कुबेर की उपासना करते हैं।[10]

---

1. नारदीय शिक्षा 1/2/3.
2. नारदीयशिक्षा 1/2/2.
3. नारदीयशिक्षा 1/2/5.
4. नारदीय 1/50/72.
5. सभापर्व 10/19.
6. वायु 108/46-50.
7. अनुशासनपर्व 83/9.
8. आश्रमवासिक पर्व 29/9.
9. आदि पर्व 186/7.
10. सभापर्व 10/25-26.

विश्वावसु

पुराण, महाभारत और वाल्मीकिरामायण में गन्धर्वराज विश्वावसु का वर्णन मिलता है। महाभारत में वर्णित है कि कश्यप-पत्नी प्राधा के चौदह देवगन्धर्व पुत्र हुए। विश्वावसु उन्हीं में से एक है।[1] किन्तु वायु पुराण के अनुसार यह वरिष्ठा से उत्पन्न अष्ट-गन्धर्वों में एक है। इसकी पत्नी का नाम भासी है।[2]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भरद्वाज मुनि ने भरत का आतिथ्य-सत्कार करने के लिए इनका आवाहन किया था।[3] एक ब्राह्मण के शाप से विश्वावसु राक्षस-योनि प्राप्त करके कबन्ध नामक भयंकर राक्षस हो गया था। उसका शरीर मेघ के समान काला और विशालकाय था, उसकी छाती पर दो बड़ी-बड़ी आँखे चमक रही थी। उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। उसने रामलक्ष्मण को एक-एक हाथ से पकड़ लिया था। इसके पेट में बहुत बड़ा मुख था। इसने श्रीराम को बताया कि "सीता का अपहरण रावण ने किया है। आप सुग्रीव से मिलिये। वे आपकी सहायता करेंगे।" श्रीराम लक्ष्मण ने इसकी भुजाओं को काट दिया था। इस प्रकार राम लक्ष्मण के द्वारा वध किये जाने से राक्षस-योनि से इनका उद्धार हुआ।[4] विश्वावसु की मदालसा नामक कन्या हुई। तुम्बुरू ने इस कन्या का विवाह ऋतध्वज से सम्पन्न किया।[5]

---

1. आदिपर्व 65/46-51.   2. वायु 69/45-48.
3. रामायण 2/91/16.
4. वन पर्व 279/28-48, अग्नि 1/97/23-24, रामायण 3/70-71.
5. मार्कण्डेय 19/28-63.

गन्धर्वराज विश्वावसु वेदान्त ज्ञान में कुशल हैं। उन्होंने याज्ञवल्क्य मुनि से वेद और आन्वीक्षिकी विद्या के सम्बन्ध में 25 प्रश्न किये थे। याज्ञवल्क्य ने इन्हें जीवात्मा और परमात्मा की एकता का उपदेश दिया था।[1] क्षीरसागर से लक्ष्मी के प्रकट होने पर गन्धर्वों के साथ विश्वावसु ने भी उनके सम्मुख गीत गाया था।[2] यजुर्वेद में यज्ञ के ऋत्विजों को संभालने की कामना विश्वावसु से की गई है।[3] इन्द्र की आज्ञा से गन्धर्वों के साथ विश्वावसु ने उर्वशी के मेषों को चुराया और पुरूरवा द्वारा प्रतिज्ञा भंग करवा कर उर्वशी को ब्रह्म शाप से मुक्त किया।[4]

इसने राजा जनमेजय को बताया कि यज्ञ में विघ्न डालने के लिए इन्द्र ने रम्भा को रानी वपुष्टमा के रूप में परिणत करके यज्ञ में मारे गये अश्व में प्रविष्ट हो उसके साथ रमण किया था।[5] विश्वावसु को वक्ताओं में श्रेष्ठ गन्धर्व कहा गया है।[6] राजा दिलीप के यज्ञ में ये प्रेमपूर्वक वीणा बजाते थे।[7] गन्धर्वतीर्थ में विश्वावसु आदि गन्धर्व अत्यन्त मनोरम संगीत का आयोजन करते हैं।[8]

---

1. शान्तिपर्व 3/8/26-80. 2. विष्णु 1/9/100-102.
3. यजुर्वेद 2/3.
4. हरिवंश 1/26/21-30, देवीभागवत 1/11-13, स्कन्द 3/1/28/31-40.
5. हरिवंश 3/5/25-30. 6. हरिवंश 1/26/21.
7. द्रोणपर्व 61/6-7. 8. शल्य 37/10-11.

वायु पुराण में उल्लिखित है कि गन्धर्वों ने चित्ररथ को वत्स और विश्वावसु को दोग्धा बनाकर वसुधा से पवित्र गन्धों का दोहन किया था।[1] किन्तु पद्म पुराण के अनुसार यक्षों ने विश्वावसु को वत्स बनाकर वसुधा से अन्तर्धान विद्या का दोहन किया था।[2] गन्धर्वराज विश्वावसु दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ पार्वती के स्वयंवर-सभा में गये थे।[3] गन्धर्वों के साथ विश्वावसु भी इन्द्र की सेवा में उपस्थित होकर उनकी स्तुति करते हैं।[4] गायत्री छन्द ने श्येन पक्षी का रूप धारण करके सोम को झपट लिया था। तब सोमरक्षक विश्वावसु गन्धर्व ने सोम का अपहरण कर लिया था।[5]

नारदीय पुराण के अनुसार नारद, तुम्बुरु तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व भी साम के सम्पूर्ण लक्षणों को स्वर की सूक्ष्मता के कारण नहीं जान पाते हैं।[6] विश्वावसु मेरु श्रृंग पर गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ निवास करते हैं।[7] यह गन्धर्वों का स्वामी है तथा जुआ खेलने में निपुण है। इन्द्र लोक में राजा प्रमति के साथ जुआ खेलते हुए यह गान्धर्व-विद्या को हार गया था। तब इनके पुत्र चित्रसेन ने राजा प्रमति को हराकर इन्द्र लोक की सम्पूर्ण हारी हुई बाजी को पुनः वापस प्राप्त किया था।[8] गन्धर्वराज विश्वावसु आकाश में निवास करते हैं।[9] यह तेजस्वी गन्धर्व है।[10]

---

1. वायु 62/189-190. 2. पद्मसृष्टि 8/22.
3. ब्रह्म 36/21-22. 4. उद्योग 11/15.
5. शतपथ 3/1/2/4.
6. नारदीय 1/50/207, ना.शि. 2/7/12.
7. नारदीय 1/58/9-10. 8. ब्रह्म 171/15-25.
9. वा.रा. 5/1/178. 10. रामायण 7/5/1.

विश्वावसु की पिप्पला नाम की एक बहन, ऋषियों के शाप से, वह नदी हो गयी थी। तब विश्वावसु ने ऋषियों और भगवान शिव की पूजा करके उसे शाप मुक्त किया था।[1] इसने मेनका से प्रमद्वरा नामक कन्या को उत्पन्न किया था।[2] सर्प काटने से प्रमद्वरा की मृत्यु हो गई थी। तब विश्वावसु धर्मराज के पास गये और रूरू की आधी आयु से प्रमद्वरा को जीवित करने का निवेदन किया। तत्पश्चात रूरू के साथ प्रमद्वरा का विवाह हुआ।[3] स्कन्द पुराण में उल्लिखित है कि भगवान् शिव ने अपने दूत विजय को विश्वावसु के पास भेजकर उनकी साठ हजार कन्याओं का विवाह वाडवा के छत्तीस हजार पुत्रों के साथ करने का प्रस्ताव किया था। उसके द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार कर देने पर भगवान् शिव ने क्रोधित होकर उस पर आक्रमण कर दिया था, जिससे वे नगर को त्याग कर मेरू पर्वत पर चले गये थे। तत्पश्चात् उनकी कन्याओं का विवाह वणिक पुत्रों से कर दिया गया।[4] ये महादेव कीपूजा-उपासना करते हैं।[5] विश्वावसु इन्द्र की सभा में भी उपस्थित रहते हैं।[6]

गन्धर्वों के साथ इसने भी ब्रह्मा की उपासना की।[7] सूर्य के रथ में उनका यशोगान करने वाले द्वादश श्रेष्ठ गन्धर्व गायकों में यह भी एक हैं।[8] गरूड़ पुराण और भागवत पुराण में वर्णित है कि ये

---

1. ब्रह्म 132/3-7. 2. आदिपर्व 8/6-13.
2. देवीभागवत 2/8.
3. आदिपर्व 9/13-16, देवीभागवत 2/9-10.
4. स्कन्द 3/2/10/27-45. 5. वायु 30/84.
6. सभापर्व 7/22, वन पर्व 43/8.
7. अनुशासन पर्व 83/9.
8. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.

श्रावण मास में सूर्य के रथ में निवास करने वाले छः गणों में एक है।[1] विष्णु पुराण में उल्लिखित है कि विश्वावसु कार्तिक मास में सूर्य के रथ में रहकर उनकी स्तुति करते हैं।[2] वायु और लिंग पुराण के अनुसार विश्वावसु और उग्रसेन वर्षा ऋतु में सूर्य के रथ में उनकी स्तुति करते हैं।[3] शरद ऋतु में भी ये सूर्य के रथ में रहते हैं।[4]

शुकदेव जी का गन्धर्वों के साथ विश्वावसु ने भी स्तुति किया था।[5] महाभारत में गन्धर्वराज विश्वावसु के पुत्र का नाम चित्रसेन बताया गया है, जिससे अर्जुन ने नृत्य, गीत, सामगान और वाद्यकला की विधिपूर्वक शिक्षा प्राप्त की थी।[6] विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने ब्रह्मा द्वारा त्यागे गये ज्योत्स्ना रूप कांतिमय शरीर को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया।[7] ये कुबेर-सभा में गन्धर्वों के साथ धनाध्यक्ष कुबेर की उपासना करते हैं।[8]

---

1. गरूड़ 1/58/11, भागवत 12/11/37.
2. विष्णु 2/10/12.
3. वायु 52/10, लिंग 1/55/53, ब्रह्माण्ड 1/23/10, मत्स्य 126/11.
4. वायु 52/13.
5. नारदीय 1/58/29-30.
6. वन पर्व 168/57.
7. भागवत 3/20/39.
8. सभा पर्व 10/25.
9. वन पर्व 91/14.

हाहा

महाभारत में वर्णित है कि कश्यप-पत्नी प्राधा ने हाहा को उत्पन्न किया। प्राधा से उत्पन्न चौदह देवगन्धर्वों में यह एक है।[1] किन्तु वायु पुराण के अनुसार यह वरिष्ठा का पुत्र है। वरिष्ठा ने आठ गन्धर्वों को उत्पन्न किया। उनमें हाहा भी एक है। इनकी पत्नी का नाम अनवशा है।[2]

पुराणों में हाहा के साथ नारद, हूहू और तुम्बुरु का उल्लेख अधिकतर मिलता है। विश्वकर्मा द्वारा खरादे जाते हुए सूर्य के समक्ष इसने भी हूहू, नारद और तुम्बुरु के साथ मूर्च्छना और तालों से युक्त सुखप्रद गीत गाये थे। ये गान्धर्व विद्या में कुशल तथा षड्ज, मध्यम और गांधार स्वर के विशारद थे।[3] शिव-विवाह के निमित्त ब्रह्मा द्वारा रचित नगरी में तुम्बुरु, नारद और हूहू के साथ हाहा भी रमणीय वाद्यों को लेकर उपस्थित हुए थे।[4] हाहा, हूहू, तुम्बुरु और नारद गान करने में प्रवीण हैं।[5] देवगन्धर्वों के साथ इसने भी भगवान् वामन के समीप गीत गाये थे।[6] वारित्रक पर्वत-शिखर पर गन्धर्वों के साथ ये भी दिव्य और मनोहर गीत गाकर महान उत्सव करते हैं।[7]

---

1. आदिपर्व 65/46-51.
2. वायु 69/45-48.
3. ब्रह्म 32/97-98.
4. ब्रह्म 36/65-66.
5. हरिवंश 2/104/51.
6. हरिवंश 3/70/13.
7. वायु 108/46-48.

भरद्वाज मुनि ने भरत के आतिथ्य-सत्कार के लिए देव-गन्धर्वों के साथ हाहा का भी आवाहन किया था।[1] इन्द्र-भवन में आयोजित शिव-पूजा महोत्सव में हाहा ने देवगन्धर्वों के साथ गीत गाया था।[2] विद्युद्ध्वज के वध के पश्चात् इन्द्र द्वारा आयोजित विजयोत्सव में इसने हूहू के साथ गीत गाया तथा अप्सराओं ने नृत्य किया था।[3] इसने गन्धर्वों के साथ शुकदेवजी की स्तुति की थी।[4] व्यासपुत्र शुकदेव के जन्म के समय इसने भी बधाई गीत गाया था।[5] गन्धर्वों के साथ गान करते हुए इसने भी ब्रह्माजी की उपासना की।[6]

सूर्य के रथ में निवास करने वाले द्वादश श्रेष्ठ गन्धर्व गायकों में हाहा भी एक है।[7] ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के रथ में हाहा और हूहू गन्धर्व उनका यश गान करते हैं।[8] ज्येष्ठ मास में सूर्य के रथ में रहने वाले छः गणों में यह एक है।[9] हाहा इन्द्र-सभा में भी उपस्थित होते हैं।[10]

देवल नामक मुनि के शाप से हाहा ने गज-योनि को प्राप्त किया[11] और त्रिकूट पर्वत में रहने लगा। वहाँ स्थित एक

- -

1. वा.रा. 2/91/16. 2. हरिवंश 2/69/14.
3. कथासरित्सागर 17/3/87. 4. नारदीय 1/58/30-31.
5. शांतिपर्व 324/15-16. 6. अनुशासन पर्व 83/9.
7. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
8. वायु 52/7, ब्रह्माण्ड 1/23/7, लिंग 1/55/50, मत्स्य 126/7.
9. गरुड़ 1/58/10, भागवत 12/11/35, विष्णु 2/10/7.
10. वन पर्व 43/14. 11. विष्णुधर्मोत्तर 1/193/5-7.

जलाशय में उसने प्रवेश किया, तब एक ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया। दोनों एक-दूसरे को अपनी ओर खींचने लगे। उस समय गजराज ने ग्राह से मुक्ति के लिए एक उत्तम कमल लेकर भगवान् विष्णु का ध्यान किया। तत्पश्चात विष्णु भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह का वध करके उन्हें मुक्त किया। भगवान के चरण स्पर्श से उसका गज योनि से उद्धार हो गया और वह स्वर्ग चला गया।[1] यह कुबेर-सभा में गन्धर्वों के साथ यक्षराज कुबेर की आराधना करते हैं।[2]

हूहू

पुराणों, महाभारत और रामायण में हूहू का वर्णन मिलता है। वायु पुराण में इसे वरिष्ठा का पुत्र बताया गया है। वरिष्ठा के आठ गन्धर्व पुत्रों में यह भी एक है।[3] किन्तु महाभारत के अनुसार कश्यप पत्नी प्राधा से उत्पन्न चौदह देवगन्धर्वों में यह एक है।[4]

पुराणों में प्रायः नारद, हाहा और तुम्बुरू के साथ हूहू का उल्लेख मिलता है। विश्वकर्मा द्वारा खरादे जाते हुए सूर्य के समीप गान करने वाले गन्धर्वों में नारद, हाहा और तुम्बुरू के साथ यह भी एक था। गन्धर्वों के साथ इसने भी मूर्च्छना और तालों के सहित गीत गाये थे। यह गान्धर्व-विद्या में कुशल तथा षड्ज, मध्यम

---

1. विष्णुधर्मोत्तर 1/194/19-64. 2. सभा पर्व 10/25.
3. वायु 69/45-48. 4. आदिपर्व 65/46-48.

और गान्धार में विशारद है।[1] ब्रह्मा द्वारा शिव-विवाह के लिए निर्मित नगरी में तुम्बुरु, नारद और हाहा के साथ ये भी रमणीय वाद्यों को लेकर उपस्थित थे।[2]

भगवान् वामन के समीप गीत गाने वाले देवगन्धर्वों में यह भी एक था।[3] वारित्रक पर्वत-शिखर पर गन्धर्वों के साथ ये भी दिव्य और मनोहर गीत गाते रहते हैं।[4] वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि भरत के आतिथ्य सत्कार के लिए भरद्वाज मुनि ने विश्वावसु, हाहा और हूहू आदि देव-गन्धर्वों का आवाहन किया था।[5] इसने भी गन्धर्वों के साथ शुकदेव की स्तुति की थी।[6] गन्धर्वों के साथ गाते हुए यह भी ब्रह्मा की उपासना करते हैं।[7] हाहा ग्रीष्म ऋतु में इसके साथ सूर्य के रथ में निवास करते हैं।[8] सूर्य के रथ में उनकी स्तुति करने वाले द्वादश श्रेष्ठ गन्धर्व गायकों में यह एक है।[9] हूहू आषाढ मास में सूर्य के रथ में निवास करने वाले गणों में एक है।[10] शुकदेव के जन्म होने पर गन्धर्वों के साथ इसने भी बधाई गीत गाये थे।[11]

----

1. ब्रह्म 32/97-98.
2. ब्रह्म 36/65-67.
3. हरिवंश 3/70/13.
4. वायु 108/46-48.
5. रामायण 2/91/16.
6. नारदीय 1/58/30-31.
7. अनुशासन पर्व 83/9.
8. वायु 52/7, लिंग 1/55/50, ब्रह्माण्ड 1/23/7, मत्स्य 126/7.
9. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
10. भागवत 12/11/36, विष्णु 2/10/8.
11. शान्ति पर्व 324/15-16.

देवल नामक मुनि के शाप से हूहू ने ग्राह-योनि को प्राप्त किया।[1] तत्पश्चात् यह एक जलाशय में निवास करने लगा। एक गजराज के साथ जलाशय में इनका भयानक युद्ध हुआ। यह गजराज का पैर पकड़कर खींचने लगा तथा हाथी उसे जलाशय के बाहर खींचने लगा। अन्त में गजराज शिथिल हो गये और भगवान विष्णु की स्तुति की। तदनन्तर भगवान विष्णु ने चक्र से इस ग्राह का वध कर दिया और वह शाप से मुक्त होकर स्वर्ग चला गया।[2]

हरिवंश पुराण में इसे गान में प्रवीण कहा गया है।[3] इन्द्र-भवन में आयोजित शिव पूजोत्सव में इसने भी गन्धर्वों के साथ गीत गाया।[4] गन्धर्वों के साथ गाते हुए इसने भी ब्रह्माजी की उपासना की।[5] विद्युद्ध्वज राक्षस के वध के पश्चात् इन्द्र द्वारा आयोजित विजयोत्सव में हाहा के साथ इसने भी गीत गाया।[6] कुबेर सभा में गन्धर्वों के साथ यह कुबेर की उपासना करते हैं।[7]

उपबर्हण

यह एक गन्धर्व कुमार है। इसके पिता सब गन्धर्वों में श्रेष्ठ और महान् गन्धर्वराज था। भगवान् शिव की दीर्घकाल तक तपस्या करके गन्धर्वराज ने परम वैष्णव पुत्र प्राप्त करने का वर प्राप्त

---

1. भागवत 8/4/3. विष्णुधर्मोत्तर 1/193/4-7.
2. भागवत 8/3/33., विष्णुधर्मोत्तर 1/194/18-64.
3. हरिवंश 2/104/51.
4. हरिवंश 2/69/14.
5. शांतिपर्व 324/15-16.
6. कथासरित्सागर 17/3/87.
7. सभापर्व 10/25

किया। तत्पश्चात् उस गन्धर्वराज की पत्नी के गर्भ से नारद मुनि ने ही उसके पुत्र के रूप में जन्म लिया। पूज्य पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ होने के कारण वसिष्ठ जी ने उस बालक का नाम "उपबर्हण" रखा।[1]

वशिष्ठजी से हरि-मंत्र की दीक्षा लेकर उपबर्हण ने तपस्या आरम्भ की। युवावस्था में उन्हें देखकर पचास गन्धर्व कन्याएँ मोहित हो गयीं और उन्हें पतिरूप में प्राप्त करने के लिए संकल्प लेकर योग-शक्ति से अपने प्राणों को त्याग दिया। तदनन्तर वे सब गन्धर्वराज चित्ररथ की कन्या के रूप में अवतीर्ण हुई और पिता की आज्ञा से उपबर्हण के साथ विवाह किया।

एक बार ब्रह्मलोक में रम्भा को नृत्य करते देखकर इनका वीर्य स्खलित हो गया। तब ब्रह्माजी ने उन्हें शूद्र-योनि होने का शाप दिया। उस शाप से इस गन्धर्व ने अपने शरीर को त्याग दिया था। उस समय इसकी परम प्रेयसी तथा प्रधान पटरानी मालावती कुपित होकर देवताओं को शाप देने उद्यत हो गयी थी।[2] तब देवताओं को शाप से बचाने के लिए भगवान् कृष्ण ने अपनी शक्तियों के साथ उसके शरीर में प्रवेश किया और वह गन्धर्व पुनः जीवन प्राप्त कर उठ खड़ा हुआ। देवताओं के वर से नया जीवन प्राप्त करने के पश्चात् वह अपनी पत्नी के साथ गन्धर्वनगर चला गया।[3] अन्त में ब्रह्मा के शाप से प्राणों को त्याग कर उसने ब्राह्मण के वीर्य से शूद्रा के गर्भ से पुनः जन्म लिया।[4]

---

1. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड, 12.
2. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड, 13.
3. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड 18.
4. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड, 20.

गोपराज द्रुमिल की पत्नी कलावती ने काश्यप के स्खलित शुक्र को ग्रहण करके इसे जन्म दिया। अनावृष्टि के अन्त में इसका जन्म हुआ था और जन्म काल में जगत को नार अर्थात् जल प्रदान किया अतः इस बालक का नाम "नारद" पड़ा।[1]

इन्दीवर
========

मार्कण्डेय पुराण में इस गन्धर्व का उल्लेख हुआ है। यह दिव्याम्बर, दिव्यमाला, दिव्यभूषण और दिव्यदेहधारी गन्धर्व है। यह आयुर्वेद का ज्ञाता है। इसने स्वरोचिः को आयुर्वेद विद्या प्रदान किया था। मनोरमा नामक कन्या को स्वरोचिः से पाणिग्रहण कराने के पश्चात् उन्हें उपदेश देकर यह अपने दिव्य विमान से स्वर्ग लोक चला गया था।[2]

उग्रसेन
======

वायु, विष्णुधर्मोत्तर पुराण और महाभारत के अनुसार उग्रसेन कश्यप पत्नी मुनि से उत्पन्न सोलह देवगन्धर्वों में एक है।[3] सूर्य रथ में गान करने वाले द्वादश गायक गन्धर्वों में इसकी गणना की गई

---

1. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड, 21.   2. मार्कण्डेय 60/54-62.
3. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7, आदि पर्व 65/42-44.

है।[1] भाद्रपद मास में यह सूर्य के रथ में निवास करता है।[2] वर्षाऋतु में विश्वावसु और उग्रसेन सूर्य के रथ में रहते हैं।[3]

ऊर्णायु

विष्णुधर्मोत्तर तथा वायु पुराण और महाभारत में वर्णित है कि ऊर्णायु का जन्म कश्यप पत्नी मुनि से हुआ। यह मुनि से उत्पन्न सोलह देवगन्धर्वों में एक है।[4]

सूर्य के रथ में रहने वाले द्वादश नायक गन्धर्वों में इनकी भी गणना है।[5] हेमन्त ऋतु में ये चित्रसेन के साथ सूर्य के रथ में रहते हैं।[6] पौष मास में ये सूर्य के रथ में निवास करते हैं।[7] महेन्द्र द्वारा शिव-पूजा के लिए आयोजित महोत्सव में ऊर्णायु ने भी गन्धर्वों के साथ मधुर गीत गाया था।[8]

---

1. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
2. विष्णु 2/10/10, भागवत 12/11/38, गरूड 1/58/13.
3. वायु 52/10, ब्रह्माण्ड 1/23/10, लिंग 1/55/53.
4. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7, आदि पर्व 65/42-44.
5. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
6. लिंग 1/55/60, वायु 52/17. ब्रह्माण्ड 1/23/17, मत्स्य 126/18.
7. गरूड 1/58/17, विष्णु 2/10/14-15.
8. हरिवंश 2/69/14

कलि

वायु और विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा महाभारत के अनुसार कलि की उत्पत्ति कश्यप के संयोग से मुनि के गर्भ से हुई। ये उनसे उत्पन्न सोलह देवगन्धर्व में एक हैं।[1] भगवान् वामन के समक्ष गीत गाने वाले गन्धर्वों में यह भी एक था।[2]

ग्रामणी

वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन किया गया है। ऋषभ पर्वत के वनों में रोहित नामक गन्धर्व रहते हैं। उस वन के चन्दन-वृक्षों की वे रक्षा करते हैं। वहाँ पाँच गन्धर्वराज रहते हैं। उनमें एक गन्धर्वराज का नाम ग्रामणी है। यह तेजस्वी तथा पुण्यकर्मा है।[3]

इसने अपनी कन्या का विवाह सुकेश नामक राक्षस से किया था। उसकी पुत्री देववती ने माल्यवान्, सुमाली और माली नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था।[4]

---

1. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7, आदिपर्व 65/42-44.
2. हरिवंश 3/70/10-12.
3. वा.रा. 4/41/41-44.
4. वा.रा. 7/5/1-6.

गोलभ

वाल्मीकि रामायण में गोलभ नामक गन्धर्व का उल्लेख हुआ है। इसने वानरराज वाली के साथ पन्द्रह वर्ष तक लगातार अहोरात्र युद्ध किया। सोलहवें वर्ष वाली के द्वारा मारा गया था। इसके मरने से वानरों को अभयदान मिला था।[1]

धनवाहन

स्कन्द पुराण में इस गन्धर्वराज का उल्लेख है। ये स्वयंप्रभा नामक पुरी में निवास करते थे। इनकी पत्नी बड़ी मनोहर थी। इनके आठ पुत्र और एक कन्या हुई। उस कन्या का नाम गन्धर्वसेना था तथा वह बड़ी रूपवती थी। उसे अपने रूपवती होने का बड़ा अभिमान था। वह समझती थी कि संसार में कोई देवता अथवा दानव उसके रूप के करोड़वें अंश के बराबर भी नहीं है। गन्धर्वसेना के अहंकारपूर्ण वचन सुनकर गणनायक शिखण्डी ने उसे कोढ़ युक्त शरीर वाली होने का शाप दे दिया।[2]

धनवाहन ने अपनी पुत्री गन्धर्वसेना को शापमुक्त करने के लिए उस कन्या के साथ सोमवार व्रत के द्वारा सोमनाथ शिव लिंग का पूजन किया। भगवान् महेश्वर की कृपा से उसकन्या का कुष्ठ नष्ट हो गया और धनवाहन को गन्धर्वदेश का राज्य प्राप्त हुआ।[3]

---

1. वा.रा. 4/22/27-30.
2. स्कन्द, प्रभास 24/143-166.
3. स्कन्द, प्रभास 25/59-60.

महादेव से वरदान प्राप्त करने के पश्चात् गन्धर्वराज धनवाहन ने गन्धर्वेश्वर शिवलिंग की स्थापना की।[1] उसकी पुत्री गन्धर्वसेना ने भी सर्व रोगनाशक विमलेश्वर शिवलिंग की स्थापना की।[2]

चित्रांगद

वायु पुराण में वर्णित है कि महात्मा विक्रान्त ने परम पराक्रमी और औदार्य गुणों से सम्पन्न वालेय नामक गन्धर्वों को उत्पन्न किया। चित्रांगद उन्हीं वालेय गन्धर्वों में एक है।[3]

स्कन्द पुराण के अनुसार इसने रम्भा से उत्पन्न जाबालि मुनि की कन्या फलवती के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसके साथ रमण किया, जिससे जाबालि मुनि ने इन्हें कुष्ठ रोगी होकर चलने में असमर्थ होने का शाप दिया था। शाप से मुक्त होने के लिए इसने शिवलिंग की स्थापना करके उसकी आराधना की, जिसके फलस्वरूप उसका कुष्ठ नष्ट हो गया।[4] गन्धर्वराज चित्रांगद ने शिवलिंग स्थापित करके उसका भक्ति पूर्वक पूजन किया तथा भारी तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया जिससे गन्धर्व लोक को प्राप्त किया। चित्रांगद गन्धर्व द्वारा स्थापित शिवलिंग ही चित्रांगदेश्वरलिंग के नाम में विश्व में विख्यात हुआ।[5]

---

1. स्कन्द, प्रभास 26/1-3.
2. स्कन्द, प्रभास 27/1-2.
3. वायु 69/17-20.
4. स्कन्द, नागर 144/1-110.
5. स्कन्द, प्रभास 122/1-3.

महाभारत और देवीभागवत के अनुसार गन्धर्वराज चित्रांगद और राजकुमार चित्रांगद के मध्य कुरुक्षेत्र में भारी युद्ध हुआ। यह युद्ध सरस्वती नदी के तट पर तीन वर्षों तक लगातार होता रहा। उस महान् युद्ध में गन्धर्वराज चित्रांगद ने कुरुश्रेष्ठ वीर चित्रांगद का वध कर दिया और स्वर्गलोक चला गया।[1]

धृतराष्ट्र

वायु और विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा महाभारत में धृतराष्ट्र को मुनि का पुत्र बताया गया है। कश्यप-पत्नी मुनि से उत्पन्न सोलह देवगन्धर्व पुत्रों में इसकी गणना की गई है।[2]

महाभारत में वर्णित है कि इन्द्र का दूत बनकर यह राजा मरुत्त के पास गया था और उन्हें इन्द्र का संदेश देते हुए कहा था कि वह बृहस्पति को अपने यज्ञ का पुरोहित बनाये, अन्यथा इन्द्र उनके ऊपर वज्र का प्रहार करेंगे।[3] सूर्य के रथ में निवास करने वाले द्वादश गन्धर्व गायकों में यह एक है।[4] शिशिर ऋतु में ये सूर्य के रथ में सूर्यवर्चा के साथ रहते हैं।[5] भागवत पुराण के अनुसार ये आश्विन मास में किन्तु

---

1. आदिपर्व 101/7-10, देवीभागवत 1/20, अग्नि 13/5, विष्णु 4/21/35.
2. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7, आदि पर्व 65/42-44.
3. अश्वमेध पर्व 10/2-5.
4. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
5. वायु 52/21, लिंग 1/55/64, ब्रह्माण्ड 1/23/21, मत्स्य 126/22.

विष्णु और गरूड़ पुराण के अनुसार माघ मास में सूर्य के रथ में निवास करते हैं।[1] महाभारत में उल्लिखित है कि गन्धर्वराज धृतराष्ट्र ही पृथ्वीलोक में दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र के रूप में अवतीर्ण हुए थे।[2]

पद्मशेखर

कथासरित्सागर में इस गन्धर्व का वर्णन किया गया है। यह एक गन्धर्वराज है। इसने भगवान शिव की तपस्या की और उन्हें प्रसन्न करके एक श्रेष्ठ पुत्र और एक कन्या प्राप्त करने का वर प्राप्त किया।[3] उस कन्या के उत्पन्न होने पर आकाशवाणी हुई कि यह पद्मावती नामक कन्या विद्युत्ध्वज के शत्रु विद्याधरराज मुक्ताफलकेतु की पत्नी होगी।[4]

रंगविद्याधर

पद्मपुराण में रंगविद्याधर या गीतविद्याधर नामक गन्धर्व का उल्लेख है। यह एक दुष्ट गन्धर्व था और मुनियों को सताया करता था। मेरु पर्वत पर तपस्यारत पुलस्त्य मुनि के पास जाकर यह गीत गाने का अभ्यास करने लगा। उसका मधुर संगीत सुनकर मुनि का ध्यान भंग

---

1. भागवत 12/11/43, विष्णु 2/10/16-17, गरूड 1/58/18.
2. आश्रमवासिक पर्व 31/8, स्वर्गारोहण 4/15.
3. कथासरित्सागर 17/3/86-87.
4. कथासरित्सागर 17/3/137-138.

हो गया। मुनि ने उसे अन्यत्र अपने गीत का अभ्यास करने का निवेदन किया, लेकिन वह नहीं माना। तब पुलस्त्य मुनि उस स्थान को त्याग कर अन्यत्र तपस्या करने लगे। तदनन्तर वह गन्धर्व वराह का रूप धारण कर उनके पास गया और थूथुन के अग्रभाग से उनका तिरस्कार करने लगा और उनके आगे मलमूत्र कर दिया। तत्पश्चात् एक दिन वह पुनः वहाँ आकर अट्टहास करने लगा। शूकर की चेष्टा को देखकर मुनि उस पर विद्याधर गन्धर्व होने की आशंका हुई। तत्पश्चात् मुनि ने अत्यधिक क्रोधित होकर उसे शूकर-योनि में उत्पन्न होने का शाप दे दिया।[1]

शैलूष

वाल्मीकि रामायण में शैलूष नामक गन्धर्वराज का वर्णन किया गया है। ये ऋषभ पर्वत में निवास करते हैं और उस वन की रक्षा करते हैं। यह रोहित नामक गन्धर्वों का गन्धर्वराज है।[2] इनकी सरमा नामक पुत्री का विभीषण के साथ विवाह हुआ था।[3]

भरत के मामा युधाजित् ने राम के पास दूत प्रेषित करके शैलूष के विनाश के लिए निवेदन किया था। उस समय श्रीराम ने भरत को आदेश दिया। भरत ने उसके वध के लिए एक बड़ी सेना के साथ प्रस्थान किया।[4] भरत ने अपने मामा युधाजित् के साथ गन्धर्वराज शैलूष पर आक्रमण किया। गन्धर्वों और भरत की सेना के मध्य भयंकर

---

1. पद्म, भूमि 46/16-56.
2. वा.रा. 4/41/41-43.
3. वा.रा. 7/12/24.
4. विष्णुधर्मोत्तर 1/202-203.

युद्ध हुआ। यह युद्ध सात दिन तक लगातार चलता रहा। इस युद्ध में शैलूष तथा उनकी सेनामें तीन करोड़ गन्धर्व मारे गये और वहाँ भरत ने अपना राज्य स्थापित किया।[1] वाल्मीकि रामायण में भी इसकी पुष्टि होती है।[2] महाभारत में वर्णित है कि कुबेर सभा में गन्धर्वों के साथ शैलूष भी कुबेर की उपासना करते थे।[3]

वररुचि

मत्स्य पुराण में इसका उल्लेख है। यह नाट्यवेद का पारंगत विद्वान् था। अप्सराओं और गन्धर्वों ने इसे दोग्धा बनाकर वसुधा से सुगन्धों का दोहन किया था।[4]

वसुरुचि

पद्मपुराण के अनुसार यह अथर्व वेद में पारंगत था। अप्सराओं ने इसे दोग्धा और चित्ररथ को वत्स बनाकर पृथ्वी रूपी धेनु से पवित्र गन्धों का दोहन किया था।[5] विष्णु पुराण में उल्लिखित है कि आश्विन मास में यह सूर्य के रथ में निवास करता है।[6]

---

1. विष्णुधर्मोत्तर 1/261-266.
2. वा.रा. 7/100/20-24, 7/101/1-10.
3. सभापर्व 10/25-26.
4. मत्स्य 10/24-25.
5. पद्म, सृष्टि 8/24-25.
6. विष्णु 2/10/11.

सुरुचि

हरिवंश और पद्म पुराण में वर्णित है कि गन्धर्वों और अप्सराओं ने गन्धर्वराज सुरुचि को दोग्धा बनाकर वसुधा से पवित्र गन्धों का दोहन किया था।[1] सूर्य के रथ में रहने वाले द्वादश गन्धर्व गायकों में यह एक है।[2] शरद ऋतु में ये परावसु गन्धर्व के साथ सूर्य के रथ में रहते हैं।[3]

सुन्दर

स्कन्द पुराण में सुन्दर नामक गन्धर्व का उल्लेख है। यह वीरबाहु नामक गन्धर्व का पुत्र है। यह गन्धर्व रंगक्षेत्र के एक जलाशय में नग्न होकर युवतियों के साथ जल विहार कर रहा था। जब वसिष्ठ मुनि अन्य महर्षियों के साथ वहाँ पहुँचे, तब युवतियों ने भय से अपने-अपने कपड़े ओढ़ लिये, परन्तु यह गन्धर्व नग्नावस्था में ही खड़ा रहा। यह देख वसिष्ठजी क्रोधित हो गये और उसे राक्षस होने का शाप दे दिया।[4] मुनि के शाप से यह भयानक आकृति का राक्षस होकर घूमता रहा। सोलह वर्ष के पश्चात् यह भ्रमण करते हुए चक्रतीर्थ में पहुँचा और पद्मनाभ मुनि को भक्षण करने के लिए उन पर आक्रमण किया। मुनि ने रक्षा के

---

1. हरिवंश 1/6/38-39, पद्म, भूमि 29/65-66, ब्रह्म 4/107.
2. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
3. ब्रह्माण्ड 1/23/13, लिंग 1/55/56, मत्स्य 126/14.
4. स्कन्द, वैष्णव, वेंकटाचल 24/5-12.

लिए भगवान् विष्णु की स्तुति की। भगवान् विष्णु ने अपने चक्र को उनकी रक्षा के लिए प्रेषित किया। सुदर्शन चक्र ने उसका मस्तक काट डाला और इस गन्धर्व नें राक्षस शरीर त्याग कर दिव्य देह धारण कर लिया। दिव्य रूप धारण करके उसने सुदर्शन चक्र और पद्मनाभ मुनि को प्रणाम किया और स्वर्गलोक चला गया।[1]

सुशंख
======

पद्म पुराण में सुशंख नामक गन्धर्वकुमार का वर्णन है। इसका रूप अत्यन्त मनोहर था। यह तपस्या में लगा रहता था। मृत्यु-कन्या सुनीथा तपस्यारत इस गन्धर्वकुमार को प्रतिदिन सताती रहती थी किन्तु सुशंख उसे क्षमा कर देते थे। एक दिन क्रोधित होकर सुशंख ने सुनीथा को शाप दे दिया कि उसके गर्भ से दुष्ट पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र देवताओं और ब्राह्मणों का निन्दक, पापाचारी और अत्यन्त दुष्ट होगा।[2] इसी शाप के कारण राजा अंग के द्वारा सुनीथा के गर्भ से अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[3]

---

1. स्कन्द, वैष्णव, वेंकटाचल 24/30-35.
2. पद्म, भूमि, 30/50-72. 2. पद्म, भूमि 34.

सूर्यवर्चा

वायु और विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा महाभारत में इसे मुनि का पुत्र वर्णित किया गया है। कश्यप के संयोग से मुनि ने सोलह देवगन्धर्वों को उत्पन्न किया। सूर्यवर्चा उन्हीं में एक देव गन्धर्व है।[1]

सूर्य-रथ में गीत गाने वाले श्रेष्ठ द्वादश गन्धर्व गायकों में इसकी भी गणना की गई है।[2] शिशिर ऋतु में ये सूर्य के रथ में विराजमान होते हैं।[3] विष्णु और गरूड़ पुराण के अनुसार ये फाल्गुन मास में सूर्य के रथ में उपस्थित रहते हैं।[4] किन्तु भागवत पुराण के अनुसार कार्तिक मास में ये सूर्य रथ में निवास करते हैं।[5]

हंस

वायु पुराण के अनुसार हंस वरिष्ठा के पुत्र हैं। वरिष्ठा से उत्पन्न आठ गन्धर्वों में यह ज्येष्ठ पुत्र है।[6] किन्तु महाभारत में इसे अरिष्ठा का पुत्र बताया गया है। यहीं गन्धर्वराज मृत्युलोक में धृतराष्ट्र नाम से विख्यात हुआ।[7]

---

1. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7, आदिपर्व 65/42-44.
2. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
3. वायु 52/21, ब्रह्माण्ड 1/23/21, लिंग 1/55/64, मत्स्य 126/22.
4. विष्णु 2/10/18, गरूड़ 1/58/19.
5. भागवत 12/11/44.
6. वायु 69/45-48.
7. आदि पर्व 67/83-84.

सूर्यवर्चा

वायु और विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा महाभारत में इसे मुनि का पुत्र वर्णित किया गया है। कश्यप के संयोग से मुनि ने सोलह देवगन्धर्वों को उत्पन्न किया। सूर्यवर्चा उन्हीं में एक देव गन्धर्व है।[1]

सूर्य-रथ में गीत गाने वाले श्रेष्ठ द्वादश गन्धर्व गायकों में इसकी भी गणना की गई है।[2] शिशिर ऋतु में ये सूर्य के रथ में विराजमान होते हैं।[3] विष्णु और गरूड़ पुराण के अनुसार ये फाल्गुन मास में सूर्य के रथ में उपस्थित रहते हैं।[4] किन्तु भागवत पुराण के अनुसार कार्तिक मास में ये सूर्य रथ में निवास करते हैं।[5]

हंस

वायु पुराण के अनुसार हंस वरिष्ठा के पुत्र हैं। वरिष्ठा से उत्पन्न आठ गन्धर्वों में यह ज्येष्ठ पुत्र है।[6] किन्तु महाभारत में इसे अरिष्ठा का पुत्र बताया गया है। यही गन्धर्वराज मृत्युलोक में धृतराष्ट्र नाम से विख्यात हुआ।[7]

---

1. वायु 69/1-3, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/5-7, आदिपर्व 65/42-44.
2. कूर्म 1/42/12-13, लिंग 1/55/29-31.
3. वायु 52/21, ब्रह्माण्ड 1/23/21, लिंग 1/55/64, मत्स्य 126/22.
4. विष्णु 2/10/18, गरूड़ 1/58/19.
5. भागवत 12/11/44.
6. वायु 69/45-48.
7. आदि पर्व 67/83-84.

तनय

मार्कण्डेय पुराण में तनय नामक गन्धर्व का वर्णन है। इसकी पुत्री का नाम भामिनी था। अगस्त्य मुनि के शाप से भामिनी राजा विशाल की पुत्री हुई। तनय गन्धर्व के कहने पर राजपुत्र अवीक्षित ने उस कन्या का पाणिग्रहण किया। गन्धर्वों के पुरोहित तुम्बुरू ने यथाविधि होम-कार्य का सम्पादन किया था। उस समय देवगन्धर्वों और अप्सराओं ने गान व नृत्य किया। तत्पश्चात् तनय गन्धर्वों के साथ स्वर्ग चला गया।[1]

भामिनी के पुत्र उत्पन्न होने पर तनय ने तुम्बुरू का स्मरण किया। उस समय तुम्बुरू उपस्थित होकर बालक का जातकर्म संस्कार किया तथा स्तुतिपूर्वक बालक का स्वस्त्ययन किया।[2]

दुन्दुभी

महाभारत में दुन्दुभी नामक गन्धर्वी का उल्लेख हुआ है। ब्रह्मा जी ने इसे देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए भूतल में जाने का आदेश दिया था। पितामह की आज्ञा सुनकर यह मनुष्य लोक में आई और मन्थरा नामक प्रसिद्ध कुबड़ी दासी हुई। यह गन्धर्वी मन के समान वेगशाली थी। ब्रह्माजी ने इसे जो करना था, उसे समझा दिया था। मृत्युलोक में आकर इसने ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार कार्य आरम्भ किया और सदैव कैकेयी और कौशिल्या के प्रति राजा दशरथ के पक्षपात

---

1. मार्कण्डेय 124/7-16. 2. मार्कण्डेय 124/25-30.

को आधार बनाकर बैर की आग प्रज्वलित करने में लगी रहती थी।[1] इसके बहकावे में आकर रानी कैकेयी ने राजा दशरथ से भरत को अयोध्या राज्य प्रदान करने तथा राम को वनवास देने का वर माँगा था।[2] जिसके फलस्वरूप राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ तथा राजा दशरथ को प्राण त्यागना पड़ा था।

नर्मदा
======

वाल्मीकि रामायण में नर्मदा नामक गन्धर्वी का वर्णन प्राप्त होता है। इसकी तीन पुत्रियाँ क्रमशः सुन्दरी, केतुमती और वसुदा हुईं। इसने तीनों कन्याओं का क्रमशः माल्यवान्, सुमाली और माली से विवाह किया।[3]

सोमदा
=======

वाल्मीकि रामायण में गन्धर्वी सोमदा का उल्लेख किया गया है। यह ऊर्मिला की पुत्री है। यह चूलिन् मुनि की उपासना करती थी। इसकी सेवा से सन्तुष्ट होकर मुनि ने इसे मानसिक तप से प्रगट ब्रह्मदत्त नामक पुत्र प्रदान किया। ब्रह्मदत्त का विवाह कुशनाभ की एक सौ पुत्रियों के साथ हुआ। सोमदा गन्धर्वी ने अपनी पुत्रवधुओं का यथोचित अभिनन्दन किया।[4]

---

1. वन पर्व 276/10-16.
2. वन पर्व 277-16-26.
3. वा.रा. 7/5/31-43.
4. वा.रा. 1/33/12-25.

--:: अध्याय : 3 ::--

अप्सराओं का स्वरूप एवं उत्पत्ति

{अ} अप्सराओं की उत्पत्ति.

{आ} अप्सराओं का स्वरूप.

{इ} प्रमुख अप्सरायें :--

1. अलम्बुषा	2. उर्वशी
3. घृताची	4. तिलोत्तमा
5. प्रम्लोचा	6. पुञ्जिकस्थला
7. पूर्वचित्ति	8. मिश्रकेशी
9. मेनका	10. रम्भा
11. विश्वाची	12. सहजन्या.

{ई} अन्य अप्सरायें :--

1. अद्रिका	2. अनुम्लोचा
3. अतिगम्भीरा	4. काञ्चनमालिनी
5. क्रतुस्थली	6. गम्भीरा
7. चित्रलेखा	8. पञ्चचूड़ा
9. वरूथिनी	10. वपु
11. वर्द्धिनी	12. वर्चा
13. सुरभिदत्ता	14. सुश्यामा.

--::--::--
--::--

अप्सराओं की उत्पत्ति

पुराण, रामायण और महाभारत में अप्सराओं की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने देव, असुर, पितर, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा और पशु-पक्षी आदि को उत्पन्न किया।[1] हरिवंश पुराण में वर्णित है कि ब्रह्माजी ने रूपवती अप्सराओं को उत्पन्न किया।[2] श्रीमदभागवत पुराण में उल्लेख है कि ब्रह्माजी ने अपनी कांतिमयी मूर्ति से अप्सराओं को उत्पन्न किया।[3]

समुद्र से भी अप्सराओं की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि देवता और असुरों द्वारा समुद्र मंथन से कांतियुक्त अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इनकी संख्या साठ करोड़ थीं।

षष्टिः कोट्यो भवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम्।
असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः।।[4]

नरसिंह और विष्णु पराण में भी समुद्र मंथन से अप्सराओं के उत्पन्न होने का वर्णन मिलता है।[5] पदम पुराण में वर्णित है कि

---

1. वायु 9/54-56, विष्णु 1/5/57-59, कूर्म 1/7/61-62.
2. हरिवंश 3/20/3. 3. श्रीमदभागवत 3/20/38.
4. वा.रा. 1/45/32-35.
5. नरसिंह 38/27, विष्णु 1/9/96, स्कन्द, वैष्णव, वासुदेव 12/13.

देवता और दानवों द्वारा समुद्र-मंथन किये जाने से साठ करोड़ रूप और औदार्य आदि गुणों से युक्त अप्सराएँ प्रकट हुईं।[1] स्कन्द पुराण में अप्सराओं की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि क्षीर-सागर के मंथन से अप्सराओं की उत्पत्ति हुई। उर्वशी, मेनका, रंभा, चन्द्रलेखा, तिलोत्तमा, वपुष्मती, कांतिमती, लीलावती, उत्पलावती, अलंबुषा, गुणावती, स्थूलवती, स्थूलकेशी, केशी, कलावती, कलानिधि, . . . , गुणानिधि, कर्पूरतिलका, उर्वरा, अनंगलतिका, मदनमोहिनी आदि साठ हजार श्रेष्ठ अप्सराएँ समुद्र से प्रकट हुईं।[2]

हरिवंश पुराण में उल्लिखित है कि मेनका, सहजन्या, पर्णिका, पुंजिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, अनुम्लोचा और प्रम्लोचा -- ये दस अप्सराएँ तथा वेदवर्णित अन्य अप्सराएँ प्रजापति के संकल्प से उत्पन्न हुईं।[3] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में भी इन्हें दस दिव्य अप्सराओं के रूप में वर्णित किया गया है।[4] भगवान् नारायण के उरु भाग से उर्वशी के उत्पन्न होने का वर्णन भी मिलता है।[5]

नाट्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्माजी ने नाट्य के लिए मंजुकेशी, सुकेशी, मिश्रकेशी, सौदामिनी, देवदत्ता, देवसेना, विदग्धा, सुमाला, सुनन्दा, मागधी, अर्जुनी, सरला, केरला, धृति, नन्दा, सपुष्कला और

---

1. पद्म, सृष्टि 4/50-51. 2. स्कन्द, काशी, 9/6-12.
3. हरिवंश 3/36/49-50.
4. वायु 69/49-50, ब्रह्माण्ड 2/7/14-15.
5. वायु 69/51, ब्रह्माण्ड 2/7/16, देवीभाग. 4/6.

कमला को मानसिक संकल्प से उत्पन्न किया।[1] भगवान् नारायण ने सोलह हजार पचास अप्सराओं को उत्पन्न किया।[2]

उपर्युक्त वर्णन में अप्सराओं को अयोनिजा बताया गया है। इसके अतिरिक्त अप्सराओं की उत्पत्ति कश्यप की पत्नियों से होने का उल्लेख भी मिलता है। पद्म, हरिवंश, भागवत, विष्णु, मत्स्य, अग्नि, वायु, नरसिंह, कूर्म, ब्रह्म पुराण और महाभारत में कश्यप पत्नी मुनि से अप्सराओं की उत्पत्ति का उल्लेख है।[3] वायु पुराण में लिखा है कि कश्यप पत्नी मुनि ने अन्तरा, दारवत्या, प्रियमुख्या, पर्णिनी, अलम्बुषा, सुरोत्तमा, मिश्रकेशी, चाशी, मारीची, पुत्रिका, विद्युद्वर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्षणा, देवी, रम्भा, मनोरमा, सुवरा, सुबाहु, पूर्णिता, सुप्रतिष्ठिता, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुदन्ता, सुरसा, हेमा, शारद्वती, सुवृत्ता, कमला, सुभुजा और हंसपादा -- इन 34 लौकिक अप्सराओं को उत्पन्न किया।[4]

हरिवंश पुराण के अनुसार अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, तिलोत्तमा, सुरूपा, लक्षणा, क्षेमा, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुवृत्ता, सुमुखी, सुप्रिया, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काश्या और शारद्वती -- ये अप्सराएँ मुनि की संतान हैं।[5]

---

1. नाट्यशास्त्र 1/45-50. 2. देवीभाग. 4/6.
3. मत्स्य 6/45, ब्रह्म 3/105, पद्म सृष्टि 6/76, अग्नि 1/19/18, कूर्म 18/13, हरिवंश 1/3/118, नरसिंह 5/59, भागवत 6/6/29, विष्णु 1/21/25.
4. वायु 69/4-8. 5. हरिवंश 3/36/46-48.

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार अनूचाना, अनवद्या, प्रियमुख्या, गुणोचरी, मिश्रकेशी, पर्णाशा, पुंजिकस्थला, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, आद्रिका, लक्ष्मणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, आसिता, सुबाहु, सुव्रता, सुवपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुदारा, सुरसा, हेमा, शारद्वती, प्रसूता, सुमुखी, हंसमार्गा और सोरीया -- ये अप्सराएँ मुनि की कन्याएँ हैं।[1]

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार दक्षकन्या मुनि ने 24 कल्याणी अप्सराओं को उत्पन्न किया। उनके नाम हैं -- अरूणा, अनपाया, विमनुषा, वरांबरा, मिश्रकेशी, असिपर्णिनी, अलंबुषा, मारीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्ष्मणा, क्षेमा, रम्भा, मनोभवा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुभुजा, पुण्डरीका, अजगंधा, सुदती और सुरसा।[2]

हरिवंश पुराण, महाभारत आदि में कश्यप पत्नी प्राधा को अप्सराओं की जननी वर्णित किया गया है। हरिवंश पुराण के अनुसार प्राधा ने नाना रूप-रंग-सम्पन्न, पवित्र और पुण्यलक्षणायुक्त आठ अप्सराओं को उत्पन्न किया। वे हैं -- अनवद्या, मनु, वंशा, अनूना, अरूणाप्रिया, अनुगा, सुभगा और भासी। किंचित् पाठान्तर के साथ यही वर्णन महाभारत में भी है।[3] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अनवद्या, अनुका, मूनुका, करूणाप्रिया, मनूना, सुभगा, सहजन्या, मेनका, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ति, प्रम्लोचा और निम्लोचन्ती अप्सराओं को प्राधा की पुत्री कहा गया है।[4] महाभारत में उल्लिखित

---

1. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/8-11.
2. ब्रह्माण्ड 2/7/5-8.
3. हरिवंश 3/36/44-45, आदिपर्व 65/45-46.
4. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/23-25.

है कि प्राधा ने अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरूणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरजा और सुप्रिया नामक अप्सराओं को जन्म दिया।[1]

अरिष्टा ने निम्न अप्सराओं को उत्पन्न किया — वरिष्टा, अनवद्या, अनवशा, अन्वता, मदनप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी। ये दिव्य अप्सराएँ गन्धर्वों की अर्धांगिनी थीं।[2] हरिवंश पुराण में उल्लेख है कि कश्यपपत्नी प्रबोधा से अप्सराओं की उत्पत्ति हुई।[3] मार्कण्डेय पुराण के अनुसार अरिष्टा ने अप्सराओं को उत्पन्न किया।[4] वायु पुराण में वर्णित है कि अरिष्टा से वेगवन्त् नामक अप्सराओं के समूह उत्पन्न हुए।[5] मत्स्य पुराण के अनुसार ताम्रा अप्सराओं की जननी है।[6] महाभारत में कपिला से भी अप्सराओं के उत्पन्न होने का उल्लेख है।[7]

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में अप्सराओं के 14 गणों का उल्लेख हुआ है। (1) आहूत गण ब्रह्मा की मानस कन्याएँ हैं। (2) शोभयन्त गण की अप्सराएँ मनु की कन्याएँ हैं। (3) वेगवन्त नामक गण की अप्सराएँ अरिष्टा से उत्पन्न हुई हैं। (4) अग्निसंभव नामक गण की उत्पत्ति ऊर्जा के संयोग से हुई। (5) आयुष्मती नामक गण की अप्सराएँ सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुईं। (6) कुरु नामक अप्सराओं की उत्पत्ति चन्द्रमा के तेज से हुई। (7) शुभा नामक गण

---

1. महाभारत, आदि, 65/48-50.
2. वायु 69/47-48.
3. हरिवंश 3/14/62.
4. मार्कण्डेय 101/7.
5. वायु 69/53.
6. मत्स्य 171/60.
7. महाभारत, आदि 65/52.

की अप्सराएँ यज्ञ से उत्पन्न हुईं। §8§ वह्नि गण की अप्सराएँ ऋक् एवं साम से उत्पन्न हुईं। §9§ वारिजा नामक अप्सराओं का जन्म अमृत से हुआ। §10§ मुदा नामक गण की अप्सराएँ वायु से उत्पन्न हुईं। §11§ भूमि से उत्पन्न अप्सराएँ भवा कहलायीं। §12§ रुचा नामक अप्सराएँ विद्युत् से उत्पन्न हुईं। §13§ मृत्यु की कन्याएँ भैरवा नामक अप्सरा कही जाती हैं। और §14§ काम से उत्पन्न अप्सराएँ शोभयन्ती नाम से विख्यात हैं।[1] ब्रह्माण्ड पुराण में भी अप्सराओं के चौदह गणों का उल्लेख किंचित् पाठभेद सहित वर्णित किया गया है।[2]

मेनका ब्रह्मज्ञान परायण मेन की कन्या है।[3] ब्रह्मा के अग्निकुण्ड से प्रभावती तथा ब्रह्मा के वेदी तल से वेदवती उत्पन्न हुई। हेमा नामक अप्सरा यम की पुत्री थी। इस प्रकार अनेक अप्सराएँ विविध देवताओं एवं ऋषियों की पत्नी अथवा माता हुईं।[4]

समुद्र-मंथन से अप् §जल§ में उसके रस से वे सुन्दरी स्त्रियाँ उत्पन्न हुई थीं, इसलिए अप्सराएँ कहलायीं —

अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्माद् वर स्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुज श्रेष्ठ तस्मादप्सरसो भवन्।।[5]

अप्सराओं की उत्पत्ति से सम्बन्धित उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आदिकाल में प्रजापति ब्रह्माजी ने संकल्प आदि के द्वारा अप्सराओं को उत्पन्न किया। ये अप्सराएँ ब्रह्मा की

---

1. वायु 69/53-58.
2. ब्रह्माण्ड 2/7/18-24.
3. वायु 69/52.
4. वायु 69/59-62.
5. वा. रा. 1/45/33.

अयोनिजा अथवा अमैथुनी सृष्टि थीं। किन्तु कालान्तर में प्रजापति की इस मानसिक सृष्टि से प्रजा की वृद्धि नहीं हो सकी। तब ब्रह्माजी ने अपने शरीर को ही स्त्री और पुरुष रूप में दो भागों में विभक्त किया और मनु-शतरूपा के रूप में उत्पन्न होकर मैथुनी अथवा योनिज सृष्टि का प्रादुर्भाव किया, जिससे प्रजाओं की पर्याप्त वृद्धि हुई। ब्रह्माजी के द्वारा उत्पन्न दक्ष ने सृष्टि विस्तार के लिए अपनी साठ कन्याओं का विवाह विविध देवताओं, ऋषियों आदि से सम्पन्न किया, जिनकी संतानों से प्रजा की वृद्धि होने लगी।

इस प्रकार दक्ष की पुत्री और कश्यप की पत्नी मुनि, प्राधा, अरिष्टा, प्राधा, कपिला आदि से उत्पन्न अप्सराएँ योनिजा या मैथुनी सृष्टि के अन्तर्गत आती हैं।

अप्सराओं का स्वरूप

पुराण, महाभारत, कथासरित्सागर और वाल्मीकि रामायण में अप्सराओं के स्वरूप का वर्णन हुआ है। अप्सराओं के लिए सुश्रोणि, सुकेशी, सुमध्या, मानिनी, कामरूपिणि, विशाल-लोचना, सर्वांगसुन्दरी, तेजस्विनी, शुभ्र, अनिंद्यसुन्दरी, पद्मलोचना, चन्द्रमुखी, महाकटितटश्रोणि, पीनोन्नतपयोधरा, चारुसर्वांगी, स्वेच्छाचारिणि, अनिंदिता, कृशांगी, पृथुश्रोणी, तन्वंगी, सर्वलक्षणसम्पन्ना, मनःपवनगामिनी, शुचिस्मिता, सुशोभना, सुप्रभ, अनवद्यांगी, दिव्यरूपधारिणी, गजगामिनी, शुभलक्षणा, सुमध्यमा, वराप्सरा, पुण्यलक्षणा, चारुजंघा, पीनश्रोणिपयोधरा, दिव्यमाला-

म्बरधरा, सर्वालंकारभूषिता, आयतलोचना, महाभागा, चारूरूपिणि, रूपयौवनगर्विता, कमलाक्षी, दिव्यरूपिणी, मनोरमा, कामगमा, वरारोहा, कामनिपुणा, सुदती, चारूवेषा, मनोजवा, रूचिरानना, कामयवृिशाला आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है।

अपने रूप-सौन्दर्य एवं औदार्य आदि गुणों के कारण अप्सराओं ने अनेक ऋषियों को आकर्षित कर काम के वशीभूत किया था और उनकी तपस्या को भंग किया था। अप्सराओं ने तपस्यारत नर-नारायण ऋषि की तपस्या में विघ्न उत्पन्न किया।[1] घृताची को देखकर व्यास के शरीर में काम-भाव उत्पन्न हो गया था और वीर्य स्खलित हो जाने से शुकदेव का जन्म हुआ था।[2] इसे ही देख कर महर्षि भारद्वाज का वीर्य स्खलित होने से श्रुतावलि नामक कन्या उत्पन्न हुई।[3] तिलोत्तमा ने अपने दिव्यरूप-यौवन सम्पन्न, करोड़ों रत्नों से निर्मित अंगों के द्वारा आकर्षित करके सुन्द और उपसुन्द को नष्ट कर दिया।[4] मेनका ने विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करके शकुन्तला नामक कन्या को जन्म दिया।[5] रम्भा ने विश्वामित्र का तपोभंग करने के कारण दस सहस्र वर्षों तक पाषाण रूप में रहने का शाप प्राप्त किया —

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम्।
दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे।।
तस्य शापेन महता रम्भा शैली तदाभवत्।[6]

---

1. देवीभागवत 4/6.
2. महाभारत, शांति 324/2-15.
3. महाभारत,शल्य 48/62-67.
4. पद्म, उत्तर 126/50-53.
5. वा.रा. 1/63/1-9, महाभारत आदि, 72/1-11.
6. वा.रा. 1/64/12-15, स्कन्द 3/1/39/49-50.

वपु नामक अप्सरा ने दुर्वासा के तप में विघ्न करके उनके शाप से पक्षी योनि प्राप्त की थी।[1] अलम्बुषा के रूप-लावण्य से आकर्षित दधीच ऋषि का वीर्य सरस्वती नदी में गिर पड़ा था जिससे उसके गर्भ से सारस्वत नामक पुत्र का जन्म हुआ।[2] प्रम्लोचा ने कण्डु मुनि के तप में विघ्न डालकर अनेक वर्षों तक उनके साथ विहार किया और उसके गर्भ से मारिषा नाम की कन्या उत्पन्न हुई।

इस प्रकार दिव्य-रूप-यौवन से सम्पन्न अप्सराओं की कांति सभी को आकर्षित करने वाली थी। उन्हें देखकर देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व सहसा कामवश हो जाते थे।

अलम्बुषा

स्कन्द पुराण के अनुसार यह क्षीरसागर के मंथन से उत्पन्न हुई।[3] वायु व हरिवंश पुराण में उल्लिखित है कि यह कश्यप-पत्नी मुनि की पुत्री है।[4] किन्तु महाभारत में कहा गया है कि इसे प्राधा ने जन्म दिया।[5] इसने इक्ष्वाकु के संयोग से विशाल नामक पुत्र को उत्पन्न किया।[6]

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः।।

---

1. मार्कण्डेय 1/41-55.
2. महाभारत शल्य पर्व 51/7-21.
3. स्कन्द 4/9/6-12.
4. वायु 69/4-8, हरिवंश 3/36/46-48.
5. महाभारत, आदि 65/48-50.
6. वा.रा. 1/47/11-12,

भागवत पुराण में वर्णित है कि अलम्बुषा ने राजा तृणबिन्दु को वरण करके उनसे कई पुत्र और इडविडा नामक कन्या को उत्पन्न किया। किन्तु विष्णुपुराण में तृणबिन्दु के संयोग से अलम्बुषा के विशाल नामक पुत्र होने का उल्लेख है।[1] भरत की सेना के आतिथ्य-सत्कार के लिए महर्षि भरद्वाज ने अप्सराओं के साथ इसका भी आवाहन किया था।[2] इसने भी भरद्वाज मुनि के आश्रम में भरत के समीप नृत्य किया था।[3] इन्द्र की आज्ञा से यह दधीच ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए गई। सरस्वती नदी में देवताओं का तर्पण करते हुए मुनि इसे देखकर कामबाण से दग्ध हो गये, जिससे उनका वीर्य स्खलित होकर सरस्वती के जल में गिर पड़ा था। उस वीर्य को ग्रहण कर सरस्वती गर्भवती हो गई और उत्पन्न पुत्र को ऋषि को प्रदान किया। उस बालक का नाम सारस्वत पड़ा।[4] अलम्बुषा ने भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए विष्णु लोक में नृत्य किया था।[5] भगवान् वामन के समीप इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[6] इन्द्र-सभा में अष्टावक्र मुनि के आतिथ्य-सत्कार के लिए अप्सराओं के साथ इसने नृत्य किया था।[7] ब्रह्म-सभा में नृत्य करते समय वायु के झकोर से इसके वस्त्र गिर पड़े थे, जिससे विधूम नामक वसु इसके प्रति कामासक्त हो गया था। कामासक्त वसु को देखकर यह अप्सरा भी काम के वशीभूत हो गयी थी। तब ब्रह्माजी ने इसे मृत्युलोक में मनुष्य योनि में विधूम की पत्नी होने का शाप दिया था। ब्रह्म शाप के कारण यह अयोध्या में राजा कृतवर्मा की कन्या मृगावती के रूप में उत्पन्न हुई। चक्रतीर्थ में स्नान करने से शापमुक्त होकर यह स्वर्गलोक चली गई।[8]

---

1. भागवत 9/2/31 विष्णु 4/1/48-49
2. वा.रा. 2/91/17.
3. वा.रा. 2/91/47.
4. महाभारत, शल्य 51/7-21.
5. ब्रह्म 68/60-67.
6. हरिवंश 3/70/16-20.
7. महाभारत, अनुशासन 19/42-46.
8. स्कन्द 3/1/5/7-165.

उर्वशी

उर्वशी की कथा का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, पुराण और महाभारत में है। देवीभागवत में लिखा है कि नर-नारायण की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित 1680 अप्सराओं के समक्ष भगवान नारायण ने अपने उरु में हाथ पटक कर एक सर्वांग सुन्दरी स्त्री को उत्पन्न किया। उरु से उत्पन्न होने के कारण यह स्त्री "उर्वशी" कहलायी। ऋषि ने इसे इन्द्र के पास अप्सराओं के साथ भेज दिया।[1] इसे ब्रह्म-शाप के कारण मृत्युलोक में आना पड़ा। शाप से मुक्त होने के लिए इसने शर्तों सहित राजा पुरूरवा का वरण किया। उन शर्तों को राजा से भंग करवाकर विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने इसे शाप से मुक्त कराया।[2] किन्तु स्कन्द और भागवत पुराण के अनुसार मित्रावरूण के शाप के कारण इसे मृत्युलोक में आना पड़ा था।[3] रामायण में वर्णित है कि उर्वशी को देखकर वरूण देव में कामभाव उत्पन्न हो गया। वरूण देवता द्वारा समागम के लिए आमंत्रित किये जाने पर उर्वशी ने मित्र देवता का पति के रूप में स्वीकार करने की बात कही। तत्पश्चात् उर्वशी के कहने पर वरूण ने समागम के उद्देश्य से कुम्भ में वीर्य डाल दिया। तदनन्तर उर्वशी मित्र देवता के पास गई। मित्रदेवता ने उर्वशी को शाप देते हुए कहा कि तू कुछ काल तक मनुष्य लोक में निवास करेगी और पुरूरवा तेरे पति होंगे।

---

1. देवीभागवत 4/6, विष्णुधर्मोत्तर 1/129/6-20, मत्स्य 61/21-26.
2. वायु 91/16-40, विष्णु 4/6/35-55, भागवत 9/14/21-32, हरिवंश 1/26/4-46, ब्रह्म 151/3-20.
3. स्कन्द 3/1/28/19, श्रीमद्भागवत 9/14/15-20.

मनुष्यलोकमास्थाय किञ्चिद् कालं निवसत्स्यसि।।
बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशिराजः पुरुरवाः।।[1]

विभिन्न पुराणों में उल्लिखित है कि इसने राजा पुरूरवा को पति के रूप में वरण किया और अनेक वर्षों तक विविध उपवनों में उनके साथ विहार किया। ऋग्वेद के अनुसार दोनों का चार वर्ष तक प्रणय सम्बन्ध रहा और उनका आयु नामक पुत्र हुआ। अन्त में उर्वशी पुरूरवा को छोड़कर चली जाती है। पुरूरवा शोकविह्वल होकर आत्म-हत्या के लिए उद्यत होता है। उर्वशी उसे आत्महत्या से रोकती है। यही ऋग्वेद की कथा शतपथब्राह्मण में विस्तृत रूप से वर्णित है। उर्वशी राजा पुरूरवा से कहती है कि वर्ष की अन्तिम रात्रि में वह उसका सहवास सुख उठा सकता है। उस रात्रि में दोनों मिलते हैं। उर्वशी के कहने पर राजा पुरूरवा गन्धर्वों से गन्धर्व होने का वर प्राप्त किया। राजा अग्निहोत्र सम्पादित करके गन्धर्व बन गया।[2]

ब्रह्म, अग्नि और हरिवंश पुराण में वर्णित है कि उर्वशी ने राजा पुरूरवा के साथ उनसठ वर्ष तक विहार किया। स्कन्द पुराण में 61 वर्ष तक विहार करने का उल्लेख है। वायु पुराण के अनुसार उर्वशी ने चौसठ वर्ष तक विविध उपवनों में पुरूरवा के साथ विहार किया। किन्तु विष्णु पुराण के अनुसार उर्वशी ने राजा पुरुरवा के साथ साठ हजार वर्ष व्यतीत किये।[3] इनके पुत्रों की संख्या एवं उनके नामों में भी विविध पुराणों में पाठभेद दृष्टिगत होता है।

---

1. वा.रा. 7/56/13-26, मत्स्य 61/27-30.
2. ऋग्वेद 10/95, शतपथ ब्राह्मण
3. ब्रह्म 10/1-10, हरिवंश 1/26/5-7, वायु 91/16-40, अग्नि 274/12-13, स्कन्द 3/1/28/29, विष्णु 4/6/48.

कूर्म पुराण के अनुसार इसने राजा पुरूरवा से छः पुत्रों को उत्पन्न किया -- आयु, मायु, अमायु, विश्वायु, शतायु और श्रुतायु।[1] किन्तु वायु पुराण में मायु, अमायु और श्रुतायु के स्थान पर क्रमशः श्रीमान्, अमावसु और गतायु बताया गया है। श्रीमद्-भागवत के अनुसार उर्वशी के आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय नामक पुत्र हुए।[2] हरिवंश पुराण के अनुसार पुरूरवा से इनके सात पुत्र उत्पन्न हुए -- आयु, अमावसु, विश्वायु, श्रुतायु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु। ब्रह्म पुराण में इनके सात पुत्रों के नाम आयु, अमावसु, विश्वावसु, श्रुतायु, दृढ़ायु, वनायु और बह्वायु उल्लिखित है। कूर्म पुराण में भी एक स्थान पर उर्वशी के देवपुत्र सदृश सात पुत्र उत्पन्न होने का उल्लेख है।[3] अग्नि पुराण के अनुसार उर्वशी ने दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और शतायु नामक पुत्रों को जन्म दिया।[4] पद्म पुराण में उर्वशी के गर्भ से आठ पुत्रों के उत्पन्न होने का उल्लेख है -- आयु, दृढ़ायु, वश्यायु, बलायु, धृतिमान्, वसु, दिव्यजायु और शतायु।[5] स्कन्द पुराण में पुरूरवा से उर्वशी के पाँच पुत्रों के जन्म का वर्णन है।[6]

ब्रह्म पुराण के अनुसार उर्वशी के परीक्षा में सफल होने पर काशी के एक मूर्ख ब्राह्मण ने प्रतिष्ठानपुर में राजा पुरूरवा के रूप में उत्पन्न होकर, उर्वशी को प्राप्त किया।[7] प्रायः सभी पुराणों में पुरूरवा-उर्वशी प्रसंग में वर्णित है कि उर्वशी के वियोग

---

1. कूर्म 22/1-2, ब्रह्माण्ड 2/66/22-23.
2. वायु 91/50-53, श्रीमद्भागवत 9/15/1.
3. हरिवंश 1/26/10-11, ब्रह्म 10/11-12, कूर्म 23/45.
4. अग्नि 274/15.
5. पद्म, सृष्टि 12/75-76.
6. स्कन्द 3/1/28/53.
7. ब्रह्म 228/103-151.

में पुरूरवा उन्मत्त की तरह वन में भटकने लगे थे। कथासरित्सागर में वर्णित है कि उर्वशी राजा पुरूरवा को नन्दन वन में देखकर मोह से मूर्च्छित हो गई थी। विष्णु की आज्ञा से इन्द्र ने उर्वशी को पुरूरवा को प्रदान किया। इन्द्र सभा में तुम्बुरू के शाप से उर्वशी का राजा से वियोग हुआ, तब उर्वशी वियोग से संतप्त हो मूर्च्छित होकर गन्धर्व -लोक में पड़ी रही। भगवान् विष्णु की प्रेरणा से राजा के साथ पुनः उर्वशी आनन्द का उपभोग करने लगी।[1]

पद्म पुराण के अनुसार आचार्य भरत के लक्ष्मी-स्वयंवर नामक नाटक में लक्ष्मी का अभिनय कर रही उर्वशी वहाँ उपस्थित पुरूरवा को देखकर कामासक्त हो गई और अभिनय करना भूल गई, जिससे आचार्य भरत ने क्रोधित होकर उर्वशी को पृथ्वीलोक में पुरूरवा से पचपन वर्ष तक वियोग होने का शाप दे दिया।[2]

बदरीकाश्रम में तपस्यारत मित्र और वरुण देवता उर्वशी को देखकर क्षुब्ध हो गये। जिससे मृगचर्म के आसन पर उन दोनों का वीर्य स्खलित हो गया। उस समय शाप के भय से उर्वशी ने जल से भरे हुए कलश में उनके वीर्य को रख लिया। उसी घट से वसिष्ठ और अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए, जो मित्र और वरुण के पुत्र कहे जाते हैं।[3] राजा प्रमति के साथ जुआ खेलते हुए इन्द्र उर्वशी को हार गये थे। तब चित्रसेन ने प्रमति को जुआ में हराकर इसे पुनः जीता था।[4] राजा दुर्जय ने उर्वशी से चिरकाल तक रमण किया। अन्त में उर्वशी ने बड़े बड़े रोएँ एवं पीली आँखों से युक्त उत्कट रूप दिखाकर उसे विरक्त किया।[5] इन्द्र-सभा में नृत्य व अभिनय करती हुई उर्वशी पुरूरवा

---

1. कथासरित्सागर 3/3/4-30. 2. पद्म, सृष्टि 12/70-75.
3. मत्स्य 201/23-29. 4. ब्रह्म 171/7-25.
5. कूर्म 23/7-36.

को देखकर हँसने लगी। तब तुम्बुरू ने उसे शाप दिया कि पुरूरवा से शीघ्र ही तुम्हारा वियोग होगा।[1]

यह स्वर्ग की ग्यारहवीं अप्सरा कही गयी है।[2] भगवान् वामन के समीप नृत्य करने वाली अप्सराओं के साथ यह भी थी।[3] विष्णु लोक में अप्सराओं के साथ मधुर गान और नृत्य से यह पुरुषोत्तम को प्रसन्न करती थी।[4] पुरूरवा के कहने पर उर्वशी देवनदी सरस्वती को उनके पास लाई और पुरूरवा ने सरस्वती से सरस्वान् नामक पुत्र को उत्पन्न किया।[5] इन्द्र ने इसे विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट करने कहा। उस समय मुनि से भयभीत उर्वशी इन्द्र को उत्तर नहीं दे पायी।[6] यह नृत्य और गीत के लिए अप्सराओं के साथ हिरण्यकशिपु की सेवा में उपस्थित रहती थी।[7] सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय नृत्य करने वाली सात श्रेष्ठ अप्सराओं में यह एक थी।[8] इन्द्र सभा में नारद ने अप्सराओं के साथ इसे भी दुर्वासा मुनि को क्षुब्ध करने की चुनौती दिया था।[9] कुबेर-सभा में अष्टावक्र मुनि के आतिथ्य-सत्कार के लिए अप्सराओं के साथ इसने नृत्य किया था।[10] माघ मास में गंगा-यमुना के संगम स्थल त्रिवेणी में उर्वशी स्नान करने आती है।[11] हेमन्त ऋतु में यह सूर्य के रथ में रहती है।[12]

---

1. स्कन्द 3/1/28/73-78.
2. वायु 69/51-52.
3. हरिवंश 3/70/16-20.
4. ब्रह्म 68/60-67.
5. ब्रह्म 101/8-9.
6. ब्रह्म 147/9-10.
7. हरिवंश 3/46/5-7, मत्स्य 161/75.
8. ब्रह्म 32/99-101.
9. मार्कण्डेय 1/29/40.
10. अनुशासन पर्व 19/42-46.
11. नारदीय 2/63/10-11.
12. वायु 52/18, ब्रह्माण्ड 1/23/18, लिंग 1/55/60, मत्स्य 126/19.

उर्वशी ने इन्द्र-सभा में अर्जुन के समक्ष नृत्य किया था।[1] मार्गशीर्ष में यह सूर्य के रथ में रहती है।[2]

इन्द्र की आज्ञा से उर्वशी अर्जुन की सेवा में उपस्थित हुई थी। अर्जुन द्वारा प्रेम निवेदन अस्वीकार करने पर उर्वशी ने अर्जुन को शाप देते हुए कहा था — "तुम स्त्रियों के बीच नर्तक बनकर रहोगे, नपुंसक कहलाओगे तथा तुम्हारा व्यवहार हिजड़ों के समान होगा।"[3] उर्वशी प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि में गौतमी-तट पर स्थित ऐल-तीर्थ में आती है।[4] राजा निमि के शाप से वसिष्ठ का देह मित्रावरुण के वीर्य में प्रविष्ठ हो गया। उर्वशी को देखने से मित्रावरुण का वीर्य स्खलित होने से वसिष्ठ ने दूसरा देह धारण किया।[5] उर्वशी को देखने से शारद्वान् ऋषि कामासक्त हो गये थे, जिससे उनका वीर्य स्खलित होकर मूँज पर गिर पड़ा था। उससे कृप नामक पुत्र तथा कृपी नाम की कन्या का जन्म हुआ।[6]

विभाण्डक मुनि उर्वशी को देखकर काम के वशीभूत हो गये थे और उनका वीर्य स्खलित होकर जल में गिर पड़ा था। एक मृगी द्वारा वीर्य सहित उस पानी को पीने से उसके गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ, जो महर्षि ऋष्यशृंग के नाम से विख्यात हुआ।[7] यजुर्वेद में अग्नि उत्पन्न करने में सहायक नीचे की शमी को उर्वशी के समान

---

1. वन पर्व 43/29.
2. विष्णु 2/10/13.
3. वन पर्व 46/48-50.
4. ब्रह्म 151/22.
5. विष्णु 4/5/11-12, भागवत 9/13/6.
6. श्रीमद्भागवत 9/21/35-36, हरिवंश 1/22/33-34.
7. वन पर्व 110/34-39.

सबका ध्यान आकर्षित करने वाला कहा गया है।[1] रैभ्य मुनि की तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र ने उर्वशी को प्रेषित किया था।[2] तब मुनि ने अत्यन्त क्रोधित होकर उर्वशी को कुरूप होने का शाप दिया।[3] अयोध्या के पावन-तीर्थ के जल में स्नान करके उर्वशी शाप से मुक्त हुई और परम सौन्दर्य को पुनः प्राप्त किया। यह तीर्थ उर्वशी-तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया।[4] इन्द्र ने इसे धर्मराज की तपस्या भंग करने का आदेश दिया था कि धर्मराज को अपने हास्य-भाव कटाक्ष एवं गीत नृत्यादि के द्वारा आकर्षित करो।[5]

उर्वशी को खोजते हुए पुरूरवा ने उसे हैमवती पुष्करिणी में पाँच अप्सराओं के साथ देखा। उस समय उर्वशी ने राजा से कहा -- कि वह गर्भवती है और एक-एक वर्ष पर पुत्र उत्पन्न होंगे तथा प्रतिवर्ष एक रात्रि राजा उसके साथ रह सकेंगे।[6] यजुर्वेद में उर्वशी को पर्जन्य की अप्सरा बताया गया है।[7] ऋग्वेद में वर्णित है कि उर्वशी को देखकर मित्रावरूण का वीर्य स्खलित हो गया था, जिससे अगस्त्य और वसिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति हुई।[8]

---

1. अग्निर्जनित्रमसिवृषणौ स्थऽउर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि। यजुर्वेद 5/2.
2. स्कन्द 2, अयोध्या माहा. 7/87-88.
3. स्कन्द 2, अयोध्या माहा. 7/100.
4. स्कन्द 2, अयोध्या माहा. 7/102-103.
5. स्कन्द 3/2/3/40-42.
6. हरिवंश 1/26/36-37.
7. यजुर्वेद 15/19.
8. ऋग्वेद 7/33/11-13.

घृताची

हरिवंश पुराण के अनुसार घृताची की उत्पत्ति प्रजापति के संकल्प से हुई।[1]

अग्नि प्रकट करने की इच्छा से अरणीकाष्ठ का मंथन करते हुए व्यास ने घृताची को देखा। उस मनोहर-रूपिणी अप्सरा को देखकर व्यासजी काम के वशीभूत हो गये। व्यास को काम से व्याकुल देखकर घृताची शुकी का रूप धारण कर चली गई। कामासक्त व्यास का वीर्य स्खलित होकर उस समय अरणीकाष्ठ पर गिर पड़ा और अरणी के साथ शुक्र का भी मंथन होने से उसी समय अरणी-गर्भ से शुकदेव का जन्म हुआ। पुत्रोत्पत्ति के समय व्यास ने घृताची को शुकी के रूप में देखा था। अतः बालक का नाम शुकदेव रखा।[2] घृताची ने प्रमति के द्वारा रूरू नामक पुत्र उत्पन्न किया।[3]

घृताची को देखकर काम से मोहित महर्षि भरद्वाज का वीर्य स्खलित हो गया और एक पत्ते के दोने में गिर पड़ा, जिससे वहीं एक कन्या का जन्म हुआ। भरद्वाज ने उस कन्या का नाम श्रुतावती रखा।[4] अत्रि मुनि से घृताची ने स्वस्त्यात्रेय आदि पुत्रों को उत्पन्न किया।[5] विप्रर्षि कुशाश्व का जन्म भी घृताची के गर्भ से हुआ था।[6] वसिष्ठ

---

1. हरिवंश 3/36/49-50.
2. शांति पर्व 324/1-13, देवीभागवत 1/14, नारदीय 58/18-26.
3. आदि पर्व 8/1-2, आदि पर्व 5/9-10.
4. शल्य पर्व 48/62-67. 5. कूर्म 19/19.
6. कूर्म 19/18.

द्वारा घृताची ने कुशनीति (कुशनीति) नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो इन्द्रप्रतिम नाम से विख्यात हुआ।[1] रौद्राश्व के घृताची के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न हुए — ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और वनेयु।[2] भद्राश्व के द्वारा घृताची ने भद्रा, शूद्रा, मद्रा, मलदा, बेला, खला, शालदा, गोचपला, मानरसा और रत्नकूटा नामक दस कन्याओं को जन्म दिया।[3] किन्तु ब्रह्माण्ड पुराण में इनके नाम भद्रा, शुद्रा, मद्रा, शालभा, मलदा, बला, हला, गोचपला, तामरसा और रत्नकूटा वर्णित हैं।[4]

लिंग पुराण के अनुसार इनके नाम भद्रा, मद्रा, जलदा, मंदा, नंदा, बलाबला, विप्रेन्द्रा, गोपाबला, तामरसा और वरक्रीडा हैं।[5] स्कन्द पुराण में इनके नाम भद्रा, मद्रा, नलदा, जलदा, उर्णा, पूर्णा, देवेशि, गोपुच्छला, तामरसा और रक्तकोटिका उल्लिखित हैं।[6] राजर्षि कुशनाभ के द्वारा घृताची के गर्भ से सौ कन्याओं का जन्म हुआ —

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्।
जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन।।[7]

यह द्वादशादित्य के समक्ष नृत्य करने वाली बारह श्रेष्ठ अप्सराओं में एक है।[8] सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय इसने हाव-भाव और विलासपूर्वक नृत्य किया था।[9] क्षीरसागर से लक्ष्मी देवी के

---

1. वायु 70/88.
2. भागवत 9/20/4-5.
3. वायु 70/67-70.
4. ब्रह्माण्ड 2/8/74-76.
5. लिंग 1/63/69-70.
6. स्कन्द, प्रभास 20/39-41.
7. रामायण 1/32/11.
8. कूर्म 1/42/14-16, लिंग 1/55/32-33.
9. ब्रह्म 32/99-101.

प्रकट होने पर इसने अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[1] यह आश्विन मास में सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[2] दिव्य गुण सम्पन्न दस स्वर्गीय अप्सराओं में इसकी गणना की गई है।[3] भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए विष्णुलोक में अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य और गान किया था।[4] ब्रह्म पुराण के अनुसार घृताची रूपयौवनगर्विता, सुमध्या, सुमुखी, पीनश्रोणिपयोधरा और कामशास्त्र में निपुण अप्सरा है।[5]

इन्द्र ने अप्सराओं के साथ इसे भी धर्मराज की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने का आदेश दिया था।[6] कुम्भज के शाप से घृताची अंगारकेति नामक राक्षसी हो गई थी। अगस्त्य शिष्य श्वेतमुनि के द्वारा वध करने से यह कपितीर्थ में पड़ कर अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर स्वर्ग चली गई थी।[7] शरद ऋतु में यह सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[8] अप्सराओं के साथ इसने भी अर्जुन के समक्ष इन्द्र-सभा में नृत्य किया था।[9] यह इन्द्र के आदेश से नर-नारायण ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए अप्सराओं के साथ बदरिकाश्रम गई थी।[10] इन्द्र के शिव-पूजोत्सव में इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[11] भरत की

---

1. विष्णु 1/9/100-102.
2. विष्णु 2/10/11.
3. वायु 69/49-52.
4. ब्रह्म 68/60-67.
5. ब्रह्म 178/22-24.
6. स्कन्द 3/2/3/40-66.
7. स्कन्द 3/1/39/65-68.
8. वायु 52/12-13, लिंग 1/55/56, ब्रह्माण्ड 1/23/13, मत्स्य 126/14.
9. वन पर्व 43/29.
10. देवीभागवत 4/6.
11. हरिवंश 2/69/15.

सेना के आतिथ्य-सत्कार के लिए भारद्वाज ऋषि ने इसका आवाहन किया था --

घृताचीमथ विश्वाचीं मिश्रकेशीमलम्बुषाम्।
नागदत्तां च हेमां च सोमामद्रिकृतस्थलीम्।।[1]

हिरण्यकशिपु की सेवा में अप्सराओं के साथ यह भी उपस्थित रहती थी।[2] अष्टावक्र मुनि के आतिथ्य-सत्कार के लिए इसने अप्सराओं के साथ नृत्य किया।[3] माघ मास में यह गंगा-यमुना के संगम त्रिवेणी में स्नान करने आती है।[4] यजुर्वेद में इसे यज्ञ की अप्सरा कहा गया है।[5]

तिलोत्तमा

स्कन्द पुराण के अनुसार क्षीर सागर का मंथन करने से तिलोत्तमा की उत्पत्ति हुई।[6] वायु, हरिवंश, विष्णुधर्मोत्तर और ब्रह्माण्ड पुराण में इसे कश्यप-पत्नी मुनि से उत्पन्न बताया गया है।[7] महाभारत में उल्लेख है कि यह प्राधा की कन्या है।[8] महाभारत के

---

1. रामायण 2/91/17.
2. हरिवंश 3/46/5-7.
3. अनुशासन पर्व 19/42-46.
4. नारदीय 2/63/10-11.
5. यजुर्वेद 15/18.
6. स्कन्द 4/9/6-12.
7. वायु 69/4-8, हरिवंश 3/36/46-48, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/8-11, ब्रह्माण्ड 2/7/5-8.
8. आदि पर्व 65/48-50.

अनुसार ब्रह्मा ने सुन्द और उपसुन्द को नष्ट करने के लिए विश्वकर्मा को तिलोत्तमा की रचना का आदेश दिया था। विश्वकर्मा ने तीनों लोकों के दर्शनीय पदार्थों का सारांश लेकर अंगों में करोड़ों रत्नों का समावेश करके तिलोत्तमा का निर्माण किया था। उत्तम रत्नों का तिल-तिल भर सार अंश लेकर इसके अंगों का निर्माण होने से ब्रह्माजी ने इसका नाम "तिलोत्तमा" रखा।[1]

ब्रह्मा के आदेश से वह पुष्पों को चुनते हुए सुन्द और उपसुन्द दैत्यों के समीप गई। तिलोत्तमा को देखते ही दोनों दैत्य काम-वेदना से व्यथित हो गये। सुन्द और उपसुन्द ने तिलोत्तमा के एक-एक हाथ को पकड़ लिया।[2] उन्हें प्राप्त करने के लिए वे एक-दूसरे पर गदाओं का प्रहार करते हुए मारे गये।[3] दोनों दैत्यों की मृत्यु के पश्चात ब्रह्माजी ने तिलोत्तमा की प्रशंसा करते हुए वर के द्वारा उसे प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने उसे वरदान दिया कि जहाँ तक सूर्य की गति है वहाँ तक वह इच्छानुसार विचर सकेगी तथा उसमें इतना तेज होगा कि कोई आँख भरकर उसे अच्छी तरह देख नहीं सकेगा।[4]

बलि का पुत्र साहसिक और चन्द्रमा के पास जाती हुई तिलोत्तमा एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो गये। वे दोनों गन्धमादन के एकान्त रमणीय स्थान में विहार करने लगे। वहीं अत्यन्त निकट में ही ध्यान लगाये बैठे दुर्वासा मुनि को उन दोनों ने नहीं देखा।

---

1. आदि पर्व 210/5-18, कथासरित्सागर 3/1/136, अनुशासन पर्व 141/1.
2. आदि पर्व 211/10-15, कथासरित्सागर 3/1/138-139.
3. आदि पर्व 211/20, आदि पर्व 207/20, पद्म, उत्तर 126/64-70, कथासरित्सागर 3/1/140.
4. आदि पर्व 211/22-24.

उनके उच्छृंखल अभिसार से मुनि का ध्यान भंग हो गया। उन्होंने क्रोधित होकर तिलोत्तमा को शाप देते हुए कहा कि दैत्य के प्रति उसकी आसक्ति से वह दानव-योनि में जन्म लेगी। तिलोत्तमा के अनुनय-विनय करने पर दुर्वासा ने बताया कि वह बाणासुर की पुत्री उषा के रूप में जन्म लेकर अनिरूद्ध का आलिंगनप्राप्त करके शुद्ध होगी। इस प्रकार तिलोत्तमा बाणासुर की पुत्री उषा हुई और अनिरूद्ध की पत्नी बनी।[1]

भगवान् वामन के समक्ष अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया था।[2] विष्णु-लोक में भगवान् पुरूषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया।[3] अष्टावक्र की स्तुति कर इसने भी पुरूषोत्तम को पति रूप में प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया था और उनके कुरूपता पर हँसने से चोरों के हाथ में पड़ने का शाप भी इन्हें मिला था।[4] माघ मास में यह सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[5] द्वादशादित्य के पास नृत्य करने वाली बारह श्रेष्ठ अप्सराओं में यह भी एक है।[6] स्कन्द पुराण में उल्लिखित है कि सभी देवों से तिल-तिल रूप लेकर तिलोत्तमा का निर्माण किया गया था। उसके आश्चर्यमय रूप को देखकर ब्रह्माजी भी क्षुब्ध हो गये थे। भगवान् महादेव भी प्रदक्षिणा करती हुई तिलोत्तमा के रूप को चारों ओर से देखने के लिए चतुर्मुख हो गये थे।[7] उस समय क्रोधितपार्वती के द्वारा तिलोत्तमा

---

1. ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्म, अध्याय 23.
2. हरिवंश 3/70/16-20. 3. ब्रह्म 68/60-67.
4. ब्रह्म 212/70-85, विष्णु 5/38/29-84.
5. विष्णु 2/10/16-17. 6. कूर्म 42/14-16.
7. स्कन्द नागर 153/3-14, अनुशासन पर्व 141/2-4, कथा-सरित्सागर 3/1/137.

को विरूप होने का शाप देने से वह तत्काल भग्ननासिका, शीर्षकेशा, वृहद्दंता, चिपिटाक्षी और महोदरा हो गयी थी।[1] पार्वती द्वारा उत्पादित रूप-तीर्थ में स्नान करके उसने पुनः पूर्वरूप को प्राप्त किया था।[2] वायु पुराण में तिलोत्तमा को अप्सराओं के चौदह गणों में परम सुन्दरी कहा गया है।[3] शम्बरासुर के वध होने पर हर्षित होकर इसने अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[4] इन्द्र ने अप्सराओं के साथ इसे भी धर्मराज के तप में विघ्न डालने का आदेश दिया था।[5] इन्द्र की आज्ञा से अप्सराओं के साथ यह भी नर-नारायण ऋषि की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के लिए बदरिकाश्रम गई थी।[6]

महाभारत और पद्म पुराण के अनुसार इसकी रचना स्वयं ब्रह्माजी ने किया था।[7] सात श्रेष्ठ अप्सराओं में इसकी गणना की गई है। सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय इसने भी नृत्य किया था।[8] इन्द्र सभा में नारद ने अप्सराओं के साथ इसको भी दुर्वासा मुनि को क्षुब्ध करने की चुनौती दी थी।[9] यह शिशिर ऋतु में सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[10]

---

1. स्कन्द, नागर 153/29-31.
2. स्कन्द, नागर 153/37-41.
3. वायु 69/59.
4. हरिवंश 2/107/29-30.
5. स्कन्द 3/2/3/40-66.
6. देवीभागवत 4/6.
7. अनुशासन पर्व 141/1, पद्म 5/126/50-53.
8. ब्रह्म 32/99-101.
9. मार्कण्डेय 1/29-40.
10. वायु 52/22, लिंग 1/55/64, ब्रह्माण्ड 1/23/22, मत्स्य 126/23.

प्रम्लोचा

हरिवंश पुराण के अनुसार प्रम्लोचा प्रजापति के संकल्प से उत्पन्न हुई।[1] किन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित है कि इसकी उत्पत्ति कश्यप-पत्नी प्राधा के गर्भ से हुई है।[2]

कण्डु ऋषि के भय से उद्विग्न इन्द्र ने प्रम्लोचा को मुनि के तप में विघ्न डालने का आदेश दिया। वह मुनि के आश्रम के निकट जाकर मधुर गीत गाने लगी। जिसे सुनकर मुनि के तप में विघ्न उत्पन्न हो गया। प्रम्लोचा को देखकर कामबाण से पीड़ित होकर मुनि ने प्रम्लोचा का हाथ पकड़कर अपने आश्रम में प्रवेश किया और 900 से अधिक वर्षों तक प्रसन्नता पूर्वक विहार किया। तत्पश्चात् मुनि ने अपने आपको धिक्कारते हुए क्रोधपूर्वक उसे चले जाने के लिए फटकारा। भय से काँपती हुई उसके शरीर से पसीना निकलने लगा। ऋषि द्वारा उसके शरीर में किया गया गर्भाधान पसीना बनकर बाहर निकल गया, जिसे वह तरूपल्लवों में पोंछती हुई स्वर्ग चली गई। वृक्षों ने उसे ग्रहण कर लिया, वायु ने उसे एकत्रित कर गर्भ का रूप दिया और चन्द्रमा ने अपनी किरणों द्वारा उसे पुष्ट किया। उसी गर्भ से मारिषा नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रचेताओं की पत्नी और दक्ष की माता कहलायी।[3] अग्नि और भागवत पुराण में भी मारिषा को प्रम्लोचा और वृक्षों की पुत्री, प्रचेताओं की पत्नी और दक्ष की जननी वर्णित किया गया है।[4]

---

1. हरिवंश 3/36/49-50. 2. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/23-25.
3. ब्रह्म 178/15-105, विष्णु 1/15.
4. अग्नि 1/18/26-27, भागवत 6/4/16-17.

ब्रह्म पुराण में प्रम्लोचा के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसके लिए वरारोहा रूपयौवनगर्विता, सुमध्या, चारूजंघा, पीनश्रोणि, पयोधरा, सर्वलक्षणसम्पन्ना और शुभ विशेषणा का प्रयोग किया गया है।[1] इन्द्र ने अप्सराओं के साथ इसे भी धर्मराज के तप में विघ्न उपस्थित करने का आदेश दिया था किन्तु यह धर्मराज से भयभीत हो गयी थी।[2] वायु पुराण के अनुसार यह दिव्य गुणसम्पन्न दस श्रेष्ठ स्वर्गीय अप्सराओं में एक है।[3] इसने विष्णु-लोक में भगवान् पुरूषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[4] हिरण्यकशिपु की सभा में भी यह अप्सराओं के साथ नृत्य व गान हेतु उपस्थित रहती थी।[5] वर्षा ऋतु में यह सूर्य के रथ में निवास करती है।[6] यह सूर्य के रथ में नृत्य-गान करने वाली बारह श्रेष्ठ अप्सराओं में एक है।[7] विष्णु और भागवत पुराण के अनुसार यह श्रावण मास में सूर्य के रथ में रहती है।[8]

---

1. ब्रह्म 178/15-18.
2. स्कन्द 3/2/3/40-66.
3. वायु 69/49-52, ब्रह्माण्ड 2/7/14-15, हरिवंश 3/36/49-50.
4. ब्रह्म 68/60-67.
5. हरिवंश 3/46/5-7, मत्स्य 161/74.
6. वायु 52/11, लिंग 1/55/54, ब्रह्माण्ड 1/23/10, मत्स्य 126/11.
7. कूर्म 1/42/14-17, लिंग 1/55/31-33.
8. विष्णु 2/10/9, श्रीमद्भागवत 12/11/37.

पुञ्जिकस्थला

हरिवंश पुराण के अनुसार पुंजिकस्थला प्रजापति ब्रह्मा के संकल्प से उत्पन्न हुई।[1] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में इसे दस दिव्य गुणसम्पन्न स्वर्गीय अप्सराओं के रूप में वर्णित किया गया है।[2] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसे मुनि की पुत्री कहा गया है। रामायण में इसे वरुण-कन्या कहा गया है।[4]

पुंजिकस्थला शापवश कपि-योनि में वानरराज कुंजर की पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुई और उसका नाम अंजना पड़ा। वह वानरराज केसरी की पत्नी हुई।

अप्सराऽप्सरसां श्रेष्ठा विख्याता पुंजिकस्थला।
अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः।।
विख्याता त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिम भुवि।
अभिशापादभूद् तात कपित्वे कामरूपिणी।।
दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः।

वह मानवी-स्त्री का शरीर धारण कर पर्वत-शिखर पर विचर रही थी। वहाँ वायु देवता ने अंजना को देखकर कामासक्त हो उसे अपने हृदय से लगा लिया। उस समय अंजना घबरा गई थी। तब वायुदेव ने उसे कहा कि मानसिक संकल्प द्वारा समागम करने से उसे बल-बुद्धि-पराक्रम से सम्पन्न पुत्र प्राप्त होगा। तत्पश्चात् उसने हनुमान्

---

1. हरिवंश 3/36/49-50.
2. वायु 69/49-50, ब्रह्माण्ड 2/7/14-15.
3. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/8-11.
4. वा.रा. 6/60/11.

को जन्म दिया।[1] अंजना का शिर वानरी का था। ऋषि अगस्त्य ने इसकी सेवा से प्रसन्न होकर इसे पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया था।[2]

स्कन्द पुराण में वर्णित है कि पुत्र प्राप्ति के लिए इसने तपस्या आरम्भ की थी। मतंग मुनि की आज्ञा से इसने आकाशगंगा तीर्थ पर वायुदेव के लिए संयमपूर्वक व्रत का पालन करती हुई तपस्या की। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर वायु देवता प्रकट हुए और स्वयं उसके गर्भ में पुत्र के रूप में प्रकट होने का वरदान दिया।[3]

वायु देवता ने अंजना को बताया कि गौतमी-तट में स्नान कर दान करने पर उसका शाप से उद्धार हो जायेगा। तदनन्तर अद्रिका के पुत्र अद्रि नामक पिशाच ने गौतमी के तट में लाकर उन्हें स्नान कराया, जिससे वह शापमुक्त होकर स्वर्ग चली गई और वह स्थान अंजन-तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया।[4]

पुंजिकस्थला का बलात्कार करने के कारण रावण को ब्रह्माजी ने शाप दिया कि वह यदि किसी अन्य नारी के साथ बलपूर्वक समागम करेगा तो उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः।।[5]

ब्रह्मर्षि पार के द्वारा इसने कलावती नामक कन्या को जन्म दिया, जो स्वरोचिष की पत्नी हुई। इसने अप्सराओं के साथ

---

1. वा.रा. 4/66/8-20.
2. ब्रह्म 84/1-8.
3. स्कन्द 2, वेंकटाचल अध्याय 35.
4. ब्रह्म 84/14-18.
5. वा.रा. 6/13/14.

भगवान् वामन के समीप नृत्य किया।[1] पुंजिकस्थला ने भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए अप्सराओं के साथ नृत्य-गान किया था।[2] यह वैसाख मास में सूर्य के रथ में निवास करती है।[3] यह सूर्य के रथ में नृत्य-गान करने वाली द्वादश श्रेष्ठ अप्सराओं में एक है।[4] हिरण्यकशिपु की सेवा में यह अप्सराओं के साथ उपस्थित रहती थी।[5] पुंजिकस्थला वसन्त ऋतु में सौर गण के साथ सूर्य-रथ में रहती है।[6] यजुर्वेद के अनुसार यह सूर्य की परिचारिका है।[7]

पूर्वचित्ति

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में पूर्वचित्ति को कश्यप-पत्नी प्राधा की कन्या कहा गया है।[8]

ब्रह्माजी ने पूर्वचित्ति को तपस्यारत राजा आग्नीध्र के पास भेजा था। इसकी मनोहर गीत-ध्वनि सुनकर राजा की तपस्या भंग हो गई। तत्पश्चात् वह आग्नीध्र के साथ कई हजार वर्षों तक

---

1. सं. मार्कण्डेय पुराण पृष्ठ 165.
2. ब्रह्म 68/60-67.
3. विष्णु 2/10/5-6.
4. कूर्म 1/42/14-17, लिंग 1/55/32-33.
5. हरिवंश 3/46/5-7, मत्स्य 161/74.
6. वायु 52/4, लिंग 1/55/47, ब्रह्माण्ड 1/23/4, मत्स्य 126/3.
7. यजुर्वेद 15/15.
8. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/23-25.

विहार करती रही और नौ पुत्रों को उत्पन्न किया। उन पुत्रों के नाम हैं — नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत्त, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल।[1] इन्द्र-सभा में अप्सराओं के साथ इसने अर्जुन के समक्ष नृत्य किया था।[2] यह हेमन्त ऋतु में सूर्य के रथ में रहती है।[3] विष्णु पुराण के अनुसार यह पौष मास में सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[4] शंबरासुर का वध होने पर हर्ष में भरकर इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[5] इन्द्र ने इसे भी धर्मराज की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने का आदेश दिया था।[6]

ब्रह्मपुराण के अनुसार पूर्वचित्ति रूप-यौवनगर्विता, सुन्दर कटि, सुन्दर मुख, स्थूल और उन्नत स्तन वाली, कामशास्त्र में कुशल अप्सरा है।[7] यह सूर्य के रथ में नृत्य-गान करने वाली श्रेष्ठ द्वादश अप्सराओं में एक है।[8] यजुर्वेद के अनुसार यह पर्जन्य की अप्सरा है।[9]

मिश्रकेशी

नाट्यशास्त्र के अनुसार मिश्रकेशी प्रजापति के द्वारा मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुई।[10] वायु, हरिवंश, ब्रह्माण्ड और विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार मिश्रकेशी कश्यप-पत्नी मुनि की

---

1. भागवत 5/2/1-20.
2. वन 43/29.
3. ब्रह्माण्ड 1/23/18, लिंग 1/55/60, मत्स्य 126/19.
4. विष्णु 2/10/14-15.
5. हरिवंश 2/107/29-30.
6. स्कन्द 3/2/3/40-66.
7. ब्रह्म 178/22-24.
8. कूर्म 1/42/14-17, लिंग 1/55/32-33.
9. यजुर्वेद 15/19.
10. नाट्यशास्त्र 1/45-50.

पुत्री है।[1] लेकिन महाभारत में इसे प्राधा से उत्पन्न बताया गया है।[2]

भगवान् वामन के समीप अप्सराओं के साथ यह भी नृत्य करने लगी थी।[3] विष्णु-लोक में इसने भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए नृत्य और गान किया।[4] इन्द्र-सभा में नारद ने अप्सराओं के साथ इसे भी दुर्वासा मुनि को क्षुब्ध करने कहा था।[5] कुबेर सभा में अष्टावक्र के आतिथ्य-सत्कार के लिए अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया।[6] भरत के आतिथ्य करने के लिए भारद्वाज मुनि ने अप्सराओं के साथ इसका भी आवाहन किया था।[7] भरद्वाज मुनि की आज्ञा से इसने भी अप्सराओं के साथ भरत के समीप नृत्य किया।

अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ वामना।
उपानृत्यन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनाद्।।[8]

हल्लीसक नृत्य में इसने भी अप्सराओं के साथ गान और अभिनय किया था।[9] इन्द्र-सभा में अर्जुन के समक्ष इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[10] ब्रह्म पुराण में मिश्रकेशी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह रूपयौवनगर्विता, सुमध्यमा, सुमुखी,

---

1. वायु 69/4/8, हरिवंश 3/36/46-48, ब्रह्माण्ड 2/7/5-8, विष्णुधर्मोत्तर 1/128/8-11.
2. आदि पर्व 65/48-50.
3. हरिवंश 3/70/16-20.
4. ब्रह्म 68/60-67.
5. मार्कण्डेय 1/35-40.
6. अनुशासन पर्व 19/42-46.
7. रामायण 2/91/17.
8. रामायण 2/91/47.
9. हरिवंश 2/89/70-71.
10. वन पर्व 43/29.

पीनोन्नतपयोधरा और कामशास्त्र में निपुण अप्सरा है।[1] इन्द्र-सभा की श्रेष्ठ अप्सराओं में यह भी एक है।[2] मत्स्य पुराण के अनुसार मिश्रकेशी हिरण्यकशिपु की सेवा में अप्सराओं के साथ उपस्थित रहती थी।[3] भागवत पुराण में उल्लिखित है कि मिश्रकेशी के गर्भ से सत्वक ने वृक आदि कई पुत्रों को उत्पन्न किया।[4]

मेनका

स्कन्द पुराण में वर्णित है कि क्षीर सागर का मंथन करने से मेनका की उत्पत्ति हुई।[5] किन्तु हरिवंश पुराण के अनुसार प्रजापति के संकल्प से इसकी उत्पत्ति हुई।[6] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसे प्रधा की पुत्री कहा गया है। किन्तु वायु पुराण में इसे मेन की कन्या बताया गया है।[7]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भारी तपस्या में लगे हुए विश्वामित्र मेनका को पुष्कर में स्नान करते देखकर काम के अधीन हो गये और उसे अपने आश्रम में निवास करने कहा। उसके साथ महर्षि विश्वामित्र ने दस वर्ष सुख से व्यतीत किये।

---

1. ब्रह्म 178/22/24.
2. मार्कण्डेय 1/33.
3. मत्स्य 161/75.
4. भागवत 9/24/43.
5. स्कन्द 4/9/6-12.
6. हरिवंश 3/36/49-50, आदि पर्व 74/69.
7. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/23-25, वायु 69/52.

तस्यां वसन्त्यां वर्षाणि पञ्च पञ्च च राघव।।
विश्वामित्राश्रमे सौम्ये सुखेन व्यतिचक्रमुः।

तत्पश्चात् विश्वामित्र लज्जित होकर शोक में डूब गये। उस समय मेनका भय से काँपने लगी। तब विश्वामित्र ने उसे विदा कर दिया।[1] विश्वामित्र ने मेनका के गर्भ से एक कन्या को उत्पन्न किया। इस कन्या का नाम शकुन्तला प्रसिद्ध हुआ।[2] मेनका छः श्रेष्ठ अप्सराओं में सर्वश्रेष्ठ है।[3]

यम की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के कारण यमराज ने मेनका को नदी होने का शाप दिया। गौतमी में मिलने से वह शापमुक्त हुई।[4] विश्वावसु से गर्भ धारण कर इसने एक पुत्री को जन्म दिया। उसका नाम "प्रमद्वरा" पड़ा।[5]

देवराज इन्द्र की आज्ञा से मेनका विविध आभूषणों से अलंकृत होकर नन्दनवन में तपस्यारत् विष्णु शर्मा को आकर्षित करने लगी थी किन्तु योगसिद्ध प्राप्त विष्णु शर्मा का तपोभंग करने में वह असमर्थ रही।[6] इसने राजा वध्यश्व के संयोग से जुड़वाँ संतान को जन्म दिया - एक राजर्षि दिवोदास थे और दूसरी यशस्विनी अहल्या थी।[7] स्कन्द पुराण के अनुसार व्याध के बाण से घायल एक मृगी गंगा के जल में गिर गयी और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। गंगा-जल के प्रभाव से वह मृगी स्वर्गलोक चली गई और मेनका नामक

---

1. वा.रा. 1/63/1-13, ब्रह्म 147/5-7.
2. आदि पर्व 74/69-70, भागवत 9/20/13.
3. आदि पर्व 74/68.
4. ब्रह्म 86/23-40.
5. आदि पर्व 8/6-13, देवीभागवत 2/8.
6. पद्म, भूमिखंड 6
7. वायु 99/200-201.

अप्सरा कहलायी। यह अप्सरा चैत्र शुक्ल तृतीया को रविवार और भरणी नक्षत्र का योग होने पर विश्वामित्र-कुण्ड-तीर्थ में सदा स्नान करती है।[1] विश्वामित्र को देखकर मेनका काम के वशीभूत हो गई। मेनका का प्रणय निवेदन अस्वीकार करने पर उसने विश्वामित्र को वृद्धावस्था से जर्जर शरीर, सफेद बाल और झुर्रियों से युक्त शरीर होने का शाप दिया था। तदनन्तर विश्वामित्र ने भी मेनका को जरावस्था से जर्जर शरीर वाली होने का शाप दिया। उस समय मेनका विश्वामित्र-कुण्ड में स्नानकर रूपवती युवती हो गई।[2] इन्द्र ने मेनका को दूत बनाकर कामकन्या अश्रुबिन्दुमती के पास भेजा था।[3] ज्येष्ठ मास में यह सूर्य के रथ में निवास करती है।[4] सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय अप्सराओं के साथ इसने भी हावभाव एवं विलास-पूर्वक नृत्य किया था।[5] यह ऊर्णायु गन्धर्व के साथ रमण करती है।[6] द्वादशादित्य के समक्ष नृत्य करने वाली द्वादश श्रेष्ठ अप्सराओं में यह एक है।[7] यह दिव्यगुण सम्पन्न दस स्वर्गीय अप्सराओं में एक है।[8] भगवान् वामन के समीप अप्सराओं के साथ इसने नृत्य किया था।[9]

यह अप्सराओं के साथ नृत्य एवं गान हेतु हिरण्यकशिपु की सेवा में उपस्थित रहती थी।[10] इन्द्र-सभा में नारद ने अप्सराओं

---

1. स्कन्द, नागर 42/1-17.
2. स्कन्द, नागर 44/14-21.
3. पद्म 2/81/2-5.
4. विष्णु 2/10/7.
5. ब्रह्म 32/100-101.
6. महाभारत 5/117/14-16.
7. कूर्म 42/14-16.
8. वायु 69/49-52.
9. हरिवंश 3/70/16-20.
10. हरिवंश 3/46/5-7, मत्स्य 161/75.

के साथ इसे भी दुर्वासा को क्षुब्ध करने के लिए कहा था।[1] ग्रीष्मकाल में यह सूर्य के रथ में रहती है।[2] इन्द्र-सभा में अर्जुन के समक्ष इसने भी नृत्य किया था।[3] इसे वायु की अप्सरा कहा गया है।[4]

रंभा

इसकी उत्पत्ति क्षीरसागर से समुद्र-मंथन से हुई है।[5] वायु और हरिवंश पुराण के अनुसार यह कश्यप-पत्नी मुनि की सन्तान है।[6] महाभारत में इसे प्राधा से उत्पन्न कहा गया है।[7]

इन्द्र द्वारा प्रेषित रंभा को तपस्या में विघ्न डालने पर विश्वामित्र ने दस हजार वर्षों तक पाषाण होने का शाप दे दिया।

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम्।
दशवर्ष सहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे।।
तस्य शापेन महता रम्भा शैली तदाभवत्।[8]

स्कन्द पुराण के अनुसार विश्वामित्र ने रम्भा को सौ अयुत वर्ष तक पत्थर होने का शाप दिया था। विश्वामित्र मुनि के आश्रम में

---

1. मार्कण्डेय 1/38/40.
2. वायु 52/7, लिंग 1/55/50, ब्रह्माण्ड 1/23/6, मत्स्य 126/7.
3. वन 43/29.
4. यजुर्वेद 15/16.
5. स्कन्द, काशी 9/6-12.
6. वायु 69/4-8, हरिवंश 3/36/46-48.
7. आदि 65/48-50.
8. वा.रा. 1/64/1-15, अनुशासन पर्व 3/11.

पड़ी इसी पत्थर से श्वेत मुनि ने अंगारकेति नामक राक्षसी को मारा था, जिससे वह शिला कपितीर्थ में गिरने से यह शापमुक्त होकर दिव्य लोक चली गई।[1] महर्षि देवल ने नलकूबर से रमण करती हुई रम्भाको मनुष्य-योनि में जाने का शाप दिया। मृत्यु-लोक में रम्भा ने राजा सुचन्द्र की कन्या के रूप में जन्म लिया और राजा जनमेजय की महारानी हुई। जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र का स्पर्श प्राप्त कर यह शापमुक्त हो देह त्याग कर स्वर्ग चली गई।[2] यह फाल्गुन मास में सूर्य के रथ में रहती है।[3] इसके साथ तुम्बुरु गन्धर्व रमण करता है।[4] मृत्यु की कन्या सुनीथा को रम्भा ने मोहिनी विद्या प्रदान किया था और गान्धर्व विवाह से सुनीथा को राजा अंग को प्रदान किया था।[5] एक दिन तुम्बुरू रम्भा में आसक्त होकर कुबेर की सेवा में नहीं पहुँचा, जिससे कुबेर ने तुम्बुरू को राक्षस होने का शाप दे दिया था।

अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसं तनुम।
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि।।
अनुपस्थीयमानो मां स क्रुद्धो व्याजहार ह।
इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह।।[6]

नलकूबर के पास जाती हुई रम्भा के साथ रावण ने बलात्कार किया था, जिससे नलकूबर ने रावण को शाप दिया था कि उसने पुनः यदि किसी युवती के साथ बलात्कार किया तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे।

---

1. स्कन्द 3/1/39/49-62.
2. ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्ण 14.
3. विष्णु 2/10/18.
4. महाभारत 5/117/16.
5. पद्म, भूमिखंड 33
6. रामायण 3/4/16-18.

यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम्।।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा।।[1]

द्वादशादित्य के समक्ष नृत्य करने वाली द्वादश अप्सराओं में यह भी एक है।[2] भगवान् वामन के समीप अप्सराओं के साथ यह भी नृत्य करने लगी थी।[3] विष्णुलोक में रम्भा ने भी अप्सराओं के साथ भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए नृत्य किया।[4] इसने अप्सराओं के साथ अष्टावक्र मुनि की स्तुति करके पुरुषोत्तम को पति रूप में प्राप्त करने का वर प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनकी कुरूपता की हँसी करने से चोरों के हाथ में पड़ने का शाप भी पाया।[5] इन्द्र ने रम्भा को जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा के रूप में परिणत करके यज्ञ में मारे गये अश्व में आविष्ट होकर उसके साथ रमण किया था।[6] सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[7] इसकी गणना इन्द्रलोक की श्रेष्ठ अप्सराओं में की जाती है।[8] हिरण्यकशिपु की सेवा में यह अप्सराओं के साथ उपस्थित रहती थी।[9] इन्द्र-सभा में अष्टावक्र मुनि के आतिथ्य-सत्कार के लिए अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया।[10] सूर्य के रथ में यह शिशिर ऋतु में

---

1. वा.रा. 7/26/55-56, वनपर्व 280/59-60.
2. कूर्म 42/14-16.
3. हरिवंश 3/70/16-20.
4. ब्रह्म 68/60-67.
5. ब्रह्म 212/72-84, अग्नि 1/15/7-8.
6. हरिवंश 3/5/25-30.
7. ब्रह्म 32/99-101.
8. मार्कण्डेय 1/33.
9. हरिवंश 3/46/5-7, मत्स्य 161/75.
10. अनुशासन पर्व 19/42-46.

तिलोत्तमा के साथ रहती है।[1] इन्द्र-सभा में अप्सराओं के साथ इसने भी अर्जुन के समक्ष नृत्य किया।[2] नर-नारायण की तपस्या को भंग करने के लिए यह अप्सराओं के साथ गई थी।[3] शम्बरासुर के वध होने पर इसने भी हर्षित होकर अप्सराओं के साथ नृत्य किया।[4] अभिनय के अर्थतत्त्व का ज्ञान रखने के कारण यह अभिनय कला के लिए विख्यात थी। श्रीकृष्ण के हल्लीसक नृत्य में इसने सर्वप्रथम नृत्य आरम्भ किया था।[5] रम्भा ने कामासक्त वृत्रासुर को सुरापान कराया था।[6] लक्ष्मी-स्वयंवर नाटक में इसने भी नृत्य किया था।[7]

जाबालि मुनि की तपस्या को भंग करके रम्भा ने उनसे रमण किया और एक कन्या को जन्म दिया। उस कन्या का नाम "फलवती" प्रसिद्ध हुआ।[8] अनंगवती वेश्या शिवरात्रि व्रत तथा केदारेश्वर महादेव के प्रभाव से रम्भा नामक अप्सरा के रूप में स्वर्गलोक को प्राप्त किया।[9] रम्भा को नृत्य करते देखकर उपबर्हण का वीर्य स्खलित हो गया था, जिससे ब्रह्माजी ने उसे शूद्र-योनि शाप दिया था।[10]

---

1. वायु 52/22, लिंग 1/55/64, ब्रह्माण्ड 1/23/22, मत्स्य 126/23.
2. वनपर्व 43/29.
3. देवीभागवत 4/6.
4. हरिवंश 2/107/29-30.
5. हरिवंश 2/89/69.
6. पद्म 2/25/16-17.
7. पद्म 1/12/70-71.
8. स्कन्द, नागर 144/21-27, स्कन्द, नागर 143/9-51.
9. स्कन्द, प्रभास 26.
10. ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म 13.

विश्वाची

हरिवंश पुराण के अनुसार विश्वाची प्रजापति के संकल्प से उत्पन्न हुई थी।[1] सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया था। इसकी गणना सात श्रेष्ठ अप्सराओं में की गई है।[2] भारद्वाज मुनि ने भरत को आतिथ्य-सत्कार के लिए, अप्सराओं के साथ इसका भी आवाहन किया था।[3] शरद ऋतु में यह सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[4] ब्रह्म पुराण में यह रूपयौवनगर्विता, सुमध्यमा, सुमुखी, पीनोन्नतपयोधरा और कामनिपुणा अप्सरा वर्णित है।[5] कार्तिक मास में यह सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[6] इन्द्र ने इसे अप्सराओं के साथ धर्मारण्य में तपस्यारत धर्मराज को तप विघ्न करने का आदेश देते हुए कहा था कि अपने हास्य, कटाक्ष एवं गीत नृत्यादि के द्वारा धर्म को आकर्षित करो।[7] यह सूर्य के रथ में नृत्य-गान करने वाली द्वादश श्रेष्ठ अप्सराओं में एक है।[8] हिरण्यकशिपु-सभा में यह अप्सराओं के साथ उपस्थित रहती थी।[9] विष्णु-लोक में इसने भगवान् पुरुषोत्तम के समक्ष नृत्य किया था।[10] यजुर्वेद के अनुसार यह यज्ञ की अप्सरा है।[11]

---

1. हरिवंश 3/36/49-50.
2. ब्रह्म 32/99-101.
3. रामायण 2/91/17.
4. वायु 52/13, लिंग 1/55/56, ब्रह्माण्ड 1/23/13, मत्स्य 126/14.
5. ब्रह्म 178/22-24.
6. विष्णु 2/10/12.
7. स्कन्द 3/2/3/42-66.
8. लिंग 1/55/31-33, कूर्म 1/42/14-17.
9. हरिवंश 3/46/60-67, मत्स्य 161/74.
10. ब्रह्म 68/60-67.
11. यजुर्वेद 15/18.

सहजन्या

हरिवंश पुराण के अनुसार सहजन्या प्रजापति के संकल्प से उत्पन्न हुई है।[1] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में इसे दस दिव्यगुणयुक्त स्वर्गीय अप्सराओं में एक कहा गया है।[2] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसे प्राधा की पुत्री कहा गया है।[3]

इसने विष्णु-लोक में भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिए गान और नृत्य किया था।[4] सूर्य के तेज को संक्षिप्त करते समय इसने भी हाव-भाव तथा विलासपूर्वक नृत्य किया था।[5] ग्रीष्म ऋतु में यह सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[6] इन्द्र-भवन में आयोजित शिव-पूजोत्सव में इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[7] इन्द्र-सभा में इसने अप्सराओं के साथ अर्जुन के समक्ष नृत्य किया था।[8] आषाढ़ में यह सूर्य के रथ में निवास करती है।[9] ब्रह्म पुराण में इसे रूपयौवनगर्विता, सुमध्यमा, सुमुखी, पीनोन्नतपयोधरा और कामचुशला कहा गया है।[10] सूर्य के रथ में नृत्य-गान करने वाली बारह श्रेष्ठ अप्सराओं में इसकी भी गणना की गई है।[11] यजुर्वेद में इसे वायु की अप्सरा बताया गया है।[12] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि सहस्रों अप्सराओं के साथ सहजन्या हिरण्यकशिपु की सेवा में उपस्थित रहती थी।[13]

---

1. हरिवंश 3/36/49-50.
2. वायु 69/49-50, ब्रह्माण्ड 2/7/14-15.
3. विष्णुधर्मोत्तर 1/128/23-25.
4. ब्रह्म 68/60-67.
5. ब्रह्म 32/99-101.
6. वायु 52/7, लिंग 1/55/50, ब्रह्माण्ड 1/23/6, मत्स्य 126/7.
7. हरिवंश 2/69/15.
8. वनपर्व 43/29.
9. विष्णु 2/10/8.
10. ब्रह्म 178/22-24.
11. कूर्म 1/42/14-17, लिंग 1/55/31-33.
12. यजुर्वेद 15/16.
13. मत्स्य 161/74.

अद्रिका

इस अप्सरा ने यमुना में संध्यावन्दन करते हुए एक ब्राह्मण के पैर को पकड़ लिया था। ब्राह्मण ने इसे मछली हो जाने का शाप दिया। शाप से यह मछली-रूप में परिणत होकर यमुना के जल में रहने लगी। यमुना के जल में इसने राजा उपरिचर के वीर्य को ग्रहण किया और गर्भवती हो गई। धीवर द्वारा इस मछली के पेट को चीरने से एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। यह बालक राजा मत्स्यराज और कन्या काली एवं मत्स्योदरी नाम से विख्यात हुई। इसी मत्स्योदरी ने ऋषि पाराशर के द्वारा व्यासजी को उत्पन्न किया और बाद में सत्यवती कहलायी। बच्चों को जन्म देकर यह शापमुक्त हो गई और स्वर्ग चली गई।[1] इसने भगवान वामन के समीप अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[2]

ब्रह्म पुराण में उल्लिखित है कि यह अंजन पर्वत में रहने वाली एक शाप-भ्रष्ट अप्सरा थी और केसरी नामक वानर की पत्नी थी। इसका मुख मार्जारी का था। अंजन पर्वत में पधारे अगस्त्य ऋषि की इसने यथोचित पूजा की। इसकी सेवा से प्रसन्न होकर ऋषि ने इसे पुत्र प्राप्त करने का वरदान दिया। तत्पश्चात् पर्वत के शिखर पर हास्य और नृत्य कर रही अद्रिका को देखकर निर्ऋति देवता काम के वशीभूत हो गया। और पर्वत के शिखर पर इसके साथ विहार किया। तदनन्तर अद्रिका के गर्भ से अद्रि नामक पिशाच का जन्म हुआ। वायु और निर्ऋति देवता ने उसे इन्द्र-शाप से उद्धार के लिए गौतमी में स्नान कर दान देने का सुझाव दिया। अंजना-पुत्र हनुमान् इसे गौतमी के तट पर ले गये और स्नान कराया जिससे शापमुक्त होकर वह स्वर्गलोक

---

1. देवीभागवत 2/1. 2. हरिवंश 3/70/16-20.

चली गई।[1]

हरिवंश पुराण के अनुसार -- अग्निष्वात्त पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा राजा वसु के द्वारा इसके गर्भ से मछली की संतान बनकर कन्या रूप में उत्पन्न हुई और दाशेयी तथा सत्यवती कहलायी।[2] वायुपुराण के अनुसार यह दक्ष कन्या मुनि से उत्पन्न 34 अप्सराओं में एक है।[3] ब्रह्माण्ड पुराण में भी इसे कश्यप-पत्नी मुनि से उत्पन्न कहा गया है।[4]

अनुम्लोचा

हरिवंश पुराण के अनुसार अनुम्लोचा प्रजापति ब्रह्मा के संकल्प से उत्पन्न दस श्रेष्ठ अप्सराओं में एक है।[5] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में दस दिव्य स्वर्गीय अप्सराओं के साथ इसकी गणना की गई है।[6]

यजुर्वेद में अनुम्लोचा को सूर्य की अप्सरा वर्णित किया गया है।[7] विष्णु और भागवत पुराण के अनुसार यह भाद्रपद मास में सूर्य के रथ में नृत्य करती है।[8] इन्द्र ने अप्सराओं के साथ इसे भी

---

1. ब्रह्म 84/1-18.
2. हरिवंश 1/18/44-45.
3. वायु 69/4-8.
4. ब्रह्माण्ड 2/7/5-8.
5. हरिवंश 3/36/49-50.
6. वायु 69/49-50, ब्रह्माण्ड 2/7/14-15.
7. यजुर्वेद 15/17.
8. विष्णु 2/10/10, भागवत 12/11/38.

तपस्यारत धर्मराज को, अपने गीतनृत्यादि से, तपोभंग करने का आदेश दिया था।[1] यह सौर गण की द्वादश अप्सराओं में एक है।[2] वर्षा ऋतु में सूर्य-रथ की सात सौर गण में यह भी एक है।[3]

अतिगम्भीरा

यह इन्द्र-सभा की एक अप्सरा है। इसे अपने रूप पर बड़ा गर्व था। इन्द्र ने इसे और गम्भीरा नामक अप्सरा को गंगा के तट पर तपस्यारत विश्वामित्र का तपोभंग करने का आदेश दिया। दोनों अप्सराएँ तपोरत मुनि को नृत्य, गीत और हाव-भाव दिखाने लगीं। उन्हें देखकर विश्वामित्र ने दोनों को द्रव-रूप होने का शाप दिया। गंगा में मिलकर वे शापमुक्त हो गईं।[4]

कांचनमालिनी

पद्म पुराण में इस अप्सरा का वर्णन करते हुए उल्लिखित है कि पूर्वकाल में माघ में प्रयाग-स्नान के पश्चात् इसके वस्त्र का एक बूँद जल शिर में पड़ने से एक राक्षस को अद्भुत शान्ति प्राप्त हुई थी। तदनन्तर उस राक्षस ने आकाश में जाती हुई कांचनमालिनी को देखा।[5]

---

1. स्कन्द 3/2/3/40-66.
2. कूर्म 1/42/14-17, लिंग 1/55/31-33.
3. लिंग 1/55/54, ब्रह्माण्ड 1/23/10.
4. ब्रह्म 147/11-20.
5. पद्म, उत्तर 127/58-62.

इसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए पद्म पुराण में लिखा है कि यह तेजस्विनी, सुवर्ण आभायुक्त, सुश्रोणी, दीर्घलोचना, चन्द्राननना, सुकेशी, पीनोन्नतपयोधरा, कमलपत्राक्षि, मनोहर और अतीव रूप सम्पन्न अप्सरा है।[1]

कांचनमालिनी ने उस राक्षस को बताया कि वेणी के जल के प्रभाव से पाप नष्ट हो जाने से क्रूरता नष्ट हो जाने के कारण ही उसे शांति प्राप्त हुई है। अपने पूर्व जन्म में वह कलिंग राज्य में रूप-लावण्य सम्पन्न मदगर्विता वेश्या थी। उस जन्म में इसने यथेच्छा भोग किया था। उस नगर के सभी जन उसके यौवन से मोहित थे। अपने रूप-सौन्दर्य के कारण वहाँ यह रत्नाभूषण, धन, वस्त्रादि से सम्पन्न थी।[2] धर्मज्ञों से माघ-स्नान का प्रभाव सुनकर वेणी में स्नान करके मुक्त होकर कांचनमालिनी ने इस शरीर को प्राप्त किया। उस राक्षस के निवेदन पर इसने उपदेश देते हुए कहा कि "प्राणि-हिंसा को त्यागकर सज्जनों की सेवा करते हुए सत्य वचन के साथ धर्म का आचरण करना चाहिए। भगवान हरि का कीर्तन करते हुए योग निष्ठ होकर वैराग्य भाव में मन लगाकर क्षणभंगुर जगत् से आसक्ति रहित रहो।" इसका उपदेश सुनकर वह राक्षस शरीर से मुक्त हो गया।[3]

---

1. पद्म, उत्तर 127/63-64.
2. पद्म, उत्तर 127/71-76.
3. पद्म 127/157-167.

क्रतुस्थली

वायु पुराण में क्रतुस्थली अप्सरा का वर्णन किया गया है। यह पाँच अंगों से स्थूल अप्सरा है।[1] यक्षराज रजतनाभ ने इस अप्सरा को प्राप्त करने के लिए वसुरूचि नामक गन्धर्व के रूप को ग्रहण किया और इस अप्सरा के पास गया। उसे वसुरूचि समझकर क्रतुस्थली ने यक्षराज के साथ सद्भाव का व्यवहार किया। अप्सरा के समक्ष ही यक्ष ने क्रतुस्थली से समागम किया। जिससे नाभि नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ।[2] यक्ष के द्वारा उसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न होने के कारण अप्सराओं ने क्रतुस्थली को "यक्षों की माता" कहा।[3]

क्रतुस्थली की दो कन्याएँ थीं -- पुण्यजनी और देवजनी। जो क्रमशः मणिभद्र और मणिवर की पत्नी हुई।[4] वसंत ऋतु में यह सूर्य के रथ में नृत्य-गान करती है।[5] यजुर्वेद में इसे सूर्य की परिचारिका कहा गया है।[6]

गम्भीरा

ब्रह्म पुराण में गम्भीरा नामक अप्सरा का वर्णन है। यह इन्द्रसभा की एक अप्सरा है। इसे अपने रूप पर बड़ा गर्व था। इन्द्र ने

---

1. वायु 69/136.
2. वायु 69/138-142.
3. वायु 69/149-150.
4. वायु 69/152-153, मत्स्य 126/4.
5. वायु 52/4.
6. यजुर्वेद 15/15.

इसे और अतिगम्भीरा नामक अप्सरा को गंगा के तट पर तपस्यारत विश्वामित्र मुनि को तपोभंग करने का आदेश दिया। इन्द्र की आज्ञा के अनुसार दोनों अप्सराएँ तपोरत मुनि के समक्ष नृत्य और गान करने लगीं। तब विश्वामित्र मुनि क्रोध से व्याकुल होकर दोनों अप्सराओं को द्रव-रूप होने का शाप दिया था। तत्पश्चात् द्रव-रूप में बहते हुए वे गंगा में मिल गईं और शापमुक्त होकर स्वर्ग चली गईं।[1]

चित्रलेखा

चित्रलेखा के अंश से बलि के मंत्री कुम्भाण्ड की पुत्री रामा उत्पन्न हुई थी, जिसके कारण उसे "चित्रलेखा" भी कहा जाता था। यह अप्सरा सर्वज्ञ है, उसे समस्त त्रिलोकी की घटनाएँ ज्ञात रहती है। चित्रलेखा बाणासुर की पुत्री उषा की सखी थी। उषा ने इससे अपने भावी पति को अपने महल में लाने के लिए निवेदन किया था।[2] तत्पश्चात् चित्रलेखा ने चित्रपट में श्रेष्ठ देवताओं, दानवों, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस का चित्र बनाकर उषा को अपने पति को पहचानने के लिए दिया। तदनन्तर चित्रलेखा उषा की दूती बनकर अनिरुद्ध को लाने के लिए अन्तर्धान हो गयी तथा एक ही क्षण में द्वारिकापुरी पहुँच गयी। नारद मुनि से तामसी विद्या ग्रहण करके इसने प्रद्युम्न के महल में प्रवेश किया। उसने तामसी विद्या द्वारा सबको आच्छादित कर अनिरुद्ध को अपहरण करके उषा के महल में ले गई।[3]

---

1. ब्रह्म 147/11-20. 2. हरिवंश 2/118/47-50.
3. हरिवंश 2/118/60-97, कथासरित्सागर 6/5/18-28, शिव पुराण, रूद्र संहिता, युद्ध अध्याय 51-53, विष्णु 5/32/10-30, विष्णु 5/33/1-7, ब्रह्म अध्याय 105-106, सं.पद्म, उत्तर खण्ड, पृष्ठ 872-874.

गंगा नदी के तट पर शिव-पार्वती के साथ अप्सराएँ और गन्धर्व क्रीड़ा विहार कर रहे थे। सब अप्सराएँ भगवान् शिव की पूजा करने लगीं। उस समय चित्रलेखा देवी पार्वती का रूप धारण करके महादेव को रिझाने लगी। यह दृश्य देखकर पार्वती जोर-जोर से हँसने लगी और अन्य अप्सराएँ भी चित्रलेखा की ओर देखकर हँसने लगी थीं।[1]

यह दुर्वासा मुनि की शिष्या तथा सिद्धिदायिनी है।[2] इन्द्र-सभा में इसने अर्जुन के समक्ष अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[3] हरिवंश पुराण में चित्रलेखा के लिए मनोज्ञा, शुचिस्मिता, मनोरमा, मनस्विनी, शुभलोचना, यशस्विनी, वराप्सरा आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है।[4] भगवान् वामन के समीप अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया था।[5]

पञ्चचूड़ा

यह ब्रह्म लोक की एक अप्सरा है। महाभारत में इसके सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए इसे चारुसर्वांगी, चारुहासिनी और अनिंद्य सुन्दरी अप्सरा कहा गया है। देवर्षि नारद से ब्रह्म लोक में इसकी भेंट हुई। नारद ने इससे स्त्रियों के स्वभाव के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। तदनन्तर पंचचूड़ा ने नारद मुनि से स्त्रियों के स्वाभाविक-दोषों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया।[6]

---

1. हरिवंश 2/117/1-7.
2. ब्रह्मवैवर्त, कृष्ण जन्म 114.
3. वन पर्व 43/29.
4. हरिवंश 2/118-119.
5. हरिवंश 3/70/16-20.
6. अनुशासन पर्व 38/1-10.

ऋथिनी

ब्रह्म पुराण में उल्लिखित है कि हिमालय में घूमते हुए ऋथिनी ने एक ब्राह्मण को देखा। उसे देखकर वह काम-वशीभूत होकर प्रणय के लिए निवेदन करने लगी।[1] ब्राह्मण द्वारा उसका प्रेम निवेदन अस्वीकार कर चले जाने पर वह अत्यन्त व्याकुल हो गई। वहाँ उसे ब्राह्मण को प्राप्त करने के लिए शोकग्रस्त देखकर कलि नामक गन्धर्व ने ऋथिनी से समागम का विचार किया। गन्धर्व कलि को उसने पूर्व में फटकार दिया था, इसलिए वह ब्राह्मण का रूप धारण करके ऋथिनी के पास गया और उसके साथ प्रेमपूर्वक रमण किया।[2] गन्धर्व-राज कलि के द्वारा ऋथिनी के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। उस बालक का नाम स्वरोचिष पड़ा।[3] इन्द्र-सभा में अर्जुन के समक्ष इसने भी अप्सराओं के साथ नृत्य किया था।[4]

वपु

यह इन्द्र-सभा की एक श्रेष्ठ अप्सरा है। नारद ने अप्सराओं को दुर्वासा मुनि को क्षुब्ध करने का आदेश दिया था। उस समय वपु नामक अप्सरा हिमालय में तपस्यारत दुर्वासा मुनि के आश्रम के पास गई।[5]

आश्रम से एक कोस की दूरी पर वह मधुर स्वर में गीत गाने लगी। उसके संगीत की मधुर ध्वनि सुनकर मुनि इसके निकट गये

---

1. मार्कण्डेय 58/35-36.
2. मार्कण्डेय 59/15-22.
3. मार्कण्डेय 60/1-7.
4. वन पर्व 43/29.
5. मार्कण्डेय 1/29-44.

और क्रोध में भरकर वपु अप्सरा को पक्षी-कुल में जन्म लेने का शाप दिया। मुनि ने उसे बताया कि सोलह वर्षों तक वह पक्षी-रूप में रहेगी और अन्त में शस्त्र द्वारा वध होने से शापमुक्त होगी।[1]

शाप के कारण उसने कन्धर नामक पक्षी की कन्या के रूप में पक्षी-योनि में जन्म लिया और "तार्क्षी" कहलायी। द्रोण के साथ उसका विवाह हुआ। गर्भवती तार्क्षी कौरव-पाण्डव के युद्ध क्षेत्र - कुरुक्षेत्र में गई और अर्जुन के बाण से उसकी मृत्यु हो गई, जिससे शापमुक्त होकर वह स्वर्ग चली गई।[2]

वर्द्धिनी

यह इन्द्र-सभा की एक अप्सरा है। इन्द्र ने अप्सराओं को आदेश दिया कि वे धर्मारण्य में तपस्यारत धर्मराज को अपने गीत नृत्यादि से आकर्षित कर उनका तप विघ्न करें। यह सुनकर अप्सरायें विचार करने लगीं और भय से शंकित हो गयीं। तब वर्द्धिनी नामक अप्सरा धर्मराज को आकर्षित करने के लिए विविध वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर वीणा बजाते हुए मधुर गीत गाने लगी।[3] उसकी गीत-ध्वनि सुनकर धर्मराज उसके पास गये और परिचय पूछने लगे। तब वर्द्धिनी अप्सरा ने धर्मराज को बताया कि इन्द्र ने आपसे भयभीत होकर तप विघ्न करने की इच्छा से उसे प्रेषित किया है। तत्पश्चात् धर्म ने उस

---

1. मार्कण्डेय 1/46-53.
2. मार्कण्डेय 2/31-60.
3. स्कन्द 3/2/3/40-77.

स्थान को वर्द्धिनी-तीर्थ होने का वर दिया। तदनन्तर इन्द्र के पास जाकर इसने इन्द्र को बताया कि धर्मराज से उन्हें नहीं डरना चाहिए। इन्द्र ने उसे सुखपूर्वक निवास के लिए कहकर सम्पत्ति आदि प्रदान किया।[1]

वर्चा

यह अप्सरा देवताओं के नन्दनवन में निवास करती है। सौरमेयी, सामेयी, बुदबुदा और लता -- ये चारों अप्सराएँ इसकी सखी थीं। ये सभी अप्सराएँ कामगमा थीं। एक तपस्वी ब्राह्मण की तपस्या में विघ्न डालने से उस ब्राह्मण ने क्रोधित होकर पाँचों अप्सराओं को सौ वर्षों तक ग्राह होने का शाप दिया था। अर्जुन ने इन्हें शाप से मुक्त किया था।[2]

सुरभिदत्ता

यह इन्द्र-सभा की एक अप्सरा है। स्वर्ग के महोत्सव में इसे अनुपस्थित देखकर इन्द्र ने योगबल से देखा कि वह नन्दनवन में एक विद्याधर युवक से क्रीड़ा कर रही है। तत्पश्चात् इन्द्र ने इसे पापिनी और अपराधी समझकर मनुष्य-योनि प्राप्त करने का शाप दिया। इन्द्र ने कहा कि अयोनिजा कन्या को प्राप्त करने के पश्चात् वह शापमुक्त हो

---

1. स्कन्द 3/2/4/14-26.
2. स्कन्द, माहेश्वर, कौमारिका 1.

स्वर्ग में आयेगी। इस शाप से वह पृथ्वी पर आ गई। इन्द्र के शाप से सुरभिदत्ता ने स्वर्ग से पतित होकर राजा कलिंगदत्त की पत्नी तारादत्ता के गर्भ में प्रवेश किया।[1]

सुश्यामा

ब्रह्म पुराण में सुश्यामा नामक अप्सरा का उल्लेख किया गया है। यह एक गन्धर्वराज की पुत्री थी। राजा ऋतुध्वज के संयोग से इसने एक कन्या को उत्पन्न किया। उस कन्या को एक गुफा में छोड़कर जाते समय इस अप्सरा ने उसे कहा कि जो इस गुफा में प्रवेश करेगा वही उसका पति होगा। वह कन्या "वृद्धा" नाम से प्रसिद्ध हुई और गौतम नामक ब्राह्मण को पतिरूप में वरण कर अपनी तपस्या से गंगा को प्रसन्न कर सुन्दर रूप प्राप्त किया।[2]

--::--::--
--::--

---

1. कथासरित्सागर 6/3/59-73.
2. ब्रह्म 107/23-55.

--:: अध्याय 4 ::--

राजनैतिक संगठन तथा प्रशासन

(अ) राजा

(1) राजा की उत्पत्ति.

(2) राजा के गुण-दोष.

(3) राजा के कर्तव्य.

(आ) मंत्रिमण्डल का गठन

(1) मंत्री के गुण.

(2) मंत्रिमण्डल का आकार.

(3) गुप्त मंत्रणा.

(इ) न्याय और दण्डनीति.

(1) दण्ड की उत्पत्ति.

(2) शासक के रूप में दण्ड का महत्व.

(3) दण्ड के भेद.

(4) न्याय व्यवस्था.

(ई) दुर्ग व्यवस्था

(1) दुर्ग का निर्माण.

(2) दुर्ग में विविध कक्ष.

(3) दुर्ग के भेद.

(उ) गुप्तचर, दूत, द्वारपाल, पुरोहित आदि की नियुक्ति.

--::--::--
--::--

राजनैतिक संगठन तथा प्रशासन

राजनीति में राजा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। वह राजनैतिक संगठन का केन्द्र बिन्दु होता है। वह राज्य के सप्ताङ्गों का मूल है। राज्य में प्रजाओं की रक्षा के लिए और दुष्टों को दण्ड देने के लिए एक श्रेष्ठ राजा का होना नितान्त आवश्यक होता है। वेद, ब्राह्मण, धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत, कथासरित्सागर, शुक्रनीति एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि में राजा के कर्तव्याकर्तव्य का वर्णन किया गया है।

रामायण में वर्णित है कि राजा के बिना राज्य में किसी मनुष्य की सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रह सकती। जैसे मत्स्य एक-दूसरे को खा जाते हैं, उसी प्रकार अराजक देश के लोग सदा एक-दूसरे को लूटते रहते हैं। राजा राज्य में सत्य और धर्म का प्रवर्त्तक होता है। राजा ही सत्य, धर्म, कुलवानों का कुल, माता-पिता तथा मनुष्यों का हितकर्त्ता होता है --

राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्।।[1]

राजा से रहित देश में पुत्र पिता के और स्त्री पति के वश में नहीं रहती। राजा से विहीन देश में अपना धन सुरक्षित नहीं रहता और पत्नी भी अपनी नहीं रह पाती। राजा रहित देश में

---

1. वा.रा. 2/67/31-34.

महान् भय बना रहता है।[1] राजा अपने उच्च चरित्र द्वारा यम, कुबेर, इन्द्र और वरूण से भी बढ़ जाता है।[2] राजा धर्म की दृष्टि से सम्पूर्ण प्राणियों का पिता होता है।[3]

राजा की उत्पत्ति :—

मत्स्य पुराण में राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वर्णित है कि ब्रह्मा ने समस्त प्राणियों की रक्षा के लिए दण्ड का प्रयोग करने हेतु देवताओं के अंशों को लेकर राजा की सृष्टि की —

दण्ड प्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा।
देवभागानुपादाय सर्वभुता दिगुप्तये।।[4]

भागवत पुराण में भी कहा है कि राजा के शरीर में विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, वरूण आदि देवताओं के अंश होते हैं।[5] राजा को इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरूण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वी के तेजोव्रत का आचरण करना चाहिए। जिस प्रकार यमराज समय पर सबको दण्ड देता है उसी प्रकार राजा को प्रजा के साथ समान व्यवहार करना चाहिए। उसे चन्द्रमा के समान प्रजा को प्रसन्न रखना चाहिए। राजा को पापियों तथा दुष्टों के प्रति सदैव तेजस्वी होना चाहिए। उसे समस्त प्रजा का पालन करना चाहिए।[6]

- -

1. वा.रा. 2/67/10-11.
2. वा.रा. 2/67/35.
3. वा.रा. 7/93/15.
4. मत्स्य 226/1.
5. भागवत 4/14/26-27.
6. मत्स्य 226/4-9.

मनु के अनुसार परमात्मा ने संसार की रक्षा के लिए राजा की सृष्टि की है, क्योंकि राजा से हीन राष्ट्र में सर्वत्र अराजकता का साम्राज्य हो जाता है। परमात्मा ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और कुबेर इन अष्ट देवों के सार तत्त्व से राजा की सृष्टि की है। देवों के अंश से उत्पन्न राजा तेजस्वी होता है। राजा मनुष्य के रूप में एक महान् देवता होता है। राजा शक्ति से अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, यमराज, वरूण, कुबेर और इन्द्र है। राजा को देशकाल, दण्ड-शक्ति और विद्या का विचार करके अपराधियों पर दण्ड का प्रयोग करना चाहिए। वह धर्म का रक्षक तथा दण्ड रूप राष्ट्र का नेता होता है।[1]

पदम पुराण के अनुसार ब्रह्माजी ने लोकपालों के अंश से राजा का प्रादुर्भाव किया। इन्द्र के अंश से राजा समस्त प्राणियों पर शासन करता है। वरूण के अंश से सबका पोषण करता है। कुबेर के अंश से वह याचकों को धन देता है और यमराज के अंश से राजा प्रजा को दण्ड देता है।[2]

महाभारत, अग्निपुराण तथा मनुस्मृति में उल्लिखित है कि प्रजा का रंजन करने के कारण नृप को राजा कहा जाता है —

"राजा स्याज्जन रंजनाद्।"[3]

महाभारत में वर्णित है कि पुण्य का क्षय होने पर मनुष्य स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आता है और दण्ड विशारद राजा के रूप में जन्म लेता है।[4]

---

1. मनुस्मृति 7/3-17.
2. सं.पदम,सृष्टि पृष्ठ 117.
3. शांति पर्व 59/125, अग्नि 220/24, मनुस्मृति 7/19, भागवत 4/22/55-56.
4. शांति पर्व 59/133.

श्रेष्ठ राजा के गुण :—

अग्नि पुराण के अनुसार एक श्रेष्ठ राजा में कुलीनता, सत्त्व, युवावस्था, शील, दाक्षिण्य, शीघ्रकारिता, अविसंवादिता, सत्य, वृद्ध सेवा, कृतज्ञता, दैव-सम्पन्नता, बुद्धि, अक्षुद्र परिवारता, शक्य-सामन्तता, दृढ़भक्ति, दीर्घदर्शिता, उत्साह, शुद्धचित्तता, स्थूललक्षता, विनीतता और धार्मिकता के गुण होने चाहिए।[1]

मनु ने श्रेष्ठ राजा के गुणों का वर्णन किया है कि राजा पवित्र, सत्यवादी, शास्त्रों के अनुसार कार्य करने वाला, बुद्धिमान, दण्ड का उचित प्रयोग करने वाला, शत्रुओं को कठोर दण्ड देने वाला, मित्रों से सरल व्यवहार करने वाला, दयावान्, वर्णाश्रम धर्म का रक्षक, विद्वानों और वेदज्ञों की सेवा करने वाला, वृद्धों का आदर करने वाला, विनीत, वेदत्रयी, दण्डनीति, तर्कशास्त्र, आत्मविद्या, व्यापार और वाणिज्य आदि का ज्ञाता, संयमी, कामक्रोधादि से उत्पन्न दोषों से रहित, निर्लोभी, मद्यपान, जुआ, स्त्रीप्रसंग, आखेट तथा कटुवचन और अर्थदोषों से रहित हो।[2]

राजा में आर्यत्व, शूरवीरता, दयालुता, दानशीलता तथा सुखदुःखादि के प्रति उदासीन आदि गुण होने चाहिए।[3]

मात्स्यशास्त्र में श्रेष्ठ राजा के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि राजा को शीलवान, बुद्धिमान, सत्यवादी, संयमी,

---

1. अग्नि 239/2-5.
2. मनुस्मृति 7/31-51.
3. मनुस्मृति 7/211.

चतुर, वाक्पटु, चिन्तनशील, उदात्त, विचारक, पवित्र, दीर्घदर्शी, शक्तिसम्पन्न, कृतज्ञ, शिष्ट, वाक्पटु, लोकपालक, चतुर, जागरूक, वृद्धसेवी, अर्थशास्त्री, नीतिकुशल, चेष्टा तथा भाव को पहचानने वाला, शूर वीर, क्षमावान्, शास्त्रज्ञ, कला को प्रोत्साहित करने वाला, नीति-शास्त्र दक्ष, राजनीति का अनुरागी, शत्रुओं की कमजोरी को समझने वाला, और दुर्व्यसनरहित होना चाहिए।[1]

आचार्य कौटिल्य ने राजा के गुणों का वर्णन किया है कि राजा उच्च कुल में उत्पन्न, दैव-सम्पन्न, बुद्धिमान्, सत्त्वसम्पन्न, वृद्धदर्शी, धर्मात्मा, सत्यभाषी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, स्थूललक्ष, उत्साही, निरालस्य, शक्य-सामन्त, दृढ़बुद्धि और विनयशील हो। इसके अतिरिक्त राजा को वाग्मी, प्रगल्भ, स्मृतिवान्, मतिमान्, बलवान्, वितरण में निपुण, गुप्तचरों पर दृष्टि रखने वाला, सेना नियुक्ति में देश-काल और पुरुषार्थ के अनुसार कार्यदक्ष, उचित कार्य करने में समर्थ, कामक्रोधादि से रहित, प्रियभाषी, हँसमुख और वृद्धों के उपदेश के अनुसार चलने वाला होना चाहिए।[2]

हरिवंश पुराण में श्रेष्ठ राजा के गुणों को वर्णित करते हुए लिखा है कि वह वेदशास्त्र का विद्वान, धनवान, दाता, सुन्दर, ब्राह्मणभक्त, नीतिज्ञ, दीनों पर अनुग्रह करने वाला, यशस्वी, पराक्रमी, धर्मात्मा, भावों का ज्ञाता, प्रजापालन में तत्पर, क्षत्रिय धर्मपरायण तथा जितेन्द्रिय हो।[3]

एक उत्तम राजा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का ज्ञाता, बुद्धिमान्, राजनीति के छः गुणों का आश्रय लेने वाला, दुर्व्यसन रहित,

---

1. नाट्यशास्त्र 34/84-88. 2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 6.
3. हरिवंश 2/32/36-38.

गुणों में तत्पर रहने वाला, विद्यावान्, धर्मशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, युद्ध-नीति का ज्ञाता तथा दुर्लभ लाभ का अनुसरण करने वाला हो।[1]

भागवत पुराण के अनुसार राजा को विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणों से सम्पन्न होना चाहिए।[2] राजा को अग्नि के समान तेजस्वी, इन्द्र के समान अजेय, पृथ्वी के समान क्षमाशील, समुद्र के समान गम्भीर, पर्वत के सदृश धैर्यवान्, यमराज के समान दुष्टों को दमन करने वाला, हिमालय के समान संग्रहशील, कुबेर की भाँति कोश को बढ़ाने वाला, वरुण जैसे धन को छिपाने वाला, वायु के समान पराक्रमी, सौन्दर्य में कामदेव के सदृश, उत्साह में सिंह के समान, वात्सल्य में मनु की तरह और आधिपत्य में ब्रह्मा के समान होना चाहिए।[3]

उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न राजा प्रजा का पालन करते हुए राज्य की शत्रुओं से रक्षा करता है और गुप्तचरों के द्वारा अहर्निश राज्य के कार्यों का निरीक्षण करते रहता है। ऐसा राजा चिरकाल तक पृथ्वी का उपभोग करता है।

राजा के दोष :—

वाल्मीकि रामायण में राजा के चौदह दोषों का उल्लेख किया गया है। नास्तिकता, असत्यभाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, सत्संग न करना, आलस्य, नेत्र आदि पंच इन्द्रियों के वशीभूत होना, राजकार्यों में अकेले ही विचार करना, मूर्खों से

---

1. हरिवंश 2/53/2-3. 2. भागवत 9/4/2.
3. भागवत 4/22/57-61.

सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्यों को शीघ्र प्रारम्भ न करना, गुप्त मंत्रणा को प्रकट करना, मांगलिक आदि कार्यों का अनुष्ठान न करना तथा सब शत्रुओं पर एक ही साथ चढ़ाई कर देना — ये राजा के चौदह दोष हैं —

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पंचवृत्तिताम्।।
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणाम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम्।।
मंगलाद्यप्रयोगं च प्रत्युथानं च सर्वतः।
कच्चित् त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश।।[1]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार जो राजा भोगों में आसक्त होकर स्वेच्छाचारी और लोभी हो जाता है, ठीक समय पर अपने कार्यों का सम्पादन नहीं करता, राज्य की देखभाल के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति नहीं करता, प्रजाजनों से नहीं मिलता, अपने राज्य की रक्षा नहीं करता, गुप्तचर, कोष, नीति, जिसके अधीन नहीं है, ऐसा विषय-लोलुप चपल पुरुष राजा नहीं रह सकता है।[2]

जो कठोर बर्ताव करता है, सेवकों को कम वेतन देता है, प्रमाद और गर्व में पड़ा रहता है, स्वभाव से शठ होता है, अत्यन्त अभिमानी, अपनाने के अयोग्य, दूसरे की बातों पर ध्यान नहीं देता, अपने आप को महान् मानने वाला और क्रोधी होता है, अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता और भय के अवसरों पर भयभीत नहीं होता, वह

---

1. वा.रा. 2/100/65-67. 2. वा.रा. 3/33/3-9.

शीघ्र ही राज्य से भ्रष्ट होकर उपेक्षणीय हो जाता है।[1] जो राजा दूसरों का आदर नहीं करता, विषयासक्त होता है, देश-काल विभाग के तत्त्व को नहीं जानता, गुण-दोष के निश्चय में अपनी बुद्धि नहीं लगाता, उसका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है --

परामन्ता विषयेषु सङ्गवान् न देशकाल प्रविभागतत्त्ववित्।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोष निश्चये विपन्न राज्यो न चिराद् विपत्स्यते।।[2]

भागवत पुराण में उल्लिखित है कि जो राजा हिंसा-परायण, दुःशील और अजितेन्द्रिय होता है, उसे राजा मानकर सेवा करने वाली प्रजा दरिद्र होकर दुःख भोगती रहती है और उसके समक्ष संकट आते रहते हैं।[3] वाल्मीकि रामायण में कथित है कि राजा द्वारा प्रजा का विधिवत् पालन नहीं होता, तो प्रजा को विपत्ति का सामना करना पड़ता है। राजा के दुराचारी होने से प्रजा की अकाल मृत्यु होती है।[4]

मत्स्य पुराण के अनुसार राजा को उग्रकर्मों से सदैव बचना चाहिए। उसे पापाचरण वाले कर्मों का परित्याग कर देना चाहिए।[5] आचार्य कौटिल्य ने उल्लिखित किया है कि राजा को अपने कर्तव्य के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए क्योंकि कार्य में संलग्न और जागरूक राजा ही उत्थान करता है, प्रमादी नहीं।[6]

अतः राजा को उपरोक्त वर्णित दोषों से बचकर राज्य पर शासन करना चाहिए।

---

1. वा.रा. 3/33/15-17.
2. वा.रा. 3/33/23.
3. भागवत 10/89/24.
4. वा.रा. 7/73/16.
5. मत्स्य 215/82.
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.

राजा का कर्तव्य :—

वेद, ब्राह्मण, धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत आदि में राजा के कर्तव्याकर्तव्य का वर्णन किया गया है। गरुड पुराण में उल्लिखित है कि राजा को सदैव सत्य व धर्म-परायण होकर प्रजा का पालन करना चाहिए। जो नरेश प्रजा का पुत्र के समान पालन करता है वह चिरकाल तक राज्य का उपभोग करता है। जिस राजा के मंत्री, पुरोहित, भृत्य तथा इन्द्रियाँ सजग नहीं होतीं, उसका राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। परन्तु जिसने पुत्रों, भृत्यों और बन्धुओं को अनुरक्त कर लिया है, वह सारी पृथ्वी पर शासन करता है। राजा को क्रोध से बचना चाहिए क्योंकि बिना कारण क्रोध करने वाले राजा को प्रजाजन विषधर सर्प की तरह त्याग देते हैं। जो नृप उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम — ये छः गुणों से युक्त होता है, उससे देवगण भी सशंकित रहते हैं —

उद्योगः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्ति पराक्रमः।
षड्विधो यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शंकते।।[1]

मत्स्य पुराण में लिखा है कि राजा प्रजा का पालन करे और संग्राम से कभी विचलित न हो। युद्ध से विमुख न होना, प्रजाओं का परिपालन और सज्जनों की शुश्रूषा -- ये तीन गुण राजाओं के लिए परम कल्याणकारी हैं। राजा कछुए की तरह अपने अंगों को छिपाये रखे और अपने छिद्र की रक्षा करे। वह दूसरों को अपना विश्वस्त बनाये। वह अर्थ के चिन्तन में बगुले की तरह, सिंह की तरह पराक्रम वाला, भेड़िये की भाँति

---

1. गरुड 111/1-32.

शत्रुओं पर प्रहार करने वाला, खरगोश के सदृश छिपने वाला, शूकर के समान दृढ़ प्रहार करने वाला, मोर की तरह विचित्र आकारयुक्त, कुत्ते के समान अनन्यभक्त, कोकिल की भाँति मधुभाषी, कौएँ के समान सशंकित रहने वाला होना चाहिए। वह गुप्त स्थान पर निवास करे। परीक्षा किये बिना भोजन, शय्या, वस्त्र, पुष्प, अलंकार आदि को न ग्रहण करे।[1]

राजा को शत्रुनाशक, प्रजापालक तथा अपराधियों को दण्ड देने वाला होना चाहिए। उसे धर्म पर आरूढ़ प्रजा का पालन संकल्पपूर्वक करना चाहिए।[2] महाभारत में वर्णित है कि राजा को आधी रात और दोपहर के समय स्वयं चलकर प्रजा की अवस्था का निरीक्षण करना चाहिए।[3]

मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है कि राजा का प्रथम कर्तव्य धर्म के अनुसार प्रजा का रंजन करना है। राजा को व्यसनों का त्याग करके शत्रुओं से अपनी रक्षा करनी चाहिए। राजा की मंत्रणा गुप्त रहनी चाहिए। यदि मंत्रणा बाहर निकल गयी तो राजा का क्षय हो जाता है। राजा को दूतों एवं गुप्तचरों के द्वारा अमात्यों के दोषों का पता लगाते रहना चाहिए। राजा को सर्वप्रथम काम, क्रोध, लोभ, मद आदि पर विजय प्राप्त करना चाहिए।[4]

राजा को काक, कोकिल, भ्रमर, मृग, व्याल, मयूर, हँस, कुक्कुट और लोह से शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। राजा को कौआ के

---

1. मत्स्य 215/60-72, अग्नि 225/27-31.
2. अग्नि 218/2-3.
3. आश्रमवासिक पर्व 5/34.
4. मार्कण्डेय 24/5-14.

समान आलस्यहीन और सावधान, कोयल की तरह संचयशील, मृग के समान चौकन्ना, सर्प के समान अल्प बल से शत्रु को नष्ट करने वाला, मयूर के सदृश सम्पत्ति बढ़ाने वाला, हंस की भाँति गुणग्राही, मुर्गे के समान समय में कार्य सम्पन्न करने और उठने वाला, लोहे के समान कठिन और अनेक कार्य का सम्पादक, उलूक के सदृश आडम्बरहीन होकर शत्रु को नष्ट करने वाला, पिपीलिका के समान संचयी, अग्नि के समान फैलने वाला और चन्द्रसूर्य के सदृश पृथ्वी को देखने वाला होना चाहिए।[1]

राजा प्रजा का चित्त प्रसन्न करे, पदम की तरह सबका चित्त हरण करे, नीतिपूर्वक अर्थसंग्रह करे। प्रजाओं के प्रति समान आचरण करे, दान से सबको प्रसन्न करे, करादि का संग्रह करे, सबके प्रति समदर्शी हो, प्रजा को सुखी रखे और आसक्ति से रहित हो। जिस राज्य में राजा प्रजा के साथ धर्म के अनुसार शासन करता है, वह राजा इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है। प्रजा को स्वस्वधर्म में प्रवृत्त करना राजा का ही कार्य है।[2]

कौटिल्य के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को स्वधर्म से विचलित न होने दे। जिस राजा की प्रजा अपने धर्म पर स्थिर रहती है, उसका राज्य दीर्घकाल तक स्थायी रहता है। कठोर दण्ड से प्रजा उद्विग्न हो जाती है। मृदु दण्ड वाला राजा प्रजा के द्वारा सताया जाता है। किन्तु जो राजा यथोचित दण्ड देता है वह प्रजा द्वारा सम्मानित होता है। अतः प्रजा के अपराध का विचार करके उसे उचित दण्ड देने वाला राजा पृथ्वी का चिरकाल तक उपभोग करता है। विपा

---

1. मार्कण्डेय 24/18-20.

2. मार्कण्डेय 24/21-32.

से विनीत राजा ही प्रजा को विनयशील बनाकर समस्त प्राणियों की भलाई करते हुए पृथ्वी पर राज्य करता है।[1]

वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि जो राजा दूर-दूर के कार्यों की देखभाल के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करता है, राज्य के कार्यों पर सावधानीपूर्वक ध्यान रखता है, इन्द्रियों को वश में रखता है तथा स्वभाव से धर्मपरायण है, वह चिरकाल तक राज्य करता है।[2] जो राजा धर्म के अनुसार दण्ड धारण करके प्रजा का पालन करता है, वह मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक का अधिकारी होता है --

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्यकृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान्।।[3]

जिस राजा में नीति, विनय, सत्य, पराक्रम आदि समस्त राजोचित गुण हो, वही देश-काल के तत्त्व को जानने वाला होता है।[4] जो राजा सुशिक्षित होता है और नीति का अनुसरण करता है वह शत्रुओं को वश में करते हुए दीर्घकाल तक राज्य का शासन करता है।[5] नरेश को प्रजा की रक्षा के लिए क्रूरतापूर्ण, पातकयुक्त या सदोष कर्म करने से भी दोष नहीं लगता। क्योंकि प्रजापालन उसका सनातन धर्म होता है।[6]

राजा दशरथ ने राम को राजनीति का उपदेश देते हुए कहा था कि काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले दुर्व्यसनों का त्याग कर दो, परोक्ष रूप से गुप्तचरों द्वारा यथार्थ का पता लगाकर तथा प्रत्यक्ष

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.
2. वा.रा. 3/10-20.
3. वा.रा. 2/100/76.
4. वा.रा. 4/18/8.
5. वा.रा. 6/35/7.
6. वा.रा. 1/25/18-19.

रूप से जनता के मुख से सुनकर न्याय में तत्पर रहो। मंत्री, सेनापति आदि अधिकारियों तथा प्रजा को प्रसन्न रखो। जो राजा उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करके मंत्री, सेनापति, प्रजा आदि राज्य की प्रकृति को अपने प्रति अनुरक्त रखते हुए प्रजा का पालन करता है, उसके मित्र आनन्दित होते हैं। तुम अपने चित्त को वश में करके उत्तम आचरण का पालन करते रहो।[1]

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि राजा को शिकार, मद्यपान तथा द्यूतक्रीड़ा का परित्याग कर देना चाहिए। राजा के लिए व्यर्थ घूमना तथा दिन में शयन करना वर्जित है। उसे कटुवचन बोलने और कठोर दण्ड देने से भी बचना चाहिए। राजा को परोक्ष रूप से किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[2]

उसे काम, क्रोध, मद, मान, लोभ तथा हर्ष का प्रयत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए। इन पर विजय प्राप्त करके राजा को अनुचरों, पुरवासियों और देशवासियों को अपने वश में करना चाहिए। तदनन्तर शत्रुओं को परास्त करते हुए प्रजा का पालन करना चाहिए।[3]

राजा को अधिक कोमल और अधिक कठोर भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि अधिक कठोर शासक से लोग उद्विग्न हो जाते हैं। राजा को समय पर मृदु तथा समय पर कठोर होकर लोक पर विजय प्राप्त करना चाहिए। उन्हें अपने अनुचरों के साथ परिहास नहीं करना चाहिए।[4]

---

1. वा. रा. 2/3/43-46.
2. मत्स्य 220/8-10.
3. मत्स्य 220/14-16.
4. मत्स्य 220/22-24.

आचार्य कौटिल्य के अनुसार शास्त्र के विरुद्ध आचरण करने वाला तथा इन्द्रियों को वश में न रखने वाला राजा शीघ्र ही राज्य से च्युत होकर नष्ट हो जाता है। इतिहास और पुराण साक्षी हैं कि जिस राजा ने इन्द्रिय-संयम नहीं किया वह राज्य सहित नष्ट हो गया किन्तु जिसने कामादि छः रिपुओं को अपने वश में किया है उसने चिरकाल तक राज्य किया है।[1]

मनु ने राजा के कर्तव्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति और देशकाल का विचार करते हुए कार्य करे। राजा साहसी, तेजस्वी और पराक्रमी हो। उसकी दया में लक्ष्मी और क्रोध में मृत्यु होना चाहिए।[2] वह न्याय के अनुसार दण्ड का प्रयोग करे। शत्रुओं को कठोर दण्ड दे, मित्रों से प्रेम करे और विद्वानों के प्रति आदर भाव रखे। वह यज्ञ करे, प्रजा से कर ले, प्रजा से पिता के तुल्य व्यवहार करे, विद्वानों को दान दे, युद्ध से विमुख न हो, वध के अयोग्य व्यक्ति पर अस्त्र न चलाये और प्रजा की रक्षा करे।[3] अप्राप्त को प्राप्त करे, प्राप्त की रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे, बढ़े हुए धन को योग्य जनों को दे, दण्ड-विधान प्रबल रखे, सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करता रहे, मंत्रणाओं को सदा गुप्त रखे, शत्रुओं का भेद लेता रहे, शत्रुओं का नाश करे, सामादि चारों उपायों को अपनावे और प्रजा की रक्षा करते हुए दुष्टों का संहार करे।[4]

मनु के अनुसार मंत्रिमण्डल की नियुक्ति, राष्ट्ररक्षा, दुर्ग-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करना और दण्ड-विधान को व्यवस्थित करना — ये राजा के पाँच प्रमुख कार्य हैं।[5]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.
2. मनुस्मृति 7/10-11.
3. मनुस्मृति 7/32 व 79-91.
4. मनुस्मृति 7/99-105, 109-113 व 142-144.
5. मनुस्मृति 7/146-150.

राजा को ऐसे मित्रों से सावधान रहना चाहिए जो गुप्त रूप से शत्रु से मिले रहते हैं। अपनी सेना को सुसंगठित रखे और शत्रु राष्ट्र को नष्ट करे, प्रजा की रक्षा करे, दुष्टों का दमन करे।[1]

राजा का कर्तव्य है कि वह चोर-डाकू आदि को समाप्त करे, गुप्तचरों द्वारा तथा स्वयं गुप्तवेष बनाकर राज्य का निरीक्षण करे। राजकोष से धन हरण करने वाले, राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले और शत्रुओं से मिलकर देश में फूट डालने वाले व्यक्तियों को दण्ड दे।[2]

राजा के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए अग्निपुराण में वर्णित है कि न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना, उसे बढ़ाना, उसकी रक्षा करना और उसे सत्पात्र को दान में देना -- ये राजा के चार प्रधान कर्तव्य हैं। राजा को विनययुक्त होकर प्रजा का पालन करना चाहिए। उन्हें काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान, मद -- इन छह दोषों का परित्याग कर देना चाहिए। राजा को तर्कशास्त्र, वेदत्रयी, वार्ता और दण्ड नीति का ज्ञाता होना चाहिए।[3]

राजा, प्रजाजनों पर शासन, उनकी रक्षा, उनकी आजीविका का प्रबन्ध और उन्हें मर्यादा में रखने के लिए बनाया जाता है। जो प्रजा को धर्म मार्ग में प्रतिष्ठित नहीं कर पाता, केवल उससे कर वसूल करने में लगा रहता है, वह प्रजा के पाप का भागी होकर अपने ऐश्वर्य से हाथ धो बैठता है।[4]

---

1. मनुस्मृति 7/222.
2. मनुस्मृति 9/252-261 व 275.
3. अग्नि 238/2-8.
4. भागवत 4/21/22-24.

महाभारत के अनुसार प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का सनातन धर्म है। सत्य की रक्षा और व्यवहार की सरलता ही राजोचित कर्तव्य है।[1] क्षत्रिय के लिए युद्ध ही प्रधान मार्ग है। राजा को सदैव युद्ध के लिए उद्यत रहना चाहिए। प्रजा की रक्षा करने मात्र से राजा कृतकृत्य हो जाता है। बल की प्रधानता होने से राजा को "ऐन्द्र" कहा जाता है।[2]

राजा का बल दो प्रकार का होता है -- प्राकृत और आहार्य। कुल, धन, मंत्री और बुद्धि राजा के प्राकृत बल कहलाते हैं। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिक, नौका, प्रजा और पशु ये आठ आहार्य बल के अन्तर्गत आते हैं।[3]

पुराण, महाभारत और रामायण में यक्षराज कुबेर, यक्षराज धन, पूर्णभद्र, स्थूणाकर्ण, सुमन्यु आदि यक्ष राजाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार चित्ररथ, धृतराष्ट्र, चित्रसेन, चित्रांगद, विश्वावसु, शैलूष, ग्रामणी आदि गन्धर्व राजाओं का विस्तृत वर्णन पुराणों में किया गया है, जिससे यह कहा जा सकता है कि यक्ष और गन्धर्व समाज में राज्य का सुव्यवस्थित संचालन होता था।

---

1. शांति पर्व 57/11.
2. शांति पर्व 60/18-20.
3. शांति पर्व 121/43-44.

मंत्रिमण्डल का गठन

राज्य के सुव्यवस्थित संचालन के लिए राजा को मंत्रिमण्डल का गठन करना पड़ता है। राज्य में शासन कार्य में मदद के लिए राजा सहायकों और सलाहकारों की नियुक्ति करता है। बिना सहायकों के राजा के लिए राज्य का संचालन करना दुष्कर होता है। राज्य के सप्ताङ्गों में राजा के पश्चात मंत्री का विशेष महत्त्व है। मंत्रिमण्डल का मुख्य कार्य राजा को राज्य-संचालन में उचित परामर्श देना है। महाभारत के अनुसार राजा अपने मंत्रियों पर उसी प्रकार निर्भर रहता है, जिस प्रकार ब्राह्मण वेद पर तथा स्त्रियाँ अपने पति पर निर्भर रहती हैं। राजा को परीक्षा करके उचित गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को मंत्रि नियुक्त करना चाहिए।

मंत्री के गुण :—

महाभारत में मंत्री के गुणों का वर्णन करते हुए उल्लिखित है कि जिसका रूप सुन्दर तथा वाणी मधुर हो, जो क्षमावान्, अनिन्दक, कुलीन और शीलवान् हो, उसे प्रधान सचिव नियुक्त करना चाहिए। जिसकी बुद्धि और स्मरणशक्ति तीव्र हो, जो कार्य साधने में दक्ष और दयालु हो, अपमान हो जाने पर जो द्वेष नहीं रखता हो ऐसा व्यक्ति मंत्री बनाने योग्य होता है। जो कीर्ति को प्रधानता देता है, मर्यादाओं में स्थित रहता है, सामर्थ्यवान से द्वेष नहीं करता है, धर्म का त्याग नहीं करता है, जिसमें कार्य-कुशलता तथा वाक्पटुता की योग्यता हो, उसे प्रधान मंत्री नियुक्त करना चाहिए। जो कुलीन, शीलवान्,

सहनशील, आत्मप्रशंसा से रहित, शूरवीर, श्रेष्ठ विद्वान तथा कर्तव्याकर्तव्य में कुशल हो, उसे मंत्री पद प्रतिष्ठित करना चाहिए।[1]

जो लज्जाशील, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सरल और प्रवक्ता हो, ऐसे लोगों को सभासद होना चाहिए। मंत्रियों को आपत्ति में सहायक बनावे।[2]

कुलीन, शीलवान, इशारे को समझने वाले, दयालु, देश-काल के विभाग को समझने वाले तथा राजा के कार्य की सिद्धि तथा हित चाहने वाले व्यक्ति को मंत्री नियुक्त करना चाहिए।[3]

नारद शास्त्र में वर्णित है कि मंत्री पद पर निम्न गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए -- कुलीन, बुद्धिमान, वेद और राजनीति के विशेषज्ञ, अपने ही देश में उत्पन्न, अनुरक्त रहने वाले, पवित्र, आचार तथा धर्म के पालक को मंत्री के पद पर नियुक्ति प्रदान करना चाहिए।[4]

सन्धि-विग्रह के अवसर को जानने वाला, धर्मशास्त्र का तत्त्वज्ञ, बुद्धिमान, धीर, लज्जावान, रहस्य को गुप्त रखने वाला, कुलीन, साहसी तथा शुद्ध हृदय वाला मंत्री ही उत्तम होता है।[5]

कौटिल्य के अनुसार जो स्वदेश में उत्पन्न, कुलीन, बुराई से दूर रहने वाला, शिल्प आदि में निपुण, सूक्ष्मदृष्टि वाला, बुद्धिमान,

---

1. शांति पर्व 80/21-29.
2. शांति पर्व 83/2-3.
3. शांति पर्व 83/8-9.
4. नारदशास्त्र 34/9.
5. शांति पर्व 85/30-31.

स्मरणशक्तिवान्, शीघ्र कार्यपूर्ति में समर्थ, वाक्चतुर, विषय को व्यक्त करने में दक्ष, तर्कशक्तिमान्, उत्साही, प्रभावशाली, कष्ट-सहिष्णु, पवित्र, स्नेही, राजा के प्रति भक्ति रखने वाला, शीलवान्, बलवान्, धैर्यवान्, गर्वरहित, सौम्य आकृति और वैरभाव से रहित हो, ऐसा व्यक्ति मंत्री बनाने का पात्र होता है। इनमें से जिसमें एक-चौथाई गुण कम हों वह मंत्री मध्यम श्रेणी का और जिसमें आधे गुण हों वह निम्न श्रेणी का मंत्री माना जाता है।[1]

वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि जो अपने और शत्रु-पक्ष के बल-पराक्रम को समझकर दोनों पक्षों की स्थिति, हानि और लाभ का विचार करके अपने स्वामी के लिए हितकर और उचित परामर्श दे, वही सच्चा मंत्री है।[2]

वाल्मीकि रामायण में मंत्री की योग्यता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा चेष्टाओं से मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मंत्री के रूप में नियुक्ति प्रदान करना उचित है। राजा के विजय का मूल कारण मंत्रणा है। अतः नीतिशास्त्र में निपुण तथा मंत्रणा को गुप्त रखने वाले व्यक्ति को ही मंत्री बनाना चाहिए।[3] एक मंत्री भी मेधावी, शूरवीर, चतुर और नीतिज्ञ हो तो वह राजा को बहुत बड़ी सम्पत्ति प्रदान करा सकता है —

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूर दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्।।[4]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.
2. वा.रा. 6/14/22.
3. वा.रा. 2/67/15-16.
4. वा.रा. 2/67/24.

राजा को चाहिए कि उत्तम कार्य में वह ऐसे अमात्यों को नियुक्त करे जो निश्छल हों, वंश परम्परा से काम करते आ रहे हों, बाहर-भीतर से पवित्र तथा श्रेष्ठ हों।[1] किन्तु जो अमात्य सामादि उपायों के प्रयोग में कुशल, राजनीति का विद्वान, विश्वासी भृत्यों को फोड़ने में लगा हुआ, शूर तथा राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखता हो, उसे राजा मृत्युदण्ड प्रदान करे अन्यथा स्वयं राजा उसके द्वारा मारा जाता है —

उपाय कुशलं वैद्यं भृत्यं संदूषणे रतम्।
शूरमैश्वर्यकामं च यो न हन्ति स हन्यते।।[2]

कथासरित्सागर के अनुसार अत्यन्त विश्वासी, नीतिज्ञ और प्रतिभाशाली मंत्रियों से ही राजा को मंत्रणा करनी चाहिए और उनके निर्णयों को कार्यान्वित करके राज्य को सुरक्षित रखते हुए, प्रजा-पालन करना चाहिए।[3] राजा को श्रेष्ठ मंत्रियों से मंत्रणा करके शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करना चाहिए और प्रजा को अनुरक्त करके चिरकाल तक राज्य का उपभोग करना चाहिए।[4]

महाभारत में वर्णित है कि परीक्षा किये हुए, निष्कपट भाव से कार्य करने वाले, पितामह के समय से कार्य करने वाले, बाहर-भीतर से शुद्ध, संयमी, जन्म-कर्म से पवित्र व्यक्तियों को मंत्री बना कर उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों में नियुक्त करना चाहिए।[5]

विद्या में प्रवीण, विनयशील, कुलीन, धर्म और अर्थ में कुशल तथा सरल स्वभाव वाले व्यक्तियों को मंत्री बनाना चाहिए और

- -

1. वा.रा. 2/67/26.
2. वा.रा. 2/67/29.
3. कथासरित्सागर 6/8/199.
4. अग्नि 220/1.
5. आश्रमवासिक पर्व 5/14.

उन्हीं के साथ गूढ़ विषय पर मंत्रणा करनी चाहिए किन्तु अधिक लोगों के साथ देर तक विचार नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण मंत्रियों अथवा एक-दो मंत्री के साथ चारों ओर से घिरे हुए बन्द कमरे में गूढ़ विषय पर विचार करना चाहिए।[1]

जो सदाचारी, शास्त्रज्ञ और कुलीन हों, जिनकी ईमानदारी का परीक्षण कर लिया गया हो, राजा के प्रति अनुरक्त, नीतिज्ञ, सद्भाव सम्पन्न, गुटबन्दी से रहित, विजय के अभिलाषी, लोभरहित, कूटनीति में दक्ष, बुद्धिमान्, राजा के हितैषी और मनस्वी हों उन्हें सचिव नियुक्त करना चाहिए।[2]

राजा को सदैव बुद्धिमान्, कुलीन, सदाचार और शास्त्र ज्ञान से सम्पन्न पाँच मंत्रियों के साथ बैठकर राजकार्य के विषय में गुप्त मंत्रणा करनी चाहिए।[3]

कौटिल्य के अनुसार अमात्य और सचिव की नियुक्ति पहले किसी सामान्य पद पर की जाय और उसकी परीक्षा हो जाने पर उन्हें अमात्य, मंत्री अथवा सचिवों की नियुक्ति करना चाहिए। एक-एक मंत्री से अलग-अलग मंत्रणा न कर तीन-चार मंत्रियों के साथ बैठकर मंत्रणा करना उचित है। देश-काल और कार्य के अनुसार राजा एक या दो मंत्रियों से मंत्रणा करे अथवा आवश्यकता पड़ने पर राजा को स्वयं ही निर्णय लेना चाहिए।[4]

अग्नि पुराण में उल्लिखित है कि मंत्रियों को कुलीन, पवित्र, शूर, शास्त्रज्ञ, अनुरागी और दण्ड-नीति में कुशल होना

---

1. आश्रमवासिक पर्व 5/20-22.
2. शांतिपर्व 111/23-24.
3. अनुशासन पर्व 145/64.
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.

चाहिए। जो संधि-विग्रह का ज्ञाता, कुल, शील तथा कला से युक्त, वाक्चतुर, प्रगल्भ, उत्साही, विचार कर कार्य करने वाला, बुद्धिमान, स्तब्धता तथा चपलता से रहित, कष्टसह, पवित्र, सत्य, पराक्रम, धैर्य तथा स्थिरता से युक्त प्रभावसम्पन्न, स्वस्थ, शिल्पकुशल, कार्यनिपुण, प्रज्ञावान्, धारणाशक्ति युक्त, राजा के प्रति भक्ति रखने वाला हो, वह राजा का मंत्री हो। स्मरण शक्ति, अर्थोपार्जन में तत्परता, दृढ़ निश्चय और मंत्रणा को गुप्त रखना -- यह मंत्री के लिए आवश्यक योग्यता है।[1]

इस प्रकार मंत्री के नियुक्ति के पहले उस व्यक्ति के विविध गुणों का परीक्षण कर लेने के बाद ही उन्हें नियुक्ति प्रदान करने का विधान बताया गया है।

पुराणों एवं महाभारत के अनुशीलन से हमें यक्षराज कुबेर एवं गन्धर्वराजाओं के मंत्री के नाम का स्पष्ट उल्लेख हमें प्राप्त नहीं होता किन्तु वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि रावण से युद्ध के लिए धन के स्वामी कुबेर अपने मंत्री शुक्र और प्रोष्ठपद तथा शंख और पद्म नामक धन के अधिष्ठाता देवता के साथ युद्ध-भूमि में उपस्थित हुए थे।[2]

उपर्युक्त वर्णन से यह लक्षित होता है कि यक्ष समाज में भी मंत्रि परिषद् का गठन किया जाता था और मंत्रिगण राजा की सुरक्षा एवं राज्य की रक्षा में सदैव तत्पर रहते थे।

---

1. अग्नि 239/11-16. 2. वा.रा. 7/15/16.

मंत्रिमण्डल का आकार

मंत्रियों का मुख्य कार्य राजा को राजकार्य के विषय में परामर्श प्रदान करना है। राजा और मंत्रियों के द्वारा किये गये मंत्रणा को गुप्त रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसलिए मंत्रणा चारों ओर से बन्द स्थान पर करने का विधान है।

मंत्रिमण्डल के आकार के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। मनु और शुक्राचार्य के अनुसार मंत्रिमण्डल में बीस मंत्रियों को नियुक्त करना चाहिए,[1] जबकि बृहस्पति ने सोलह मंत्रियों को मंत्रिमण्डल में स्थान प्रदान करने की सलाह दी है। कौटिल्य ने मंत्रिमण्डल में किसी निश्चित संख्या का उल्लेख नहीं किया है। उनका मत है कि राजा जितना उचित समझे उतना मंत्रिमण्डल गठित कर सकता है। इस तरह कौटिल्य ने मंत्रिमण्डल के आकार को राजा के विवेक पर छोड़ दिया है।[2]

महाभारत में मंत्रिमण्डल के आकार का उल्लेख है कि राजा को अपने मंत्रिमण्डल में वेद के विद्वान्, निर्भीक, शुद्ध एवं स्नातक चार ब्राह्मण, शरीर से बलवान् तथा शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन-धान्य से सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचार-विचार वाले तीन विनयशील शूद्र तथा आठ गुणों से युक्त और पुराण-विचक्षण एक सूत को सम्मिलित करना चाहिए।[3]

पुराणों में यक्षों एवं गन्धर्वों के मंत्रिमण्डल के निश्चित आकार के सम्बन्ध में वर्णन प्राप्त नहीं होता है। अतः मंत्रियों की संख्या के विषय में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

---

1. मनुस्मृति
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.
3. शान्ति पर्व 85/7-8.

गुप्त मंत्रणा

राजा मंत्रियों के साथ राज्य के विषय में मंत्रणा करता है। पुराणों एवं इतिहास में वर्णित हैं कि इन मंत्रणाओं को गुप्त रखा जाना आवश्यक होता है। मंत्री का एक मुख्य गुण मंत्रणा को गुप्त रखना भी होता है।

महाभारत के अनुसार राजा को पराक्रमी, प्रतिज्ञा पर स्थिर रहने वाले, धर्म का उल्लंघन न करने वाले, अभिमानरहित, सत्यवान, क्षमाशील, सम्मानित तथा जिसकी परीक्षा ली गयी हो, ऐसे पुरुष से ही गुप्त मंत्रणा करनी चाहिए।[1] राजा मंत्रियों के साथ गूढ़ विषय पर मंत्रणा करे, किन्तु अधिक लोगों को लेकर देर तक मंत्रणा नहीं करनी चाहिए। सभी मंत्रियों को अथवा एक-दो को चारों ओर से बन्द कमरे में गुप्त रूप से मंत्रणा करनी चाहिए।[2] राजा की मंत्रणा को गुप्त रहना चाहिए। यदि यह बाहर निकल गयी तो वह राजा क्षय को प्राप्त होता है।[3]

मत्स्य पुराण के अनुसार राजा को अपनी मंत्रणा गुप्त रखनी चाहिए। मंत्री के साथ की गई मंत्रणा सभी सम्पत्तियों तथा सुखों को प्रदान करती है। मंत्रणा ही राज्य का मूल है। राजा को केवल एक मंत्री के साथ अथवा एक ही साथ अनेक लोगों से मंत्रणा नहीं करनी चाहिए, बल्कि अलग-अलग अनेक व्यक्तियों से मंत्रणा करके राज्य के हित में आवश्यक कदम उठाना चाहिए।[4]

---

1. शांति पर्व 83/13-15.
2. आश्रमवासिक पर्व 5/14-21.
3. मार्कण्डेय 24/7-8.
4. मत्स्य 220/31-37.

न्याय और दण्ड-नीति

राजा को राज्य में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए, जन सामान्य की सम्पत्ति की रक्षा के लिए तथा दुष्टों और अपराधियों को दण्ड देने के लिए दण्ड-नीति का प्रयोग करना पड़ता है। प्रजा को उचित न्याय प्राप्त हो सके, इसके लिए अपराधियों को उचित दण्ड देना आवश्यक है, जिससे राज्य में लोगों के जान-माल की रक्षा हो सके। सबसे पहले दण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

दण्ड की उत्पत्ति :--

महाभारत में दण्ड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

प्रजापति ब्रह्मा ने क्षुप को ऋत्विज बनाकर यज्ञ प्रारम्भ किया। उस समय यज्ञ की प्रधानता होने से ब्रह्मा का दण्ड अन्तर्धान हो गया। तब शिवजी ने अपने को ही दण्ड के रूप में प्रकट किया और सरस्वती देवी ने दण्ड-नीति की रचना की। ब्रह्माजी का यज्ञ सम्पन्न हो गया तब महादेव ने विष्णु को, विष्णु ने अंगिरा को, अंगिरा ने इन्द्र को और मरीचि को, मरीचि ने भृगु को, भृगु से ऋषियों को यह दण्ड प्राप्त हुआ। ऋषियों ने लोकपालों को, लोकपालों ने क्षुप को, क्षुप ने श्राद्धदेव (मनु) को तथा श्राद्धदेव ने इसे अपने पुत्रों को दिया। इस प्रकार यह दण्ड स्वयं महादेव का रूप है और राजाओं तक ऋषियों से होते हुए पहुँचा है। दुष्टों का दमन करना ही दण्ड का मुख्य उद्देश्य है।[1]

---

1. शान्ति पर्व 122/18-39, मनु स्मृति 7/14-15.

यह उद्दण्ड मनुष्यों का दमन करता है और दुष्टों को दण्ड देता है। अतः दमन और दण्ड के कारण ही विद्वानों ने इसे दण्ड कहा है --

"दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं विदुर्बुधाः।"[1]

मनुष्यों को प्रमाद से बचाने और उनके धन की रक्षा करने के लिए लोक में जो मर्यादा स्थापित की गई है, उसी का नाम दण्ड है।[2] दण्ड धारण करना राजा का प्रधान धर्म है। क्योंकि क्षत्रिय में बल नित्य स्थित रहता है और बल में ही दण्ड प्रतिष्ठित होता है।[3]

शासक के रूप में दण्ड का महत्त्व :--

क्षत्रिय की शोभा दण्ड से ही होती है। जो राजा दण्ड नहीं देता, वह पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकता। दण्डहीन राजा की प्रजा सुखी नहीं होती। राजाओं का धर्म दुष्टों को दण्ड देना, सत्पुरुषों का पालन करना और युद्ध में पीठ न दिखाना है।[4]

दण्ड समस्त प्रजा पर शासन करता है। दण्ड ही उसकी रक्षा करता है। सबके सो जाने पर भी दण्ड जागता रहता है। अतः दण्ड को राजा का धर्म माना गया है। दण्ड ही धर्म और अर्थ की रक्षा करता है। वह काम का भी रक्षक है, अतः दण्ड

- -

1. शांति पर्व 15/8.
2. शांति पर्व 15/10.
3. शांति पर्व 23/13.
4. शांति पर्व 14/2-7.

त्रिवर्ग रूप कहा गया है। दण्ड से धन-धान्य की रक्षा होती है, ऐसा जानकर राजा दण्ड धारण करता है। पापी राजदण्ड के भय से पाप नहीं करते हैं। दण्ड रक्षा न करे तो सब लोग घोर अंधकार में डूब जायेंगे।[1] दण्ड नीति का ठीक-ठीक प्रयोग करनें से समस्त प्राणियों के कार्य अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। यदि दण्ड न रहे तो सारी प्रजा नष्ट हो जाये क्योंकि दुर्बल को बलवान् मार डालेंगे।[2]

अच्छी तरह प्रयोग में लाया हुआ दण्ड प्रजा की रक्षा करता है। सारा जगत दण्ड से विवश होकर सद्कर्म करने लगता है। दण्ड के भय से ही मनुष्य मर्यादा-पालन में प्रवृत्त होता है। दण्ड से ही प्रजा सन्मार्ग की ओर उन्मुख होती है।[3] दण्ड सम्पूर्ण जगत को नियम के अन्दर रखने वाला है। यह धर्म का सनातन स्वरूप है। इसका उद्देश्य प्रजा को उद्दण्डता से बचाना है।[4]

भागवत पुराण में उल्लिखित है कि पाप कर्म करने वाले मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार दण्डनीय होते हैं।[5] अग्निपुराण के अनुसार मित्र, शत्रु, पृथ्वी तथा सुवर्ण प्राप्ति का साधन, शत्रु को विनष्ट करने वाला तथा विलम्ब से होने वाले कार्य में शीघ्रता लाने वाला दण्ड ही होता है।[6] अतः राजा को दण्ड के द्वारा शत्रुओं व दुष्टों को वश में करके प्रजा का पालन करना चाहिए।

मनुस्मृति में वर्णित है राजा को दण्ड देते समय सत्य-व्यवहार, व्यक्ति, साक्षी तथा देशकाल को देखकर निर्णय करना

---

1. शान्ति पर्व 15/2-7.
2. शान्ति पर्व 15/29-30.
3. शान्ति पर्व 15/31-43.
4. शान्ति पर्व 122/14.
5. भागवत 6/1/43.
6. अग्नि 241/23.

चाहिए। स्त्रियों के विवाद में स्त्रियों को साक्षी बनाये।[1] घर के अन्दर की मारपीट या हत्या आदि के अभियोग में जिसे घटना की जानकारी हो, उसे ही साक्षी बनाना चाहिए। साक्षियों के बहुमत के आधार पर निर्णय करना चाहिए।[2]

दण्ड राज्य को चलाता है, दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड सदैव जागता रहता है और दण्ड ही धर्मरूप है —

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।[3]

दण्ड ही सबको मार्ग पर लाता है, दण्ड के भय से सब सुखपूर्वक रहते हैं, दण्ड पापों को भगाता है जिससे प्रजा में अव्यवस्था नहीं फैलती है। दण्ड का अनुचित प्रयोग राजा के लिए भी घातक होता है।[4]

दण्ड न तो अत्यन्त कठोर हो और न मृदु। कौटिल्य के अनुसार कठोर दण्ड से प्रजा उद्विग्न हो जाती है और मृदु दण्ड से प्रजा अनियंत्रित हो जाती है। अतः राजा को यथोचित दण्ड का निर्धारण करना चाहिए। उचित दण्ड देने वाला राजा प्रजा का पूज्य हो जाता है।[5]

पद्म पुराण में उल्लिखित है कि मांसभक्षी प्राणियों तथा अजितेन्द्रिय मनुष्यों से लोगों को सदा भय बना रहता है। अतः उनके निवारण के लिए ब्रह्मा जी ने दण्ड का विधान किया है। दण्ड प्राणियों की रक्षा करता है और प्रजा का पालन करता है। वह

---

1. मनुस्मृति 8/45-46 व 68.
2. मनुस्मृति 8/69 व 73.
3. मनुस्मृति 7/18.
4. मनुस्मृति 7/22, 25 व 28.
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.

पापियों को पाप कर्म से रोकता है। दण्ड सबके लिए दुर्जय है। वह प्राणियों को भयभीत रखता है। अतः दण्ड ही शासक है। उसी पर धर्म स्थित है।[1]

दण्ड के भेद :--

मनुस्मृति में दण्ड के चार भेद वर्णित है -- वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, अर्थदण्ड और वधदण्ड। वाग्दण्ड में डाँटना-फटकारना और चेतावनी देना आदि का समावेश होता है। धिग्दण्ड में अपराधी को भला-बुरा कहा जाता है तथा उसे धिक्कारा जाता है। अर्थदण्ड के अन्तर्गत अपराधी को जुर्माना आदि आर्थिक दण्ड दिया जाता है। वध दण्ड में अपराधी को शारीरिक दण्ड दिया जाता है। इसके अन्तर्गत कोड़े आदि से पीटना, अंगों को छेदना, मृत्युदण्ड आदि दण्ड सम्मिलित हैं। अपराधी को चारों दण्ड एक साथ भी दिया जा सकता है।[2]

अग्नि पुराण में दो प्रकार के दण्ड का उल्लेख हुआ है -- प्रकाश दण्ड और अप्रकाश दण्ड। जो दण्ड समाज के सामने अपराधी को अपमानित करते हुए दिया जाता है उसे प्रकाश दण्ड कहते हैं। इसमें लोगों के बीच अपराधी को कोड़े आदि से पीटते हुए दण्डित किया जाता है। मृत्युदण्ड की अपेक्षा शारीरिक दण्ड अधिक उत्तम माना जाता है।[3]

---

1. सं.पद्मपुराण, सृष्टि, पृष्ठ 72.
2. मनुस्मृति 8/129-130.
3. अग्नि 241/51-52.

न्याय-व्यवस्था

राजा राज्य में शांति स्थापित करते हुए सत्ता का संचालन करता है। राज्य का सबसे मुख्य न्यायाधीश राजा ही होता है। प्रजा की पीड़ा अथवा विवाद को सुलझाने के लिए राजा न्याय की व्यवस्था करता है और अपराधियों को दण्ड देता है।

महाभारत में वर्णित है कि प्रजा को न्याय प्रदान करने के लिए न्याय अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। जो विश्वासपात्र, संतोषी और हितैषी हो, ऐसे व्यक्ति को न्यायाधिकारी बनाना चाहिए। गुप्तचरों के द्वारा सदैव उसके कार्यों का निरीक्षण करते रहना चाहिए। न्यायाधिकारी अपराधियों के अपराध को जानकर उचित दण्ड दे, ऐसा विधान बनाना चाहिए।[1]

मनु के अनुसार आग लगाने वाला, विष देने वाला, मारने के लिए अस्त्र उठाने वाला, धन का अपहरण करने वाला, खेत चुराने वाला और दूसरे की पत्नी का अपहरण करने वाला — ये सभी आततायी वध के योग्य माने गये हैं। बलात्कार, हत्या, गुण्डागर्दी, चोरी, डकैती आदि करने वाले पापियों को क्षणभर के लिए भी क्षमा नहीं करना चाहिए।[2]

कौटिल्य अर्थशास्त्र में निर्णय के चार आधार का उल्लेख हुआ है — धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन। इनमें राजशासन को श्रेष्ठ माना गया है। धर्म, सत्य पर और व्यवहार, साक्षियों पर आधारित होता है। चरित्र, परम्परा से प्राप्त आधार पर और

---

1. आश्रमवासिक पर्व 5/27-29. 2. मनुस्मृति 8/350.

शासन, न्यायसंगत उचित दण्ड पर निर्भर रहता है। धर्मपूर्वक प्रजापालन करने वाला राजा स्वर्ग का अधिकारी होता है। पुत्र और शत्रु के प्रति समान भाव से निर्णय करने वाला राजा दोनों लोकों का सुख भोगता है।[1]

कौटिल्य के अनुसार तीर्थस्थान में चोरी करने, सेंध लगाने आदि के लिए शारीरिक दण्ड अथवा आर्थिक दण्ड का विधान है। अपराध की पुनरावृत्ति करने पर दण्ड की मात्रा बढ़ायी जाती है। वनों से पशुओं की चोरी, शिल्पियों के औजार की चोरी, किले में अनुमति के बिना प्रवेश, दीवार फाँदकर अथवा सेंध लगाकर घुसना और चोरी करना, चोर अथवा व्यभिचारी की सहायता करना दण्डनीय अपराध है।

न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह राजा और अमात्यगण से सम्पर्क रखता हुआ दण्ड देने के समय अपराधी के अपराध, उसके कारण, अपराध की मात्रा तथा परिणाम और देशकाल को भली प्रकार विचार कर दण्ड का निर्णय करे।

बलपूर्वक किसी की हत्या, स्त्री को उठाकर ले जाना, अंग भंग करना, धन का अपहरण, सेंध लगाकर चोरी करना, धर्मस्थान में चोरी करना, राजा के पशुओं को हानि पहुँचाना आदि को मृत्युदण्ड दिया जाता है। माता-पिता, पुत्र-भ्राता, आचार्य तथा तपस्वियों की हत्या करने वाले की चमड़ी और मस्तक आग में जलाकर मारने का विधान था।[2]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 3.
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4.

अग्निपुराण में वर्णित है कि जो पितामह के समय से काम करते आ रहा हो, वश में रहने वाला, मेलजोल रखने वाला, जिसका पौरूष विख्यात हो, उत्तम कुल में उत्पन्न, कुशाल, विविध अस्त्रों को धारण करने वाला हो, युद्ध में निपुण, जिसने परिश्रम के कार्यों, दुःखों और युद्धों में परिश्रम किया हो, जिसमें द्विविधा न हो ऐसे क्षत्रिय को दण्ड देने वाला नियुक्त करना चाहिए।[1]

दुर्ग व्यवस्था

राज्य के सात अंगों में एक दुर्ग है। दुर्ग की रचना एवं रक्षा करना राजा का अष्ट संधान कर्म में वर्णित है।[2]

महाभारत के अनुसार जहाँ सब प्रकार की सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में हो, जो स्थान बहुत विस्तृत हो, वहाँ दुर्गों का आश्रय लेकर राजा को नगर बसाना चाहिए। दुर्ग में अन्न और अस्त्र-शस्त्रों की अधिकता हो, चौरों और मजबूत चारदीवारी और गहरी व चौड़ी खाई हो, हाथी, घोड़े, रथ आदि की अधिकता हो, आवश्यक वस्तुओं से भरे हुए भण्डार हों, बलवान् मनुष्यों से सम्पन्न हो, ऐसे नगर के भीतर मंत्रियों तथा सेना के साथ राजा को निवास करना चाहिए। राजा को उस नगर में कोष, सेना, मित्र, अन्न भण्डार तथा अस्त्र-शस्त्रों को यत्नपूर्वक बढ़ाना चाहिए तथा गुप्तचरों द्वारा

---

1. अग्नि 239/31-33.
2. सभा पर्व 5/22-23.

राज्य का भलीभाँति निरीक्षण करते हुए प्रजा का पालन करना चाहिए।[1]

मत्स्य पुराण में दुर्ग बनाने के लिए उपयुक्त स्थान के चयन का वर्णन किया गया है। जो स्थान रमणीय हो, पड़ोसी राजा विनम्र हो, वैश्य व शूद्र अधिक रहते हों, शत्रुओं द्वारा हरण योग्य न हो, जल-युक्त तथा अनुरक्त लोगों से सम्पन्न हो, पुष्प-फल आदि से लदा हुआ हो, शत्रुओं के लिए अगम्य हो, जहाँ प्रेमीजन रहते हों, ऐसे स्थान पर ही राजा को अपने निवास के लिए दुर्ग की रचना करनी चाहिए।[2]

दुर्ग का निर्माण :--

दुर्ग के चारों ओर खाई, चारदीवारी एवं तोप आदि प्रधान यंत्रों से घिरा हुआ बनाना चाहिए। उसमें मनोहर फाटक लगा देना चाहिए। वहाँ लम्बी-चौड़ी चार गलियाँ बनी हों। एक गली के अग्रभाग में देव मंदिर, दूसरी गली के आगे राजमहल, तीसरी गली के अग्रभाग में धर्माधिकारी का आवास और चौथी गली के आगे दुर्ग का मुख्य प्रवेश-द्वार बनाना चाहिए। दुर्ग को चौकोना, आयताकार, गोलाकार, त्रिकोण, अर्धचन्द्राकार, वज्राकार आदि आकार में बनाना चाहिए। नदी-तट पर निर्मित अर्धचन्द्राकार दुर्ग को उत्तम कहा गया है।[3]

महाभारत के अनुसार नगर की रक्षा के लिए उसके चारों ओर दीवारें तथा मुख्य द्वार अत्यन्त सुदृढ़ होने चाहिए। नगर छः चारदीवारियों से घिरा हो तथा सभी दरवाजे विशाल हों। नगर की रक्षा के यंत्र लगे तथा उन द्वारों का विभाग सुन्दर ढंग से सम्पन्न हो।[4]

---

1. शान्ति पर्व [illegible]86/4-19. 2. मत्स्य 217/1-5.
3. मत्स्य 217/11-14. 4. आश्रमवासिक पर्व 5/16-17.

विविध कक्षों का निर्माण :—

दुर्ग में राजमहल के दाहिने भाग में कोषालय बनवाना चाहिए। कोषालय के दाहिने भाग में गजशाला होना चाहिए। गजशाला पूर्व या उत्तराभिमुखी हो। दुर्ग के अग्निकोण में आयुधागार बनाना चाहिए। अग्नि कोण में ही रसोईघर तथा अन्य कर्मशालाओं को बनवाना चाहिए।[1]

राजमहल के बायीं ओर पुरोहित का आवास होना चाहिए। उसके आसपास मंत्रियों और वैद्य का निवास स्थान तथा कोष्ठागार बनाने का विधान वर्णित है। उसके ही समीप गौओं और अश्वों के लिए कक्ष बनाना चाहिए। राजा योद्धाओं, शिल्पियों और मंत्रवेत्ताओं को भी दुर्ग में उत्तम स्थान पर निवास प्रदान करे। दुर्ग में चारणों, संगीतज्ञों और ब्राह्मणों के निवास स्थान की भी व्यवस्था करना चाहिए।[2]

दुर्ग में आवश्यक वस्तुओं का संग्रह :—

राजा को दुर्ग में विविध अस्त्र-शास्त्रों का संग्रह करना चाहिए क्योंकि इसी से रक्षा होती है। दुर्ग में गुप्त द्वार बनाने का विधान किया गया है, जिससे समय पर आत्मरक्षा की जा सके। वहाँ सभी प्रकार के शिल्पीय पात्रों का संचय रहना चाहिए। दुर्ग में विभिन्न वाद्यों तथा औषधियों का भी संग्रह होना चाहिए। राजा को दुर्ग में प्रचुर मात्रा में घासभूसा, ईंधन, तेल, दूध, धन-धान्य, दाल, रत्न, धातुएँ एवं अन्य आवश्यक पदार्थों का भी संचय करना चाहिए। राजा को प्रजा की रक्षा

---

1. मत्स्य 217/15-16.
2. मत्स्य 217/17-26.

विविध कक्षों का निर्माण :—

दुर्ग में राजमहल के दाहिने भाग में कोषालय बनवाना चाहिए। कोषालय के दाहिने भाग में गजशाला होना चाहिए। गजशाला पूर्व या उत्तराभिमुखी हो। दुर्ग के अग्निकोण में आयुधागार बनाना चाहिए। अग्नि कोण में ही रसोईघर तथा अन्य कर्मशालाओं को बनवाना चाहिए।[1]

राजमहल के बायीं ओर पुरोहित का आवास होना चाहिए। उसके आसपास मंत्रियों और वैद्य का निवास स्थान तथा कोष्ठागार बनाने का विधान वर्णित है। उसके ही समीप गौओं और अश्वों के लिए कक्ष बनाना चाहिए। राजा योद्धाओं, शिल्पियों और मंत्रवेत्ताओं को भी दुर्ग में उत्तम स्थान पर निवास प्रदान करे। दुर्ग में चारणों, संगीतज्ञों और ब्राह्मणों के निवास स्थान की भी व्यवस्था करना चाहिए।[2]

दुर्ग में आवश्यक वस्तुओं का संग्रह :—

राजा को दुर्ग में विविध अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह करना चाहिए क्योंकि इसी से रक्षा होती है। दुर्ग में गुप्त द्वार बनाने का विधान किया गया है, जिससे समय पर आत्मरक्षा की जा सके। वहाँ सभी प्रकार के शिल्पीय पात्रों का संचय रहना चाहिए। दुर्ग में विभिन्न वाद्यों तथा औषधियों का भी संग्रह होना चाहिए। राजा को दुर्ग में प्रचुर मात्रा में घासभूसा, ईंधन, तेल, दूध, धन-धान्य, दाल, रत्न, धातुएँ एवं अन्य आवश्यक पदार्थों का भी संचय करना चाहिए। राजा को प्रजा की रक्षा

---

1. मत्स्य 217/15-16.
2. मत्स्य 217/17-26.

के लिए विविध आवश्यक वस्तुओं को दुर्ग में गुप्त रूप से इकट्ठा करके रखना चाहिए। दुर्ग में विष से भरे घड़े, सर्पों, सिंह आदि हिंसक पशु तथा पक्षियों को भी रखने का विधान है।[1]

मनुस्मृति में वर्णित है कि दुर्ग में आयुधों से युक्त सेना, धनधान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी आदि से सम्पन्न होना चाहिए। राजा को जल, वृक्ष आदि से आच्छादित गुप्त स्थान पर दुर्ग बनाकर निवास करना चाहिए --

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दश सहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते।।
तत्स्यादायुध सम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च।।
तस्यमध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्।।[2]

इसके अतिरिक्त राजा दुर्ग में जड़ीबूटियों, अन्न, दुग्ध, शहद, तेल, घी आदि का संग्रह करे। राजा को मधुर, खट्टा, लवण, कटु, तिक्त और कषाय औषधियों का दुर्ग में संचय करना चाहिए।[3]

दुर्ग में वैश्य और शूद्रों की अधिकता होनी चाहिए। वहाँ ब्राह्मणों की कम और शिल्पियों की अधिक संख्या होना चाहिए। दुर्ग को शत्रु से सुरक्षित तथा पुष्प, फल, अन्न आदि से समृद्ध होना चाहिए। उसे शत्रु से अगम्य तथा चोरादि रहित होना चाहिए। राजा को दुर्ग के अन्दर ही निवास करना चाहिए।[4]

---

1. मत्स्य 217/27-42.
2. मनुस्मृति 7/74-76.
3. मत्स्य 217/43-81.
4. अग्नि 222/1-3.

दुर्ग के भेद :—

मत्स्य व अग्नि पुराण, मनुस्मृति तथा महाभारत में दुर्ग के छः प्रकार का वर्णन हुआ है। धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, गिरिदुर्ग, नरदुर्ग, जलदुर्ग और वनदुर्ग —

धन्वदुर्गं महीदुर्गं गिरिदुर्गं तथैव च।
मनुष्यदुर्गं अब्दुर्गं वनदुर्गं च तानि षट्।।[1]

इन छः दुर्गों में विद्वानों ने नरदुर्ग को सबसे श्रेष्ठ और दुस्तर माना है।[2] किन्तु मत्स्य और अग्नि पुराण में गिरिदुर्ग को उत्तम बताया गया है —

धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च।।
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिवः।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते।।[3]

मनुस्मृति में भी दुर्ग के छः प्रकारों का वर्णन किया गया है और गिरिदुर्ग को राजा के आश्रय हेतु सबसे उत्तम माना गया है—

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्।।
सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्।
एषां हि तु बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते।।[4]

---

1. शांति पर्व 86/5.
2. शांति पर्व 56/35.
3. मत्स्य 217/6-7, अग्नि 222/4-5.
4. मनुस्मृति 7/70-71.

धन्व दुर्ग :— जिस दुर्ग के चारों ओर बालू का घेरा हो उस किले को धन्व दुर्ग कहते हैं। इसके चारों ओर मरुभूमि होती है। इसलिए इसका अपर नाम मरुदुर्ग भी है। गर्मी के दिनों में यह शत्रुओं के लिए दुर्गम होता है।

मही दुर्ग :— समतल भूमि के अन्दर बना हुआ किला मही दुर्ग कहा जाता है।

गिरि दुर्ग :— चारों ओर पर्वतों से घिरे हुए दुर्ग को गिरि दुर्ग कहते हैं। इसके चारों ओर मरुभूमि, जलराशि, खाई, वृक्षादि होते हैं।

नर दुर्ग :— फौजी किलों से आच्छादित दुर्ग को नर दुर्ग या मानव दुर्ग कहा गया है।

जल दुर्ग :— इस दुर्ग के चारों ओर जल का घेरा होने के कारण इसे इसे जल दुर्ग कहते हैं। इसे यंत्रों तथा आयुधों से युक्त होना चाहिए।

वन दुर्ग :— यह चारों तरफ से घने जंगलों से घिरा हुआ होता है। यह दुर्ग घने जंगलों के मध्य बना होता है।

अग्नि पुराण के अनुसार जल, पर्वत, वृक्ष, निर्जन स्थान तथा रेगिस्तान में निर्मित दुर्ग धन-धान्य तथा जल से सम्पन्न होना चाहिए। जिससे विपत्ति के समय वहाँ दीर्घकाल तक व्यतीत किया जा सके —

जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं काले तहं महत्।
औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धन्विनं च षट्।।[1]

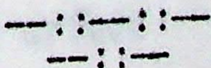
---

1. अग्नि 239/29.

शुक्र नीति में दुर्ग के अष्ट भेद का वर्णन है। ऐरिण, पारिख, परिधि, वन, धन्व, जल, गिरि और सैन्य दुर्ग के भेद से आठ प्रकार के दुर्ग का यहाँ उल्लेख किया गया है।

ऐरिण दुर्ग काँटों तथा पत्थरों से दुर्गम मार्ग युक्त होता है। जिस नगर के चारों ओर गहरी खाई होती थी। उसे पारिख दुर्ग कहा जाता था। जिस दुर्ग के चारों ओर दिवारों का परकोटा बनाया जाता था, उसे परिधि दुर्ग कहते थे। सैन्य दुर्ग सैनिकों से व्याप्त होने के कारण अभेद्य होता था।

इस प्रकार पुराणों तथा विविध ग्रन्थों में दुर्ग अनेक प्रकारों का वर्णन हुआ है। राजा को इनमें से कोई भी दुर्ग की रचना करके उसमें सुखपूर्वक विश्राम करना चाहिए तथा शत्रुओं से अपनी तथा प्रजा की रक्षा करते हुए चिरकाल तक सुखपूर्वक शासन करना चाहिए। पुराणों में मय दानव तथा विश्वकर्मा द्वारा रचित विभिन्न नगरों में इन दुर्गों को घटित होते हुए वर्णित किया गया है।



गुप्तचर

पुराणों में गुप्तचर को राजा के आँख के रूप में वर्णित किया गया है। राजा को प्रजा के कल्याण और राज्य के उचित संचालन के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करनी चाहिए।

वाल्मीकि रामायण में गुप्तचर के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि जो राजा राज्य की देखभाल के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति नहीं करता है, वह राजा नहीं रह सकता, लेकिन जो राजा गुप्तचरों की सहायता से दूर-दूर के कार्यों की देखभाल करते हैं और राज्य के समस्त कार्यों की जानकारी रखते हैं, वे दूरदर्शी राजा चिरकाल तक राज्य का उपभोग करते रहते हैं।[1] रावण अपने गुप्तचर शार्दूल को भेजकर पता करना चाहता है कि शत्रु पर साम, दण्ड और भेदनीति में किसका प्रयोग करना उचित होगा।[2] रावण गुप्तचर को आदेश देता है कि राम के पास जाकर वह उनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करे, क्योंकि गुप्तचर से शत्रु के बल एवं युद्ध योजना की जानकारी प्राप्त करके अल्प प्रयास से ही शत्रुओं को नष्ट किया जा सकता है।[3] राजा को गुप्तचरों से शत्रु के बलाबल की जानकारी लेकर अपने युद्ध नीति का निर्धारण करना चाहिए।

कथासरित्सागर के अनुसार राजा को गुप्तचरों के द्वारा विभिन्न राजकर्मचारियों के चरित्रों का पता लगाना चाहिए। इस प्रकार गुप्तचररूपी आँखों से राजा को राज्य के कार्यों का निरीक्षण करते हुए तथा विरोधियों एवं शत्रुओं को नष्ट करते हुए अपनी सत्ता

---

1. वा.रा. 3/33/5-10. 2. वा.रा. 6/20/2-7.
3. वा.रा. 6/29/18-25.

युद्ध करते रहना चाहिए। राजा को शत्रुओं के बलाबल को गुप्तचर के द्वारा भलीभाँति समझकर युद्धनीति का प्रयोग करते हुए शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए।[1]

महाभारत में उल्लिखित है कि जो राजा शत्रुओं के छिद्र देखने वाला है तथा जिसने शत्रुओं के गुप्त रहस्यों को जानने तथा उनके मंत्रियों को फोड़ने के लिए गुप्तचर लगा रखा है, उसकी सदैव प्रशंसा की जाती है।[2] गुप्तचर की नियुक्ति करना राज्य की रक्षा के आवश्यक साधनों में एक मुख्य साधन माना जाता है।[3] राजा को गुप्तचर नियुक्त करके राज्य पर दृष्टि रखते हुए सदैव दण्डनीति के द्वारा राज्य की रक्षा करनी चाहिए।[4]

राजा सब मंत्रियों, मित्रों, पुत्रों आदि पर भी गुप्तचर नियुक्त करे। नगर, जनपद, व्यायामशाला, बाजार, पर्यटन स्थल, सामाजिक उत्सव, बगीचों, विद्वानों की सभाओं, चौराहों, धर्मशालाओं आदि में गुप्तचर नियुक्त करके शत्रुओं तथा विरोधियों का पता लगाते रहना चाहिए।[5] राजा अनेक गुप्तचरों को भेजकर शत्रुओं का गुप्तभेद लेता रहे और ऐसी चेष्टा करे कि शत्रु उनका भेद न जान सके।[6] राजा के गुप्तचरों से मिलने का सर्वोत्तम समय संध्याकाल बताया गया है। राजा को चाहिए कि गुप्तचरों के द्वारा पता लगाकर राजविद्रोही शत्रुओं को मृत्युदण्ड प्रदान करें।[7]

---

1. कथासरित्सागर 6/8/196-198.
2. शांति पर्व 57/17.
3. शांति पर्व 58/5.
4. शांति पर्व 59/129.
5. शांति पर्व 69/9-12.
6. आश्रमवासिक पर्व 5/15.
7. आश्रमवासिक पर्व 5/33-38.

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि राजा गुप्तचरों के द्वारा अपने अनुचरों के चरित्रों की परीक्षा करके गुणवानों का सत्कार और निर्गुणों का अनुशासन करता रहे। गुप्तचरों द्वारा समस्त राज्य के चारों ओर का निरीक्षण करने के कारण राजा को चारचक्षु कहा गया है। राजा एक गुप्तचर की बात पर विश्वास न करे। उसे गुप्तचरों की बातों पर उनके आपसी सम्बन्ध को समझकर ही विश्वास करना चाहिए। राजा को एक-दूसरे से अपरिचित लोगों को ही गुप्तचरों के रूप में नियुक्त करना चाहिए। गुप्तचर ही राज्य के मूलाधार हैं क्योंकि गुप्तचर ही राजा के नेत्र होते हैं। गुप्तचर रूपी नेत्र के द्वारा राज्य का निरीक्षण करके वह राज्य का सुव्यवस्थित संचालन करता है। अतः राजा को गुप्तचरों की भी यत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए।[1]

गुप्तचर की नियुक्ति :--

गुप्तचरों की नियुक्ति करते समय राजा को उनमें निम्न योग्यताओं की अच्छी तरह से परीक्षा कर लेनी चाहिए और उसमें सफल होने पर ही गुप्तचर के रूप में नियुक्ति देनी चाहिए। जिनकी परीक्षा कर ली गई हो और जो अपने ही राज्य के निवासी हों, वही गुप्तचर बनाने के योग्य होते हैं।[2] गुप्तचर को ज्ञानी, निपुण, निर्लोभी और कष्टसहिष्णु होना चाहिए। जिन्हें जनता न पहचानती हो, जो देखने में सरल हों, जो एक-दूसरे से अपरिचित हों तथा वणिक, मंत्री, ज्योतिषी, वैद्य, सन्यासी आदि के वेश में भ्रमण करने वाले हों, राजा ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे।[3]

---

1. मत्स्य 215/90-95.
2. आश्रमवासिक पर्व 5/15.
3. मत्स्य 215/91-92.

जिन लोगों की अच्छी तरह परीक्षा कर ली गयी हो, जो बुद्धिमान् हों, पर देखने में गूँगे, अंधे, बहरे हों तथा भूख-प्यास और परिश्रम सहने में समर्थ हों, ऐसे लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए।[1]

वामन पुराण में विविध वेशभूषा के गुप्तचरों का उल्लेख हुआ है। कोई सन्यासी, कोई जटाधारी, कोई सिर मुड़ाये हुए, कोई मृगचर्म ओढ़े हुए, कोई एक नेत्र वाला, कोई टेढ़े मुख वाला, कोई भयंकर वेषधारी, कोई टेढ़े शरीर वाला, कोई नाटा, कोई लम्बा, कोई मोटा, कोई दुबला-पतला, कोई गोरा, कोई काला, कोई कुब्जा और कोई कुरूप था।[2]

कौटिल्य के अनुसार कपटवृत्ति छात्र, उदासीन, सन्यासी, गृहस्थ, वणिक, तपस्वी, शास्त्रों के ज्ञाता, साक्षी, और भिक्षुकों को भली प्रकार जाँच-पड़ताल करके गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए। विविध अधिकारियों के लिए रसोइयाँ, मांस बनाने वाला, स्नान कराने वाला, देह दबाने वाला, बिस्तर बिछाने वाला, नाई, शृंगार करने वाला, जल भरने वाला, कुब्जा, ठिगना, गूँगा, बहरा, मूर्ख, अन्धा, नट, नर्तक, गायक, कथाकार आदि को गुप्तचर के रूप में नियुक्त करना चाहिए।[3]

वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि राजा को शत्रु पक्ष के अठारह और अपने पक्ष के पन्द्रह राज कर्मचारियों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा जाँच-पड़ताल करते रहना चाहिए। शत्रु पक्ष के मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तःपुर का अध्यक्ष,

---

1. शांति पर्व 69/8.
2. वामन 20/23-25.
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.

कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, धन खर्च करने वाला, पहरेदारों को काम बताने वाला, नगराध्यक्ष, निर्माणकर्त्ता शिल्पी, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, सीमारक्षक और वनरक्षक — इन अठारह पर गुप्तचरों के द्वारा दृष्टि रखनी चाहिए। इसी प्रकार आदि के तीन को छोड़कर शेष पन्द्रह पर अपने पक्ष में भी गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए। जिससे विरोधियों को हटाया जा सके।[1]

कौटिल्य ने प्रजा, मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वारपाल, अन्तःपुर के अधिकारी, कारागार के अधिकारी, राजकोष के अधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, नगर न्यायालय के प्रमुख, यंत्रालय के मुख्य निरीक्षक, मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, सीमापाल और वनरक्षक के लिए गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए। राजा को शत्रु दुर्ग के लिए वैदेहिक, दुर्ग सीमा पर तापस, जनपद में कृषक और जनपद की सीमा पर प्रव्रजासी गुप्तचरों की नियुक्ति करें। अपने राष्ट्र में नियुक्त शत्रु के गुप्तचरों को पता लगाने के लिए राजा को उसी प्रकार के गुप्तचरों को लगाना चाहिए। मंत्रियों की नियुक्ति के पश्चात् लोगों का मनोभाव जानने के लिए राजा को गुप्तचरों को लगाना चाहिए।[2]

सिद्ध, तपस्वी, सन्यासी, चारण, ज्योतिषी, वैद्य, पागल, गूँगा, बहरा आदि वेशधारण कर विचरण करने वाले गुप्तचरों को प्रजा से सम्बन्धित प्रत्येक वर्ग के लिए नियुक्त करना चाहिए तथा राजा के आन्तरिक विरोधियों का पता लगाकर उसे दूर करना चाहिए। इस प्रकार वह गुप्तचर राजकर्मचारियों के भ्रष्टाचार का पता लगाकर उचित दण्ड दिलवाए। अतएव प्रजा को सुखी रखने के लिए राजा उनके अपराध के अनुसार दण्ड दे अथवा उनको राज्य से निष्कासित कर दे।[3]

---

1. वा.रा. 2/100/36.   2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4.

अग्नि पुराण में भी वर्णित है कि गुप्तचरों को व्यापारी, कृषक, सन्यासी, भिक्षुक आदि के रूप में रहना चाहिए।[1] रामायण में वर्णित है कि रावण कुबेर से युद्ध करने के लिए कैलास पर्वत पर गया तो वहाँ पर स्थित यक्षों ने कुबेर के पास जाकर रावण के अभिप्राय को बताया था। इससे ध्वनित होता है कि यक्षगण भी गुप्तचर की नियुक्ति करके राज्य की स्थिति का अवलोकन करते रहते थे। गुप्तचरों से रावण की सेना की सूचना प्राप्त कर कुबेर ने यक्षों को युद्ध के लिए आदेश दिया।

अतः यक्षराज भी राज्य का निरीक्षण करने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करते थे।

दूत

प्रत्येक राजा दूसरे राजा को संदेश देने के लिए दूत की नियुक्ति करता था। दूतों के द्वारा राजा अपने संदेश दूसरे राजा को प्रेषित करता था तथा उसके जवाब के अनुसार राज्य के हित में उचित नीति का प्रयोग करता था। दूतों के द्वारा शत्रु सेना का पराक्रम जानकर राजा मंत्रियों से मंत्रणा करके राज्य की रक्षा की सही व्यवस्था करता है। राम ने अंगद को दूत के रूप में रावण के पास भेजा था। भगवान् श्रीकृष्ण भी युधिष्ठिर का शांति दूत बनकर धृतराष्ट्र के पास गये थे। महिषासुर ने दुन्दुभि को देवी के पास तथा जलन्धर ने अपने दूत को भगवान् शिव के पास संदेश देकर भेजा था।

---

1. अग्नि 241/12.

दूत का कर्तव्य :—

आचार्य कौटिल्य ने दूत के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा है कि अपने स्वामी का संदेश शत्रु राजा तक पहुँचाना और उसका उत्तर अपने स्वामी को बताना, अवसर आने पर अपने स्वामी के प्रताप का प्रदर्शन करना, मित्रों का अधिकाधिक संग्रह करना, शत्रु पक्ष को तोड़ना, शत्रु के मित्रों में भेद डालना आदि कार्य दूत को करना चाहिए।[1] वाल्मीकि रामायण के अनुसार दूत का मुख्य कर्तव्य अपने स्वामी के संदेश को ज्यों का त्यों शत्रुओं अथवा दूसरे राजा को देना होता है। अतः दूत युक्तवादी होते हैं।[2] दूत को वाक्पटु होना चाहिए। शत्रुओं को अपने स्वामी का संदेश देते समय दूत को बड़ी निपुणतापूर्वक पहले अपने राजा के बल-पराक्रम का वर्णन करना चाहिए, तत्पश्चात् संदेश देना चाहिए।

शिवपुराण में वर्णित है कि चित्ररथ नामक गन्धर्वराज भगवान् शिव को दूत बनकर शंखचूर्ण के पास गया था।[3] महाभारत के अनुसार चित्रसेन उर्वशी को अर्जुन की सेवा में उपस्थित होने का इन्द्र का संदेश देने गया था।[4] रामायण में लिखा है कि रावण के अत्याचार को सुनकर कुबेर ने उन्हें समझाने के लिए दूत भेजा था।[5]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र।
2. वा.रा. 5/52/15.
3. शिव, रूद्र संहिता, युद्ध खण्ड 32 अध्याय, देवीभागवत 9/20.
4. वन पर्व 45/1-15.
5. रामायण 7/13/11-40.

इन्द्र ने गन्धर्वराज धृतराष्ट्र को दूत बनाकर राजा मरुत के पास भेजा था और अपने यज्ञ का पुरोहित बृहस्पति को बनाने का संदेश दिया था।[1] स्कन्द पुराण में कथित है कि रघु ने विश्वामित्र के शिष्ट कौत्स को दक्षिणा देने के लिए धन की पूर्ति हेतु धनाध्यक्ष कुबेर पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया था। उस समय कुबेर ने दूत से संदेश भेजकर अयोध्या में सुवर्ण की अक्षय वर्षा की थी।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि यक्ष और गन्धर्व राजा दूत की नियुक्ति करते थे और उससे अन्य राजा के पास संदेश भेजते थे।

दूत के गुण :--

राजा को दूतों की नियुक्ति करते समय उनके गुणों की अच्छी तरह से परीक्षा कर लेनी चाहिए और उसमें योग्य पाये जाने पर ही उसकी दूत के रूप में नियुक्ति करे। महाभारत में दूत के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि राजा के दूत को कुलीन, शीलवान्, वाचाल, चतुर, प्रियवचन बोलने वाला, स्मरणशक्ति से सम्पन्न तथा संदेश को ज्यों का त्यों कहने में समर्थ होना चाहिए। इन सप्तगुणों से सम्पन्न व्यक्ति को ही राजा दूत के रूप में नियुक्ति प्रदान करे।[3]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार दूत को स्वदेश का निवासी, विद्वान्, कुशल, प्रतिभाशाली, संदेश को दूसरे के समक्ष यथावत कहने वाला तथा सद्-असद्-विवेक से युक्त होना चाहिए --

- -

1. अश्वमेध पर्व 10/2-7.
2. स्कन्द, वैष्णव, अयोध्या, 3-4 अध्याय.
3. शान्ति पर्व 85/28.

कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभावान्।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः।।[1]

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि दूत सत्यवादी, देश-भाषा में प्रवीण, सामर्थ्यशाली, सहिष्णु, वक्ता, देशकाल के विभाग को जानने वाला, देशकाल का जानकार तथा मौके पर नीति का कहने वाला होना चाहिए।[2]

अग्नि पुराण में उल्लिखित है कि जो प्रगल्भ, स्मृतिशील, वाक्चतुर, शस्त्र तथा शास्त्र में निपुण और कर्मठ हो, वही राजा का दूत हो सकता है। प्रकट रूप से रहने वाले राजा के चर को दूत कहा जाता है, जबकि अप्रकट रूप से भ्रमण करने वाला दूत ही गुप्तचर कहलाता है। इस प्रकार दूत के दो भेद हुए। दोनों का कार्य शत्रुओं को नष्ट करने में राजा की सहायता करना होता है।[3]

दूत के लिए दण्ड व्यवस्था :--

पुराण, महाभारत और रामायण में दूत को दिये जाने वाले दण्ड का उल्लेख हुआ है। दूत को अवध्य माना गया है। दूत का वध करना अधर्म कहा जाता था तथा इससे लोकनिन्दा होती थी। दूत अपने स्वामी की बात को ज्यों का त्यों बताने के लिए बाध्य होते थे। इसलिए उसका वध निषिद्ध था। किन्तु दूत को अंग-भंग करना, कोड़े लगाना, सिर मुड़ाना, मस्तक में चिन्ह अंकित करना आदि दण्ड देने का विधान था। दूत अपने

---

1. वा.रा. 2/100/35.   2. मत्स्य 215/12-13.
3. अग्नि 241/7-12.

स्वामी का संदेश सुनाने के लिए स्वतंत्र होता था, अतः उसे प्राण दण्ड न देकर कुरूप करने का विधान वर्णित है।

महाभारत में वर्णित है कि राजा को कभी किसी आपत्ति में भी किसी दूत की हत्या नहीं करनी चाहिए।[1] लेकिन दुष्ट राजा दूतों की भी हत्या कर देते थे। कुबेर ने रावण के अत्याचार को सुनकर, अपने छोटे भाई रावण को समझाने के लिए दूत भेजा था। उसकी बात सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हो गया और दूत की अपने तलवार से हत्या कर दी थी।[2] इसी प्रकार महाभारत में भी पाण्डव के शांति दूत श्रीकृष्ण को दुर्योधन ने बन्दी बनाने की चेष्टा की थी।

रामायण के अनुसार रावण ने राम के दूत हनुमान् को मार डालने का आदेश राक्षसों को दिया था किन्तु विभीषण ने दूत के अवध्य होने के विधान का वर्णन करते हुए कोई अन्य दण्ड देने का आग्रह किया था।

इस प्रकार उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि दूत सदैव अवध्य माना गया है।

---

1. शांतिपर्व 85/26. 2. वा.रा. 7/13/11-40.

द्वारपाल

पुराणों के परिशीलन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि यक्ष एवं गन्धर्व समाज में राजा द्वारपाल की नियुक्ति करता था। राजसभा में राजा तक संदेश पहुँचाने तथा द्वार की रक्षा के लिए द्वारपाल की नियुक्ति का विधान था।

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि द्वारपाल अल्प अक्षरों वाले स्पष्ट तथा सुमधुर भाषा में राजा को संदेश सुनाता था।[1] महाभारत में कहा गया है कि राजा के द्वारपाल को दूत के समस्त लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए। उसे कुलीन, शीलवान्, वाचाल, चतुर, प्रियवादिन, स्मरणशील व संदेश को ज्यों का त्यों कहने वाला होना चाहिए।[2] नारदीय पुराण के अनुसार पुष्कर तीर्थ में कपिल नामक महायक्ष द्वारपाल के रूप में रहता था।[3]

पुरोहित

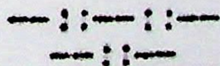
पुराणों में गन्धर्व समाज का वर्णन करते हुए कथित है कि तुम्बुरू नामक गन्धर्व पुरोहित और आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित था। उन्होंने विश्वावसु गन्धर्व की कन्या मदालसा का विवाह सम्पन्न कराया।[4] कुछ स्थान में तुम्बुरू को गन्धर्वराज भी कहा गया है।[5]

---

1. मत्स्य 154/1-2.
2. शान्ति पर्व 85/28-29.
3. नारदीय 2/65/38.
4. मार्कण्डेय 19/62-63.
5. सं. शिवपुराण पृष्ठ 8.

महाभारत में उल्लिखित है कि राजा ऐसे विद्वान् को अपना पुरोहित नियुक्त करे, जो सत्कर्मों की रक्षा करे और राजा को असत् कर्म से दूर रखे।[1] जो विद्वान् और बहुश्रुत हो, धर्मात्मा तथा सलाह देने में कुशल हो, जो धर्मनिष्ठ, श्रद्धेय तथा तपस्वी हो, ऐसे व्यक्ति को ही पुरोहित बनाना चाहिए।[2] कौटिल्य के अनुसार पुरोहित कुलीन, सदाचार सम्पन्न, वेदवेदांग का ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, दण्डनीति-शास्त्र में निपुण और आपदाओं को मंत्रों द्वारा हटाने में कुशल होना चाहिए। इस प्रकार पुरोहित राजा का पूज्य होता है।[3]

अग्नि पुराण में वर्णित है कि पुरोहित को वेदत्रयी और दण्डनीति में कुशल होना चाहिए। उसे अथर्ववेद में कथित विधि से राजा के कल्याण के लिए यज्ञ कराना चाहिए।[4]



---

1. शांति पर्व 72/1.
2. शांति पर्व 73/1-3.
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.
4. अग्नि 239/16-17.

--:: अध्याय : 5 ::--

विविध विद्याएँ

1. संगीत — संगीत की व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषा, भेद और उत्पत्ति, स्वर, स्वर का उद्गम, स्वरमण्डल, ग्रामराग, ताल और गान।

2. वाद्य — वाद्य के चतुर्भेद, तत वाद्य, अवनद्ध वाद्य — उत्पत्ति एवं स्वरूप, घन वाद्य, सुषिर वाद्य।

3. नृत्य — व्युत्पत्ति, परिभाषा, उत्पत्ति, कुछ पारिभाषिक शब्द -- स्थान, चारी, करण, रेचक और पिण्डीबन्ध, आंगिक अभिनय में अंगों की विविध क्रियाएँ।

4. संगीत की प्राचीनता।

5. अन्य विद्याएँ — द्यूत, चित्रकला, अन्तर्धान विद्या, चाक्षुषी विद्या, पद्मिनी विद्या, तामसी विद्या, आन्वीक्षिकी विद्या, मोहिनी विद्या और आयुर्वेद।

--::--::--::--
--::--::--
--::--

विविध विद्याएँ

पुराणों के अनुशीलन से हमें यक्ष, गन्धर्व और अप्सराओं के समाज में प्रचलित विभिन्न विद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। उनके द्वारा संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्रकारी, मूर्तिकला, द्यूत क्रीडा, अन्तर्धान विद्या, माया आदि का प्रयोग पुराणों में वर्णित है। अप्सरा के नृत्य का पुराण में जगह-जगह उल्लेख हुआ है। उन्हें नृत्य विशारदा कहा गया है। गीत और वाद्य में गन्धर्वों को पारंगत बताया गया है। यक्ष और गन्धर्व युद्ध कला, द्यूत क्रीडा, अन्तर्धान विद्या और माया में कुशल थे। इन विद्याओं का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है --

संगीत

प्राचीन काल से संगीत का उल्लेख हमारे प्राचीन वाङ्मय में किया गया है। वैदिक साहित्य में गीत, वाद्य और नृत्य का पर्याप्त संकेत मिलता है। ऋग्वेद में गीत के पर्याय के रूप में गीर, गातु, गाथा, गायत्र, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग हुआ है। शांखायन ब्राह्मण में वर्णित है कि गीत, नृत्य तथा वाद्य -- इन तीनों कलाओं का अभिन्न साहचर्य होता है --

"त्रिवृद्वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादित्रमिति।"[1]

---

1. शांखायन ब्रा. 29/5.

ऋग्वेद की ऋचाएँ स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण स्तोत्र कहलाती हैं। इन स्तोत्रों की विशेषता गान में है -- "प्रगीत मन्त्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रम्।" इन स्तोत्रों का आवृत्ति पूर्वक गान "स्तोम" कहलाता है।

संगीत का अर्थ :--

संगीत शब्द की व्युत्पत्ति "सम्" उपसर्ग पूर्वक गीत शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है -- सम्यक् रूप से गीत गाना। संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लीनाथ ने भी संगीत के इसी अर्थ का समर्थन किया है --

"संगीत शब्देन लोक प्रसिद्धया गीतस्यैव।"

किन्तु मध्यकालीन संगीत-ग्रन्थकारों ने गीत, वाद्य तथा नृत्य -- इन तीनों का संगीत में समावेश कर लिया। इन तीनों के समावेश होने से नाट्य को तौर्यत्रिक कहा गया --

"तौर्यत्रिकं नृत्यगीत वाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्।"[1]

वाद्यबोधक "तूर्य" शब्द से तौर्यत्रिक शब्द बना है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वाद्यों के साहचर्य के कारण ही नाट्य को तौर्यत्रिक कहा जाता है।

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में संगीत के लिए गान्धर्व शब्द का प्रयोग हुआ है। गान्धर्व की व्युत्पत्ति को वर्णित करते हुए आचार्य भरत ने लिखा है कि गन्धर्वों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण यह "गान्धर्व" कहलाता है --

- -

1. अग्नि 2/260/76, अमरकोष 7/10.

"गन्धर्वाणामिदं यस्मात्तस्माद गान्धर्वमुच्यते।।"[1]

नारदीय पुराण में भी गान्धर्व शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "गा" का अर्थ गेय, "ध" का अर्थ कलापूर्वक वाद्य बजाना तथा "र्व" का अर्थ वाद्य सामग्री है, यही गान्धर्व शब्द का लक्ष्यार्थ है —

गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेति कारूवादनम्।
वेति वाद्यस्य संज्ञेयं गान्धर्वस्य प्ररोचनम्।।[2]

नाट्य शास्त्र में गान्धर्व के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अनेक वाद्यों के आश्रयभूत वाणादि वाद्य स्वर, ताल तथा पदों का आश्रय लेकर गान्धर्व कहलाता है —

यत्तु तन्त्रीकृतं प्रोक्तं नानातोद्य समाश्रयम्।
गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयं स्वर ताल पदाश्रयम्।।[3]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि गान्धर्व में कंठ और वाद्य संगीत का विधिवत् संयोग होता है, किन्तु इसमें गान का मुख्य रूप से तथा वाद्य का आनुषंगिक रूप से समावेश होता है। संगीत का गान पदगत भावों के अनुकूल होने पर ही रस-सिद्धि में सहायक होता है। संगीत में भावाभिव्यक्ति का माध्यम स्वर, शब्द तथा अर्थ तीनों होते हैं। इस प्रकार संगीत और काव्य का आपस में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है।

---

1. नाट्यशास्त्र 28/9.   2. नारदीय 1/50/58.
3. नाट्यशास्त्र 28/8.

संगीत की परिभाषा

संगीत रत्नाकर में संगीत को परिभाषित किया गया है --

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।"

अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य -- तीनों को सम्मिलित रूप से संगीत कहा जाता है।[1] इस परिभाषा के अनुसार संगीत गीत, वाद्य तथा नृत्य के अभिन्न साहचर्य का बोधक है। नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने संगीत को नाट्य के प्रमुख अंगों में एक माना है। वादन और नर्तन उनके अनुगामी होते हैं।[2] अमरकोश में भी वाद्य, गीत और नृत्य के साहचर्य के कारण नाट्य के लिए तौर्यत्रिक शब्द का प्रयोग किया है।[3] कौटिल्य अर्थशास्त्र में गीत, वाद्य, नृत्य तथा नाट्य को सहचरी कलाओं के रूप में वर्णित किया गया है।[4]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वाद्य तथा नृत्य को गीत का अनुवर्ती कहा गया है और नृत्य के लिए गीत तथा वाद्य का ज्ञान आवश्यक होता है।[5]

संगीत के भेद :--

संगीत सदैव दो धाराओं में प्रवाहित होता रहा है। मार्ग और देशी संगीत। मार्गी संगीत नियमों से आबद्ध होता है। इसमें कला की परिष्कृतता पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जबकि देशी

---

1. संगीत रत्नाकर 1/21.
2. नाट्यशास्त्र 4/260-265.
3. अमरकोश, नाट्यवर्ग
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/27.
5. विष्णुधर्मोत्तर 3/35.

संगीत सहज संस्कारों से उत्पन्न होता है। इसमें मार्ग की अपेक्षा स्वच्छन्द रूप से अभिव्यक्ति होती है। देशी संगीत में लोकाभिरूचि नियामक तत्त्व होता है। देशी संगीत परिष्कृत होकर मार्गी संगीत कहलाने लगता है। मतंग ने देशी संगीत को दो प्रकार का कहा है -- निबद्ध तथा अनिबद्ध। निबद्ध देशी संगीत आलापादि नियमों से बँधा हुआ होता है, जबकि अनिबद्ध देशी संगीत में अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्दता होती है --

"निबद्धश्चानिबद्धश्चमार्गो यं द्विविधो मतः।
आलापादि निबन्धो यः स च मार्गो प्रकीर्तितः।।"[1]

इन्हें ही क्रमशः शास्त्रीय तथा सरल संगीत कहा जाता है।

संगीत की उत्पत्ति

पुराविदों के अनुसार संगीत का उदभव ब्रह्माजी से हुआ है। भारतीय परम्परा में भगवान् शिव को नृत्य तथा सरस्वती देवी को गीत तथा वाद्य का आदिस्रोत कहा गया है। आचार्य भरत तथा दत्तिल ने स्वयम्भू ब्रह्मा को गान्धर्व का आदि प्रवचनकार बताया है।[2] नृत्य कला का ताण्डव तथा लास्य रूप भगवान् शिव और पार्वती द्वारा प्रवर्तित है। भगवान् महेश्वर से यह नृत्य तण्डु मुनि को तथा तण्डु से भरत मुनि को प्राप्त हुआ था। तण्डु मुनि से सम्बद्ध होने के कारण ही इसका नाम "ताण्डव" पड़ा।

---

1. बृहद्देशी 14.
2. नाट्यशास्त्र 1/16-18, दत्तिलम् 2.

महाभारत में वर्णित है कि कल्प के अन्त में लुप्त हुए वेदों और इतिहास को दूसरे कल्प में स्वयम्भू ब्रह्मा के आदेश से महर्षियों ने तपस्या द्वारा प्राप्त किया था। उसी समय नारद को गान्धर्ववेद प्राप्त हुआ।[1]

अन्य मत के अनुसार संगीत की उत्पत्ति पशु-पक्षियों की ध्वनियों से हुई। बृहद्देशी में मतंग ने कोहल के नाम से श्लोक उद्धृत किया है और विभिन्न पक्षियों की ध्वनि में षड्जादि स्वरों का उद्भव दर्शाया है --

षड्जं वदति मयूरः ऋषभं चातको वदेत्।
अजा वदति गांधारं क्रौञ्चोवदति मध्यमम्।।
पुष्प साधारणे काले कोकिलः पंचमो वदेत्।
प्रावृट्काले तु सम्प्राप्ते धैवतं दर्दुरो वदेत्।।
सर्वदा च तथा देवि निषादं वदेत् गजः।।[2]

नारदीय शिक्षा में किंचित् अन्तर के साथ इसका उल्लेख हुआ है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित है कि मृदंग वाद्य की ध्वनि की परिकल्पना वर्षा के जल बिन्दुओं से पत्तों पर हुए आघात के शब्द से हुई होगी।[3]

इसके अतिरिक्त ऐसी भी कल्पना की जा सकती है कि आदिमानव को प्रकृति से संगीत की प्रेरणा मिली हो। संगीत लौकिक

- -

1. शांतिपर्व 210/19-21.
2. बृहद्देशी पृष्ठ 12-13, नारदीय शिक्षा 1/5/4-5, पाणिनीय शिक्षा 8-9.
3. नाट्यशास्त्र 33/10.

व्युत्पत्ति का द्योतक भी माना जा सकता है। आचार्य भरत ने भी नाट्यशास्त्र के उपसंहार में नाट्य और गान्धर्व को लोकाभिरूचि पर आधारित होने का संकेत दिया है --

एवं नाट्यप्रयोगे बहु बहु विहितं कर्मशास्त्र प्रणीतं।
न प्रोक्तं यच्च लोकादनुकृति करणं तच्च कार्यविधिज्ञैः।।[1]

उपर्युक्त विवरण से यह तथ्य निकलता है कि संगीत का उदभव मानव जाति की सृष्टि के साथ हुआ। परिष्कृत संगीत, परिपक्व मस्तिष्क तथा विकसित सभ्यता का द्योतक है।

संगीत में गीत, वाद्य तथा नृत्य का समावेश होने पर भी गीत सदैव वाद्य तथा नृत्य से अग्रसर रहा है और वाद्य तथा नृत्य गीत के अनुगामी रहे हैं। गीत की प्रधानता के कारण ही इसका नामकरण गीत से सम्बद्ध करके "संगीत" रखा गया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार वाद्यों का स्वरूप एवं विकास गीत की आवश्यकताओं से नियंत्रित रहा है।[2]

स्वरों की उत्पत्ति स्थान एवं नामकरण :--

सप्त स्वरों की उत्पत्ति स्थान का निम्न विवरण दिया गया है -- षड्ज स्वर कण्ठ से, ऋषभ शिर से, गान्धार नासिका से, मध्यम स्वर उर से, पंचम स्वर उर, शिर तथा कंठ से, धैवत स्वर ललाट से तथा निषाद स्वर शरीर की संधियों से उत्पन्न होता है। पाणिनीय शिक्षा में भी उच्चारण के अष्ट स्थानों का उल्लेख हुआ है -- उर, कण्ठ, शिर (मूर्धा), जिह्वामूल, दन्त, नासिका ओष्ठ और तालु।[3]

---

1. नाट्यशास्त्र 36/79.
2. नाट्यशास्त्र 30/10-33-35.
3. पाणिनीय शिक्षा 13.

स्वरों के नामकरण के सम्बन्ध में वर्णित है कि नासिका, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दन्त -- इन छः स्थानों से उद्भूत होने के कारण "षड्ज" संज्ञा दिया गया। बैल ऋषभ के समान नाद करने के कारण "ऋषभ" नाम पड़ा। "गान्धार" संज्ञा नासिका के गन्धवह होने के कारण रखा गया। उर जैसे मध्यवर्ती स्थान से उत्पन्न होने के कारण "मध्यम" संज्ञा हुई। पाँच स्थान नाभि, उर, हृदय, कण्ठ तथा शिर से सम्मिलित रूप से उच्चरित होने के कारण "पंचम" नाम पड़ा, धैवत एवं निषाद के अतिरिक्त सभी स्वर पाँच स्थानों से उत्पन्न होते हैं।[1] "धैवत" संज्ञा अन्य सभी स्वरों का अतिसंधान करने के कारण हुई तथा अन्य सभी स्वरों में विलीन होने के कारण "निषाद" नाम पड़ा। इस प्रकार नारदीय शिक्षा में सभी स्वरों के नामकरण को स्पष्ट किया गया है।

वायु पुराण में निषाद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वर्णित है कि स्वयम्भू द्वारा उत्पन्न निषाद की तीव्र तपस्या को देखकर ब्रह्मा के द्वारा निषीदत (बैठ जाओ) कहे जाने से निषाद संज्ञा पड़ी।[2]

स्वरों के अधिष्ठाता देवताओं का उल्लेख करते हुए नारदीय शिक्षा में लिखा है कि षड्ज का देवता ब्रह्मा, ऋषभ की अग्नि, गान्धार की गौ और पंचम स्वर की चन्द्रमा है।[3]

नारदीय शिक्षा में साम स्वरों का शारीर में स्थान का उल्लेख है --

---

1. नारदीय शिक्षा 1/5/6-12.
2. वायु 21/
3. नारदीयशिक्षा 1/5/16-18.

क्रुष्टस्य मूर्धनि स्थानं ललाटे प्रथमः स्वरः।
भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयोः।।
कण्ठस्थानं चतुर्थस्य मन्द्रस्य रसनोच्यते।
अति स्वारस्य नीचस्य हृदि स्थानं विधीयते।[1]

अर्थात् क्रुष्ट स्वर की स्थिति मूर्धा पर, प्रथम की ललाट पर, द्वितीय की भ्रुकुटियों के मध्य में, तृतीय की कर्णों के मध्य में, चतुर्थ की कण्ठ में, मन्द्र की जिह्वा में तथा अतिस्वार की स्थिति हृदय में है।

नारदीय पुराण में साम संगीत के स्वरों के उपजीव्य प्राणियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि क्रुष्ट से देवता, प्रथम से मानुष, द्वितीय से पशु, तृतीय स्वर से गन्धर्व और अप्सराएँ, चतुर्थ से पितर, मन्द्र से पिशाच, असुर और राक्षस तथा अतिस्वार से जगत् के स्थावर जंगम जीवित रहते हैं। इस प्रकार सामिक स्वर से सब प्राणी जीते हैं।[2]

नाट्यशास्त्र में स्वरों के अधिष्ठान को वर्णित करते हुए उल्लिखित है --

द्व्यधिष्ठानाः स्वराः वैणा शारीरकास्तथा।[3]

अर्थात् शरीर और वीणादि वाद्य स्वर के दो आश्रय स्थान हैं।

---

1. नारदीय शिक्षा 1/7/6-8, नारदीय 1/50/101-102.
2. नारदीय 1/50/106-108.
3. नाट्यशास्त्र 28/12.

स्वर

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में संगीत को स्वर, ताल तथा पदों पर आश्रित बताया है --

"गान्धर्वमिति विज्ञेयं स्वरतालपदाश्रयम्।"

पतंजलि के अनुसार जो स्वयं विराजित होते हैं, वे स्वर कहलाते हैं -- "स्वयं राजन्ते इति स्वराः।" स्वर के अन्तर्गत स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, स्थान, साधारण, अठारह जातियाँ, चार वर्ण, अलंकार तथा गीति का समावेश है।[1] नारदीय शिक्षा में स्वर के त्रिविध भेद का उल्लेख हुआ है -- आर्चिक, गाथिक तथा सामिक। ये क्रमशः एक, दो तथा तीन स्वरों से निर्मित होते हैं। साम के आर्चिक संहिता में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों का व्यवहार होता है। साम के सप्त स्वरों की उत्पत्ति इन्हीं तीन स्वरों से मानी जाती है। नारदीय, माण्डुकी तथा पाणिनी शिक्षा में षड्जादि सप्त स्वरों की उत्पत्ति उदात्तादि स्वरों से बतायी गयी है --

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्ते ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्ज मध्यम पंचमाः।।[2]

पाणिनीयव्याकरण में उदात्तादि स्वरों को परिभाषित करते हुए लिखा है -- "उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः समाहारः स्वरितः।" नारदीय शिक्षा में भी स्वरित की उत्पत्ति उच्च तथा नीच स्वर से बतायी गई है।[3] नाट्यशास्त्र में उच्च स्वर के सम्बन्ध में लिखा है --

---

1. नाट्यशास्त्र 28/13-18.
2. नारदीय शिक्षा 1/8/8, पाणिनीय शिक्षा 12.
3. नारदीय शिक्षा 1/8/6-7.

उच्चो नाम शिरः स्थान गतस्तारः स्वरः।[1]

काल की दृष्टि से भी स्वर के तीन भेद वर्णित हैं -- ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व एक मात्रिक, दीर्घ द्विमात्रिक तथा प्लुत त्रिमात्रिक स्वर हैं। व्यंजन को अर्द्धमात्रिक माना गया है। नीलकण्ठ पक्षी ह्रस्व, कौआ दीर्घ और मयूर प्लुत स्वर में बोलता है। नेवला अर्द्धमात्रिक स्वर में उच्चारण करता है।[2]

साम संगीत के विकास के साथ सप्त स्वरों का क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय आदि नामकरण हुआ। गान्धर्व के षड्ज, ऋषभ आदि स्वर इन्हीं के परवर्ती रूप हैं।

स्वरों का उद्गम :--

नारदीय शिक्षा में गान्धर्व के षड्जादि स्वरों की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है -- उदात्त स्वर से गान्धर्व के निषाद और गान्धर्व स्वर उत्पन्न हुए हैं, अनुदात्त से ऋषभ और धैवत स्वर उत्पन्न हुए तथा स्वरित से षड्ज, मध्यम और पंचम स्वर की उत्पत्ति हुई।[3] सामगान में प्रयुक्त सप्त स्वर -- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट और अतिस्वार्य हैं। ये सप्त स्वर ही कालान्तर में संगीत के सप्त स्वर हुए। इनके नाम एवं क्रम निम्न हैं -- षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद --

षड्जऋषभौ च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा।
धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादकः।।[4]

---

1. नाट्यशास्त्र पृष्ठ 459. 2. याज्ञवल्क्य शिक्षा 1/16-18.
3. नारदीय शिक्षा 1/8/8.
4. ब्रह्माण्ड 2/61, नाट्यशास्त्र 28/21, वायु 86/37.

साम संगीत में स्वरों का क्रम इस प्रकार है -- क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य। किन्तु सामविधान ब्राह्मण में स्वरों के नाम व क्रम निम्नानुसार हैं -- क्रुष्टतम, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा अन्त्य।[1]

नारदीय शिक्षा में साम तथा गान्धर्व के स्वरों में सामंजस्य स्थापित किया गया है --

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्मृतः।
यो द्वितीयः स गान्धारः तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः।।
चतुर्थ षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः।।

अर्थात् जो साम गायकों का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्त स्वर हैं, वे गान्धर्व के क्रमशः मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, धैवत, निषाद और पंचम स्वर के पर्याय स्वरूप हैं।[2]

सायण के अनुसार गान्धर्व संगीत के निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ तथा षड्ज साम संगीत के क्रमशः क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य स्वर हैं। किन्तु यह क्रम शिक्षा ग्रन्थों के उपर्युक्त साक्ष्य से मेल नहीं रखता है।

पाणिनीय शिक्षा में स्वर की उत्पत्ति का निम्न प्रकार से उल्लेख हुआ है -- "प्राण वायु हृदय-प्रदेश में संचरण करता हुआ मन्द्र स्वर को, कण्ठ में परिभ्रमण करता हुआ मध्यम स्वर को तथा शिरः प्रदेश में परिभ्रमण करता हुआ तार स्वर को उत्पन्न करता है।

- -

1. सामविधान ब्रा. 1/3.   2. नारदीयशिक्षा 1/5/1-2.

इस प्रकार वायु विविध स्थान पर संचरण करते हुए विभिन्न स्वरों को उत्पन्न करता है।[1] माण्डुकी शिक्षा के अनुसार स्वरों की स्थिति गात्रवीणा पर इस प्रकार वर्णित है --

कृष्ट का स्थान अंगुष्ठ के उपरी स्थान पर है, अंगुष्ठ के मध्यम पर्व पर मध्यम स्वर का स्थान है, तर्जनी पर गान्धार का, मध्यमा पर पंचम का, अनामिका पर षड्ज का, कनिष्ठिका पर धैवत का तथा कनिष्ठा के मूल में निषाद का स्थान है। इसके अनुसार स्वरों का क्रम कृष्ट, मध्यम, गान्धार, पंचम, षड्ज, धैवत तथा निषाद है।

अङ्गुष्ठोत्तमे कृष्टं स्याद् अंगुष्ठे मध्यमः।
प्रदेशिन्यान्तु गान्धारो मध्यमायां तु पंचमः।।
अनामिकायां षड्जस्तु कनिष्ठायां तु धैवतः।
तस्याधस्तात्तु योऽन्यस्तस्यान्निषाद इति तं विदुः।।

इसी प्रकार नारदीय शिक्षा में शारीरी वीणा में स्वरों की स्थिति का उल्लेख हुआ है।[2]

स्वरमण्डल
=========

नारदीय शिक्षा में स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान आदि का विवेचन किया गया है। स्वरमण्डल के अन्तर्गत सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएँ तथा उन्चास तानों का समावेश है --

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
तानाः एकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमण्डलम्।।[3]

- -

1. पाणिनीयशिक्षा 7-8. 2. नारदीयशिक्षा 1/7/3-5.
3. नारदीय शिक्षा 1/2/3-4. ब्रह्माण्ड 2/29. वायु 86/36.

त्रिविध ग्रामों का उल्लेख करते हुए नारदीय शिक्षा में वर्णित है कि षड्ज, मध्यम तथा गान्धार ग्रामों में से गान्धार ग्राम का अब प्रचलन नहीं है --

"स्वर्गान्नान्यत्र गान्धारो नारदस्यमतं यथा।"[1]

स्वर तथा राग के संयोजन के लिए "ग्रामराग" संज्ञा दिया गया है।[2] इन ग्रामरागों में प्रयुक्त उन्चास तानों का उल्लेख निम्नानुसार है -- मध्यम ग्राम में 20 तानें हैं, षड्ज ग्राम में 14 तानें तथा गान्धार ग्राम में 15 तानें हैं।[3] मूर्च्छनाओं की कुल संख्या 21 बतायी गयी है। इनमें से सात मूर्च्छनाएँ देवताओं से, सात पितरों से तथा शेष सात मूर्च्छनाएँ ऋषियों से सम्बन्धित हैं। मध्यम ग्राम की मूर्च्छना का सम्बन्ध यक्षगण से, षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाओं का ऋषियों तथा लौकिक गायकों से सम्बन्ध होता है तथा गान्धार ग्राम की मूर्च्छनाओं का प्रयोग गन्धर्वों के द्वारा होता है। इन मूर्च्छनाओं के नाम निम्न हैं -- नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा और बला ये सात देव मूर्च्छनाएँ हैं। आप्यायिनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री और बार्हति -- ये सात पितृमूर्च्छनाएँ हैं। इसी प्रकार उत्तरमन्द्रा, अभिरूद्गता, अश्वक्रान्ता, सौवीरा, हृष्यका, उत्तरायता और रजनी -- ये सात ऋषि मूर्च्छनाएँ हैं।[4]

गान्धर्व के सप्त स्वर देव, ऋषि, पितर आदि के लिए उपजीव्य हैं --

---

1. नारदीय शिक्षा 1/2/5-6. 2. नारदीयशिक्षा 1/2/7.
3. नारदीयशिक्षा 1/2/8. 4. नारदीय पु. 1/50/35-41.

षड्ज प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षभः।
पितृन् प्रीणाति गान्धारो गन्धर्वान् मध्यमः स्वरः।।
देवान् पितृन् ऋषींश्चैव स्वरः प्रीणाति पंचमः।।[1]

नारदीय शिक्षा के अनुसार षड्ज का वर्ण पदम पत्र के समान, ऋषभ का शुक की भाँति पिंजर, गान्धार का कनक वर्ण, मध्यम का कुन्द के समान श्वेत, पंचम का कृष्ण, धैवत का पीत तथा निषाद का विविध वर्ण मिश्रित है।[2] नारदीय शिक्षा में स्वरों की जाति का भी उल्लेख मिलता है। षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वर की जाति ब्राह्मण, ऋषभ तथा धैवत की जाति क्षत्रिय एवं गांधार तथा निषाद की अर्ध-वैश्य तथा अर्ध-शूद्र है।[3]

नारदीय पुराण में उल्लिखित है कि षड्ज स्वर का गान अग्नि, ऋषभ का गान ब्रह्मा, गान्धार का गान सोम, मध्यम स्वर का गान विष्णु, पंचम स्वर का गान नारद तथा धैवत और निषाद स्वर का गान तुम्बुरू करते हैं।[4]

ग्रामराग

ग्रामरागों के अन्तर्गत सात रागों का उल्लेख है — षाडव, पंचम, मध्यम, षड्ज ग्राम, साधारित, कैशिक मध्यम तथा कैशिक। षाडव राग मध्यम ग्रामोत्पन्न है। इसमें गान्धार स्वर वर्ज्य है। मतंग के अनुसार षद रागों में मुख्य होने के कारण इसे षाडव ग्रामराग कहा

---

1. नारदीयशिक्षा 1/2/15-16, नारदीय पु. 1/50/41-43.
2. नारदीयशिक्षा 1/4/1-2. 3. नारदीयशिक्षा 1/4/3-5.
4. नारदीय पु. 1/50/71-73.

गया।[1] पंचम राग में पाँच स्वरों का प्रयोग होता है। मतंग के अनुसार यह शुद्ध ग्राम राग है। यह मध्यम ग्राम से उद्भूत है।[2]

मध्यम ग्रामराग में गान्धार की अधिकता, निषाद की बारम्बारता तथा धैवत की दुर्बलता होती है। षड्ज राग में निषाद का अल्प स्पर्श, गान्धार की प्रमुखता तथा धैवत का कम्पन होता है। साधारित ग्रामराग में अन्तर "ग" तथा काकलि "नि" का प्रयोग होता है। यह षड्ज ग्राम से उत्पन्न पूर्ण एवं शुद्ध राग है। इसमें "ग" तथा "नि" स्वरों का अल्प प्रयोग होता है।[3]

कैशिक-मध्यम राग में मध्यम के न्यास स्वर का वैशिष्ट्य होता है। इस राग का सम्बन्ध षड्ज तथा मध्यम -- दोनों ग्रामों से है। मध्यम स्वर पर न्यास, निषाद तथा गान्धार का अल्पत्व एवं काकलि निषाद का इसमें प्रयोग होता है। कैशिक राग का उद्भव मध्यम ग्राम से हुआ और कश्यप जी इसके उद्भावक हैं।

ताल

संगीत रत्नाकर के अनुसार ताल शब्द की व्युत्पत्ति तल धातु से हुई है। जिससे संकेत मिलता है कि यह गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का अधिष्ठान है।[4] ताल का कार्य कालावधि को सीमाबद्ध करना

- -

1. बृहद्देशी पृष्ठ 85. 2. बृहद्देशी पृष्ठ 87.
3. बृहद्देशी पृष्ठ 86.
4. संगीत रत्नाकर, तालाध्याय 2.

है। भरत के अनुसार -- तालस्य तु प्रमाणं वै विज्ञेयं तालयोक्तृभिः।[1] कला, पात तथा लय ताल के विशिष्ट अंग हैं। कला का निर्माण मात्राओं पर निर्भर होता है।[2] मात्राओं की गणना ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत अक्षरों से सम्बद्ध है। नाट्यशास्त्र के अनुसार ह्रस्व स्वर एक मात्रिक, दीर्घ स्वर द्विमात्रिक तथा प्लुत स्वर त्रिमात्रिक है।[3] समय की दृष्टि से पाँच निमेष का समय कला अथवा मात्रा कहा जाता है।[4] समस्त गीत तथा वाद्यवादन में प्रचलित एक-सा कालमान ही लय है।[5] अमरकोश के अनुसार ताल का अभिप्राय काल तथा क्रियाओं के परिमाण से है -- तालः कालक्रियामानम्।[6]

लय कालमान के अनुसार त्रिविध है -- द्रुत, मध्य तथा विलम्बित।[7] द्रुत लय में गान अथवा वादन भावों को तरल बनाता है वहीं विलम्बित लय संगीत में गम्भीर वातावरण उत्पन्न कर देता है। मध्य लय की कला का विस्तार तीन प्रणालियों -- चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण से किया जाता है। चित्र मार्ग में एक कला में एक साथ दो मात्राओं का गान किया जाता है। वार्तिक में चार मात्राओं का समवेत गान होता है। दक्षिण में एक कला में अष्ट मात्राओं का समवेत गान किया जाता है।[8] नाट्यशास्त्र के अनुसार प्राचीन काल में निम्न ताल प्रचलित थे -- चंचत्पुट, चापपुट, षट्पितापुत्रक अथवा पंचपाणि, सम्पर्कष्टाक तथा उद्घट्ट।[9]

---

1. नाट्यशास्त्र 31/1.
2. नाट्यशास्त्र 31/3.
3. नाट्यशास्त्र 17/116.
4. नाट्यशास्त्र 31/2.
5. दत्तिल 110.
6. अमरकोश 7/9, हलायुधकोश 1/94.
7. ना.शा. 31/4.
8. नाट्यशास्त्र 31/5-6.
9. नाट्यशास्त्र 31/9-24.

भरत के अनुसार ताल वाद्यों का समावेश घन वाद्य के अन्तर्गत वर्णित है। इन वाद्यों में कांस्य, करताल, झांझ, मंजरी आदि धातु वाद्य आते हैं।[1]

गान
=====

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने गान को परिभाषित करते हुए लिखा है —

पूर्ण स्वरं वाद्य विचित्र वर्णं
त्रिस्थानशोभित्रियतं त्रिमार्गम्।
रक्तं समं लक्षणमलङ्कृतञ्च
सुखप्रयुक्तं मधुरञ्च गानम्।।[2]

अर्थात् जिसमें सभी स्वर समाविष्ट रहें, वर्णों को वाद्यों की संगति से सुन्दर बनाया गया हो, तीन स्थानों से सम्बद्ध हो, तीन यति और तीन मार्गों से युक्त हो, रंजन प्रदान करता हो, जो सम और ललित गुण वाला हो, अलंकारों से युक्त हो, जिसका सुखपूर्वक प्रयोग किया जा सके और जो मधुर हो उसे गान कहा जाता है।

---

1. अमरकोश 204, "कांस्यतालादिकं घनम्।"
2. नाट्यशास्त्र 32/492.

गायक के गुण :—

एक गायक में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए — उसकी अवस्था युवा हो, वह स्नेह युक्त हो और उसका कंठ मधुर स्वर से सम्पन्न हो, उसे लय, ताल, कला-विभाग एवं उसके प्रमाण तथा योजना का पूर्ण ज्ञान हो।[1] इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही एक श्रेष्ठ गायक माना जाता है।

गायिका के गुण :—

जो स्त्री रूप, गुण एवं कांति से सम्पन्न हो, सत्व और माधुर्य गुण युक्त हो, जिसका कण्ठ स्वर कोमल, मधुर, स्नेहपूर्ण, गूंजने वाला, समता और रंजनात्मकता से सम्पन्न हो, जो सुन्दर ढंग से गमकों का ध्यान रखती हो, गीत, ताल और लय के ज्ञान में कुशल हो, जो वाद्य के अनुसार करणों को व्यवस्थित कर सकती हो, और जो युवावस्था से युक्त (श्यामा) हो, वह स्त्री गायिका के रूप में उपयुक्त होती है।[2]

वाद्य

=====

भरतकालीन वाद्यवृन्द के लिए कुतम संज्ञा थी। नाट्यशास्त्र में आतोद्य (वाद्य) के चार प्रकार का वर्णन हुआ है —

ततञ्चैवावनद्धञ्च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधन्तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।[3]

- -

1. नाट्यशास्त्र 32/496.   2. नाट्यशास्त्र 32/497.

3. नाट्यशास्त्र 28/1.

तत, अवनद्ध, घन और सुषिर -- ये चार वाद्य के भेद हैं।

अमरकोष में भी इसी प्रकार का वर्णन किया गया है --

ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम्।
वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्।।

वाद्य को वादित्र, आतोद्य, कुतप आदि नाम से भी पुकारा जाता है।

<u>तत् वाद्य :--</u>

इसके अन्तर्गत वीणादितार युक्त वाद्यों का समावेश किया गया है -- "ततं तन्त्री गतंज्ञेयम्।"[1] इसका उपयोग स्वर के लिए होता है। चित्रा वीणा में सात तार होते हैं तथा इसका वादन अंगुलियों से किया जाता था। विपंची वीणा में नौ तार होते हैं तथा इसका कोण या मिजराब से वादन किया जाता था। आचार्य अभिनवगुप्त ने इक्कीस तारों की वीणा का उल्लेख किया है। आचार्य भरत के अनुसार तत के प्रयोग में गीत गायकों के साथ विपंची और बाँसुरी वादकों को एक साथ बैठना पड़ता है।

भरत ने तत वाद्यों में विपंची और चित्रा को प्रमुख माना है तथा कच्छपी एवं घोषका उनकी अंगभूत हैं --

विपञ्चीचैव चित्रा च दारवीष्वंग संज्ञिते।
कच्छपी घोषकादीनि प्रत्यंगानि तथैव च।।[2]

संगीत रत्नाकर के अनुसार घोषका नामक वीणा एक तंत्री होती थी। अमरकोश के अनुसार वीणा, वल्लकी तथा विपंची

---

1. नाट्यशास्त्र 28/2. 2. नाट्यशास्त्र 33/15.

वीणा के ही विभिन्न स्वरूप हैं। सप्ततंत्री वीणा को परिवादिनी कहा जाता था। मत्तकोकिला नामक वीणा इक्कीस तंत्रियों से युक्त होती थी। इसमें मन्द्र, मध्य तथा तार सप्तक उपलब्ध होते थे।[1]

सायण के अनुसार वाण शततंत्री वीणा है --

"वाणं शत संख्याभिस्तंत्रीभिर्युक्तं वीणा विशेषः।"

वीणावादक के गुण :--

आचार्य भरत के अनुसार वीणावादक को पाणि, लय, यति आदि तालांगों का विशेषज्ञ तथा अंगुलियों के प्रयोग में कुशल होना चाहिए। उसमें करणों को निकालने की क्षमता हो। वह रियाज के लिए सदैव तत्पर हो तथा उसे गायन का यथोचित ज्ञान होना चाहिए।[2]

अवनद्ध वाद्य :--

पीट या आघात कर बजाये जाने वाले पुष्कर (मृदंग) आदि वाद्य अवनद्ध वाद्य कहे गये हैं। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार अवनद्ध वाद्यों की उपयोगिता ताल के लिए होती है। अवनद्ध वाद्यों के प्रयोग में मृदंग, पणव तथा दर्दुर जैसे वादकों को एक साथ बैठना पड़ता है --

मार्दङ्गिकः पाणविकस्तथा दार्दुरिको बुधैः।
अवनद्ध विधाविषु कृतः समुदाहृतः।।[3]

---

1. संगीत रत्नाकर, पृष्ठ 248. 2. नाट्यशास्त्र 32/46-62.
3. नाट्यशास्त्र 28/5.

आचार्य अभिनव गुप्त ने लिखा है कि पणव को तारों से बाँधा जाता था -- "पणवोऽन्तस्तंत्रीको हुंकारः।" दर्दुर को इन्होंने महाघंटाकार कहा है। इससे प्रतीत होता है कि दर्दुर वाद्य का मुख गोल घड़े के समान तथा वादन के समय गूँजने वाला रहा होगा।

आचार्य भरत के अनुसार स्वाति ने पत्तों पर गिरते हुए जल बिन्दुओं के कलरव को सुनकर धीर-गम्भीर मृदंग आदि भाण्ड वाद्यों की कल्पना की और मृत्तिका से पुष्कर, पणव तथा दर्दुर जैसे वाद्यों का विश्वकर्मा से निर्माण करवाया। देवताओं की दुन्दुभि को देखकर मुरज, आलिंग्य, ऊर्ध्वक तथा आंकिक नामक चर्म वाद्यों की रचना हुई।[1]

अवनद्ध वाद्य की उत्पत्ति :--

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने अवनद्ध वाद्य की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए लिखा है कि विश्वकर्मा की सहायता से स्वाति मुनि ने मृदंग, पुष्कर, पणव और दर्दुर वाद्यों का निर्माण किया। फिर देवताओं के दुन्दुभि को देखकर उसने मुरज {पखावज} आलिंग्यक, ऊर्ध्वक और आंकिक जैसे अवनद्ध वाद्यों का निर्माण किया। मुनि ने मृदंग, दर्दुर और पणव वाद्य को चमड़े से मढ़कर रस्सी से बाँध दिया। तदनन्तर झल्लरी, पटह जैसे वाद्यों को लकड़ी तथा लोहे से बनाकर उन्हें चमड़े से मढ़ दिया।[2]

अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, दर्दुर तथा पणव को अंग तथा झल्लरी, पटह जैसे वाद्यों को प्रत्यंग कहते हैं।[3]

त्रिपुष्कर जैसे चमड़े से मढ़े हुए वाद्य अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं।[4]

---

1. नाट्यशास्त्र 33/5-11. 2. नाट्यशास्त्र 33/10-13.
3. नाट्यशास्त्र 33/16. 4. नाट्यशास्त्र 33/24

त्रिपुष्कर का तात्पर्य मृदंग, पणव तथा दर्दुर से है। भेरी, पटह, झंझा और दुन्दुभि तथा डिण्डिम से गम्भीर ध्वनि होती है।[1]

अवनद्ध वाद्यों का स्वरूप :--

नाट्यशास्त्र के अनुसार मृदंग का आकार हरड़, जौ या गोपुच्छ की तरह रखी जाती है।[2] अंकी मृदंग हरड़ के समान, उर्ध्वक मृदंग जौ के समान और आलिंग्यक मृदंग गोपुच्छ के आकार का होता है। अंकी या आंकिक मृदंग की लम्बाई साढ़े तीन ताल के प्रमाण की होती है तथा इसका मुँह बारह अंगुल का रखना चाहिए। उर्ध्वक मृदंग की लम्बाई चार ताल के प्रमाण की रखनी चाहिए और इसका मुँह चौदह अंगुल का होना चाहिए। आलिंग्यक {आलिंग्यक} मृदंग की लम्बाई तीन ताल के प्रमाण में रखी जाय और इसका मुँह भी सिकुड़ा हुआ तथा आठ अंगुल का होता है।[3]

अमरकोष में मृदंग के तीन प्रकार का वर्णन है --

"मृदङ्गा मुरजा भेदास्त्वङ्क्यालिङ्ग्योर्ध्वकास्त्रयः।"

पणव :--

पणव की लम्बाई सोलह अंगुल रखना चाहिए। इसका मध्य भाग आठ अंगुल और मुँह पाँच अंगुल प्रमांण का होता है। इसके किनारों की मोटाई आधे अंगुल की तथा मध्य भाग में छिद्र रखे जाएँ और चार अंगुल के बराबर इसका प्रमाण रखा जाए।

---

1. नाट्यशास्त्र 33/27
2. नाट्यशास्त्र 33/242
3. नाट्यशास्त्र 33/243-246

दर्दुर :--

दर्दुर का आकार घट के आकार का होता है तथा इसका प्रमाण सोलह अंगुल हो, इसका मुँह घड़े जैसा बनाया जाय और बारह अंगुल का प्रमाण रहे। इसके कोने या किनारे चारों ओर से मोटे बनाएँ जाएँ।[1]

पुष्कर को चमड़े से मढ़कर दर्दुर, पणव, मृदंग आदि का निर्माण करना चाहिए।[2]

मुरज मिट्टी से निर्मित होने के कारण मृदंग, चारों ओर घूमने के कारण भाण्ड, ऊपर की ओर स्थित रहने के कारण मुरज तथा प्रहार से सम्बद्ध होने के कारण आतोद्य कहलाते हैं। भाण्ड आदि में निर्मित होने से पणव और लकड़ी को विदारणकर निर्मित होने से दर्दुर कहलाता है। इस प्रकार स्वाति मुनि ने मृदंग, पणव तथा दर्दुर को निर्मित कर उनमें मेघों की ध्वनि से समानता लेकर स्वर निर्मित किये।[3]

मृदंग वादक के गुण :--

मृदंग वादक गीत, वाद्य, कला, ग्रह, मोक्ष आदि सभी अंगों में कुशल हो, करणों का वादन मधुर, स्पष्ट एवं मौलिक हो, वादक की हस्त क्रिया लघु हो। वह बोलों की मौलिक रचना करने में समर्थ हो।[4]

---

1. नाद्यशास्त्र 33/249-250. 2. नाद्यशास्त्र 33/271.
3. नाद्यशास्त्र 33/274-275. 4. नाद्यशास्त्र 33/264-267.

घन वाद्य :—

नाट्यशास्त्र में घन वाद्यों को परिभाषित करते हुए लिखा है — "घनं तालस्तु विज्ञेयः।"[1] घन वाद्य ताल वाद्य है। इसका प्रयोग संगीत में ताल के लिए होता है। काँसा आदि धातुओं से बने हुए वाद्य को घन वाद्य कहा जाता है। अवनद्ध और घन वाद्यों का उपयोग ताल के लिए किया जाता है।

सुषिर वाद्य :—

सुषिर वाद्य का परिचय देते हुए नाट्यशास्त्र में लिखा है कि फूँककर हवा भरते हुए बजाने वाले बाँसुरी आदि वाद्यों को सुषिर वाद्य कहते है —

"सुषिरो वंशा उच्यते।"

अमरकोष के अनुसार वंशादि वाद्य को सुषिर वाद्य के अन्तर्गत रखा गया है — "वंशादिकं तु सुषिरम्।"[2]

आचार्य भरत के अनुसार तत तथा सुषिर वाद्य का उपयोग स्वरों के लिए होता है। अतः वीणा और बाँसुरी वादकों को एक साथ बैठना चाहिए।

आचार्य भरत ने सुषिर वाद्य का लक्षण निम्न प्रकार लिखा है —

आतोद्यं सुषिरंनाम ज्ञेयं वंशकृतं बुधैः।
वेणा एवं विधिस्तत्र स्वरग्राम समाश्रयः।।[3]

---

1. नाट्यशास्त्र 28/2. 2. अमरकोष 7/4.
3. नाट्यशास्त्र 30.

अर्थात् बाँस से निर्मित या रन्ध्र युक्त वाद्य को सुषिर वाद्य कहते हैं। इसकी स्वर ग्राम आदि में होने वाली विधियाँ वीणा के समान होती हैं। वंशी वादन सदा वीणा का अनुगामी माना जाता है।

हमारे प्राचीन वाङ्मय में वंशी वादन की परम्परा प्रचलित रही है। ऋग्वेद में यमराज के निवास पर नाड़ी नामक सुषिर वाद्य के वादन का उल्लेख है। यजुर्वेद में शंख तथा वंशी वादन का व्यवसाय करने वालों का उल्लेख है। भगवान् श्रीकृष्ण का वंशीवादक के रूप में प्रमुख स्थान है।

वंशी वादक के गुण :--

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में श्रेष्ठ वंशी वादक के गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वंश-वादन के लिए गीत तथा ताल का ज्ञान आवश्यक है। श्वास-क्रिया पर अधिकार रखना उसका महत्वपूर्ण गुण है।[1]

नृत्य

प्राचीन काल से ही अप्सराओं का नर्तकियों के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। अश्वमेध यज्ञ में भी नृत्य का आयोजन किया जाता था। विभिन्न उत्सवों में नृत्य होने का विशद वर्णन मिलता है। नाट्य के अन्तर्गत पूर्वरंग में आरम्भिक संगीत के पश्चात् नर्तकी का प्रवेश होता था। रंगभूमि में नर्तकी चारी नामक पदगति से प्रवेश करती थी तथा

---

1. नाट्यशास्त्र 32/464.

वैशाख नामक स्थान पर खड़ी होकर रेचक का प्रदर्शन करती थी। तत्पश्चात् पुष्पांजलि को रंगभूमि पर बिखेर कर रंग देवता का अभिवादन करती थी।

नृत्य की आरम्भिक भंगिमा का निर्माण चारी, स्थान तथा नृत्तहस्त के द्वारा होता था। नर्तकी के खड़े होने की कलात्मक भंगिमा को "स्थान", पद-संचालन की क्रिया को "चारी" तथा हस्त-संचालन की क्रिया को "नृत्तहस्त" कहते हैं। इन तीनों से नृत्य की आरंभिक भंगिमा बनती है।

नृत्य की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा :—

नृत्य शब्द संस्कृत के "नृत्" धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है —— "गात्रविक्षेप अर्थात् आंगिक अभिनय"। आचार्य धनञ्जय ने नृत्य को भाव पर आश्रित कहा है —— "भावाश्रयं नृत्यम्।" नन्दिकेश्वर के अनुसार नृत्य रस तथा भावों का व्यंजनाकारक प्रदर्शन है। इसे राजसभा आदि में प्रस्तुत किया जाता था।

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि नृत्य में पदार्थ के आन्तर भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। इसमें रस, भाव-व्यंजना तथा पदार्थ का अभिनय किया जाता है। अभिनय प्रदर्शन में नाट्य के पश्चात् नृत्य का द्वितीय स्थान प्रदान किया है।

अभिनय प्रदर्शन में नाट्य, नृत्य और नृत्त को समझना आवश्यक है। नाट्य में पात्र अपने स्वरूप को त्यागकर परभाव ग्रहण करता है। यह रस पर आश्रित है। नृत्य भावों पर आश्रित होता है किन्तु नृत्त में भाव तथा पदार्थ का प्रदर्शन नहीं होता। इसमें ताल एवं लय के अनुसार हस्तपादादि का संचालन होता है —— "नृत्तं ताललयाश्रयम्।"

इस प्रकार नाट्य में रसों तथा वाक्यार्थ का अभिनय किया जाता है, नृत्य में भाव तथा पदार्थ का अभिनय प्रस्तुत होता है और नृत्त में अंग-संचालन की प्रधानता होती है। अतः अभिनय प्रदर्शन में नाट्य को प्रथम, नृत्य को द्वितीय और नृत्त को तृतीय स्थान दिया गया है।

नृत्य की उत्पत्ति :--

भगवान शिव ने दक्ष-यज्ञ विध्वंस के पश्चात् विविध अंगहारों का प्रयोग करते हुए "ताण्डव" किया था। इस ताण्डव को ही नृत्य का मूल माना जाता है। इसमें तण्डु मुनि ने वाद्य और गान का संयोजन किया था। अतः तण्डु मुनि के नाम पर इसे "ताण्डव" कहा जाता है। यह पुरूष पात्र के द्वारा ही प्रयोग किया जाता था। इसमें ताल एवं लय के अनुसार वाद्यों के साथ अर्थव्यंजना के लिए अंग-संचालन होता है। तत्पश्चात् पार्वती देवी ने भी सुकुमार "लास्य" का नृत्य किया था।

इस प्रकार भगवान् महेश्वर और भगवती पार्वती के द्वारा नृत्य का उद्भव स्वीकार किया गया है। लास्य और ताण्डव दोनों नृत्य नाटकादि के उपकारक होते हैं।

"लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्।"[1]

भागवत पुराण में वर्णित है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने यमुना में कालिय नाग के मस्तक पर अद्भुत ताण्डव नृत्य किया था।[2]

---

1. दशरूपक 1/10.   2. भागवत 10/16/26-30.

नृत्य से सम्बन्धित कुछ पारिभाषिक शब्द :--

स्थान :-- नर्तक अथवा नर्तकी के सहज एवं कलात्मक देह भंगिमा को स्थान या स्थानक कहा जाता है। ये छः प्रकार के हैं -- वैष्णव, समपाद, वैशाख, मण्डल, प्रत्यालीढ और आलीढ।[1]

चारी :-- नर्तकी के पाद-संचालन की क्रिया को "चारी" कहते हैं। इसे नृत्य का प्रथम अंग माना जाता है। इसके बिना नाट्य संभव नहीं हो पाता है। इसके द्वारा ही नर्तक विभिन्न करणों का निर्माण करता है। पाद के साथ कटि, उरु, जंघा आदि का भी संचालन आवश्यक माना जाता है।[2]

करण :-- हस्त और पाद का सामन्जस्य करते हुए एक साथ संचालन करना "करण" कहा गया है। इसमें दोनों हस्त तथा दोनों पाद की क्रिया एक साथ की जाती है। दो करणों का संयोग नृत्त-मातृका कहा जाता है। तीन करणों के संयोग के लिए कलापक संज्ञा है। चार करणों के लिए मंडक या खण्डक, पाँच करणों के संयोग के लिए संघातक तथा पाँच से अधिक करणों के संयोग के लिए अंगहार संज्ञा है। अंगहार के अन्तर्गत शरीर के विविध अंगों का एक साथ अनेकप्रकार से संचालन होता है।[3] नाट्यशास्त्र में 108 करणों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार अंगहार अंगों की विविध क्रियाओं से निष्पन्न हुआ है। इसमें विभिन्न अंग-प्रत्यंग द्वारा किये गये सभी करणों का समावेश है --

---

1. नाट्यशास्त्र 11/49. 2. नाट्यशास्त्र 11/1-3.
3. नाट्यशास्त्र 4/28-30.

"अङ्गानां देशान्तरे प्रापणप्रकारोऽङ्गहारः।
हरस्य चायं हारः प्रयोग। अङ्ग निर्वत्योहारोऽङ्गहारः।"

नाट्यशास्त्र के अनुसार 108 करणों के सामूहिक प्रयोग से अंगहारों की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरत ने बत्तीस अंगहारों का नामोल्लेख किया है। अंगहारों का प्रवर्तन तण्डु मुनि ने भगवान् शिव के आदेश पर किया था।

रेचक :— अंगों के विविध संचालन की क्रिया को "रेचक" कहा जाता है। इसमें शरीर के किसी अंग विशेष का एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर संचालन होता है। इसके अन्तर्गत जिस अंग की रेचक क्रिया अभीष्ट होती है, उसी अंग का द्रुत गति से संचालन किया जाता है।[1]

पिण्डीबन्ध :— भगवान् शिव के अंगहारों के द्वारा विविध नृत्याकृतियाँ निर्मित की, इसे ही पिण्डीबन्ध कहा गया। नाट्य के पूर्वरंग में प्रदर्शन किये जाने वाले सामूहिक नृत्यों में पिण्डीबन्ध एक है। रेचक और अंगहारों के साथ इसका निर्माण किया जाता है। नाट्यशास्त्र में 17 प्रकार के पिण्डीबन्ध का उल्लेख हुआ है —

1. वृषपिण्डी — महेश्वर से सम्बन्धित.
2. पादसी — नन्दि से सम्बद्ध
3. सिंहवाहिनी — चन्द्रिका से सम्बद्ध
4. तार्क्ष्य — विष्णु से सम्बद्ध
5. पद्म — स्वयम्भू से सम्बद्ध
6. ऐरावती — शक्र से सम्बद्ध
7. मत्स्याकृति — मन्मथ से सम्बद्ध.

---

1. नाट्यशास्त्र 4/241-242.

8. शिखी — कार्तिकेय से सम्बद्ध.
9. रूपाकृति — श्री से सम्बद्ध.
10. धाराकृति — जाह्नवी से सम्बद्ध.
11. पाशाकृति — यम से सम्बद्ध.
12. वारुणी — नदी से सम्बद्ध.
13. याक्षी — कुबेर से सम्बद्ध.
14. हलपिण्डी — बलराम से सम्बद्ध.
15. सर्पपिण्डी — भुजंगों से सम्बद्ध.
16. महापिण्डी — गणेश्वर से सम्बद्ध.
17. रौद्री — अंतक से सम्बद्ध।[1]

उपर्युक्त पिण्डीबन्धों की नृत्य में नर्तकी के द्वारा कलात्मक रचना की जाती है। यह वाद्यों के साथ किया जाने वाला नृत्य है। ये कलात्मक रचनाएँ चार प्रकार की बतायी गई हैं — पिण्डी, श्रृंखलिता, लताबन्ध और भेद्यक। पिण्डी आकृति दृढ़ समूहबद्ध होता है, श्रृंखलिता में लता गुल्मों के समान आकृति होता है, लताबन्ध में हस्तों का परस्पर बन्ध बनता है तथा भेद्यक में नर्तकियों का व्यक्तिगत नृत्य रहता है।[2]

आचार्य अभिनवगुप्त ने पिण्डीबन्ध के दो प्रकारों का वर्णन किया है — सजातीय और विजातीय। सजातीय पिण्डीबन्ध में दो नर्तकियों के द्वारा एक ही वस्तु का अभिनय होता है, जबकि विजातीय पिण्डीबन्ध में दो नर्तकियों के द्वारा एक साथ एक ही समय में दो विभिन्न वस्तुओं का अभिनय किया जाता है। श्रृंखलिका में तीन नर्तकियों का अभिनय होता है और लताबन्ध में तीन से अधिक नर्तकियों के द्वारा अभिनय होता है, जबकि भेद्यक में नृत्त तथा अभिनय की अधिकता रहती है।

---

1. नाट्यशास्त्र 4/250-258. 2. नाट्यशास्त्र 4/284-286.

आंगिक अभिनय में अंगों की विविध क्रियाएँ :--

आंगिक अभिनय में अंगों एवं प्रत्यंगों के संचालन के द्वारा भाव-प्रदर्शन किया जाता है। आचार्य भरत के अनुसार आंगिक अभिनय के लिए छः अंगों का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त छः उपांगों का भी इसमें उपयोग किया जाता है। आंगिक अभिनय के लिए प्रमुख अंग -- शिर, हस्त, कटि, वक्ष, पार्श्व और पाद हैं तथा नेत्र, भ्रू, नासा, अधर, कपोल तथा चिबुक -- ये छः अभिनय के उपांग हैं।[1]

इन अंगों तथा प्रत्यंगों के संयोग से अभीष्ट भावभंगिमा का निर्माण किया जाता है। नाट्यशास्त्र में शिर की तेरह, नेत्र की छत्तीस, भ्रू की सात, नासिका की छः, अधर की छः, कपोल की छः तथा चिबुक की छः क्रियाओं का विस्तृत वर्णन है। नृत्य में अंग-प्रत्यंग की विविध क्रियाओं का एक साथ संचालन होता है। जिससे करण तथा अंगहारों की रचना होती है। वाम हस्त को वक्षस्थ करके दक्षिण हस्त के द्वारा करण की योजना की जाती है।

अमरकोष में नृत्यादि के तीन भेद का उल्लेख है -- विलम्बित को तत, द्रुत नृत्यादि को ओघ तथा मध्य को घन कहते हैं --

"विलम्बितं द्रुतं मध्यं तत्त्वमोघो घन क्रमात्।"[2]

संगीत की प्राचीनता :--

वैदिक काल से आज तक के ग्रन्थों में संगीत का पर्याप्त संकेत प्राप्त होता है। ऋग्वेद में गीत के लिए गातु, गाथा, गीति साम आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। शांखायन ब्राह्मण के अनुसार गीत, नृत्य तथा वाद्य -- इन तीनों का अभिन्न साहचर्य है --

---

1. नाट्यशास्त्र 8/12-13.   2. अमरकोष 7/8.

"त्रिवृद्वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादित्रमिति।"[1]

ऋग्वेद की ऋचाएँ स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण "स्तोत्र" कहलाती हैं। स्तोत्र की विशेषता उनके गान में है -- प्रगीत मन्त्र साध्या स्तुति स्तोत्रम्। ऋग्वेद में दुन्दुभि, वाण, नाड़ी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, आघाटि आदि वाद्यों का उल्लेख है।

जयतामिव दुन्दुभिः।[2] वाण का वादन पवमान सोम के लिए किये जाने का उल्लेख है।[3] तत वाद्यों के अन्तर्गत ऋग्वेद में कर्करि, गर्गर, क्षोणी आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है।

यदुत्पन् वदसि कर्करिः यथा।[4]

अव स्वराति गर्गरी गोधा परि सनिस्यनद् पिंगा
परि च निष्कदिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्।[5]

ऐतरेय आरण्यक में यजमान-पत्नी के द्वारा काण्ड-वीणा तथा भूमि दुन्दुभि के वादन का उल्लेख है --

भूमिदुन्दुभि पत्न्यश्च काण्डवीणा।[6]

दैवी वीणा और मानुषी वीणा की तुलना करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि दैवी (शारीरी) वीणा के अंगोपांग जैसे शिर, उदर, जिह्वा आदि के समान मानव निर्मित वीणा में भी अंगोपांग होते हैं। तुम्बाफल उसके शिर, काष्ठ खोह उसका उदर, वादन क्रिया उसकी जिह्वा, स्वर उसकी वाणी, तंत्रियाँ उसकी धमनी और मनुष्य के चर्म की तरह मानुषी वीणा में भी चर्म आच्छादित किया

---

1. शांखायन ब्रा. 29/5.
2. ऋग्वेद 1/28/5.
3. ऋग्वेद 7/97/8.
4. ऋग्वेद 2/43/3.
5. ऋग्वेद 10/146/2.
6. ऐत.आ. 5/1/5.

जाता है।[1]

ऋग्वेद में वर्णित है कि उषा नर्तकी के समान विविध रूपों को धारण करती है -- अधि पेशांसि वपते नृतुरिवा।[2] ऐतरेय आरण्यक में सोमयाग नामक व्रत में समूह-नृत्य होने का वर्णन प्राप्त होता है।[3] शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में पुरुषमेध वर्णन के अन्तर्गत सूत, शैलूष, नर्तक, गायक, वीणावादक, दुन्दुभिवादक आदि का उल्लेख है। तैत्तिरीयब्राह्मण में तालधारी व्यक्तियों के लिए "गणक" संज्ञा प्रयुक्त है — वीणावादकं गणकं गीताय।[4]

तैत्तिरीय संहिता के अनुसार वाक् देवी देवताओं से रूष्ट होकर वनस्पतियों में प्रविष्ट हो गई थी। इसीलिए दुन्दुभि, तूणव, वीणादि काष्ठ वाद्यों से वाणी ध्वनित होती है।[5]

आपस्तम्ब सूत्र में लिखा है कि औदुम्बर नामक काष्ठ से निर्मित वीणा के अधोभाग में दस छिद्र होते थे और प्रत्येक में मौन्जा के दस तन्तु पिरोये जाते थे। इस तरह शततंत्री वाण नामक वीणा का निर्माण होता था। इसके वादन के लिए तीन पर्व युक्त वेणुकाण्ड का प्रयोग होता था।[6] बौधायन श्रौत सूत्र के अनुसार भूमिदुन्दुभि का निर्माण भूमि में गड्ढा खोदकर बैल के नवीन चर्म से किया जाता था।[7] शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है कि ब्राह्मण गायक का गायन दिन में तथा क्षत्रिय गायक का गायन रात्रि में होता था।[8] कात्यायन श्रौत सूत्र में लौकिक संगीत के अन्तर्गत नृत्य, गीत तथा वाद्य का वर्णन किया गया है — "नृत्तगीतवादित्रवच्च।"[9]

---

1. ऐत.आ. 3/25.
2. ऋग्वेद 1/92/4.
3. ऐत.आ. 1/1.
4. तै.ब्रा. 15.
5. तै.संहिता 6/1/4.
6. आपस्तम्बसूत्र 21/18.
7. बौधायनश्रौतसूत्र 16/20.
8. शतपथ ब्रा. 13/1-5.
9. कात्या.श्रौतसूत्र 20/68.

अथर्ववेद में सघोष सामूहिक गान का उल्लेख मिलता है -- "गणास्त्वोप गायन्तु मारुता: पर्जन्य घोषिण: पृथक्।"[1] गन्धर्वलोक कर्करी और आघाट वाद्यों की ध्वनि से सदैव प्रतिध्वनित होता रहता है -- "यत्राघाटा: कर्कर्य: संवदन्ति।"[2] अथर्ववेद में दुन्दुभि का अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है --

दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रु: प्रति हरामि ताम्।[3]
ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिश:।[4]
एवा त्वं दुन्दुभे मित्रानभि क्रन्द प्रत्रासयाथो चित्तानि मोहय।[5]

गोपथ ब्राह्मण में विप्रों के लिए संगीत निषिद्ध बताया गया है -- "तस्माद् ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येन माग्लागृध:।"[6] सामविधान ब्राह्मण में सप्त स्वरों की देवताओं का उल्लेख हुआ है --

क्रुष्ट: प्राजापत्यो ब्राह्मो वा वैश्वदेव वा आदित्यानां प्रथम: साध्यानां द्वितीयोऽग्नेस्तृतीयो वायोश्चतुर्थ: सामो मन्द्रो मित्रा-वरुणयोरतिस्वार्य:।[7]

वायुपुराण में लिखा है कि यज्ञ के समय लौकिक गीतों का गान मागध लोग करते थे --

सामगेषु तु गायत्सु सुग्भाण्डे वैश्वदेवके।
सामगाने समुत्पन्नस्तस्मान्मागध उच्यते।।[8]

शिव की आराधना करते हुए भूतगण झर्झर, शंख, पटह, भेरी, डिंडिम आदि वाद्यों तथा गीतों का प्रयोग करते थे।[9] सप्त स्वर,

---

1. अथर्ववेद 4/15/4.
2. अथर्ववेद 4/8/37.
3. अथर्ववेद 5/31/7.
4. अथर्ववेद 5/21/9.
5. अथर्ववेद 5/21/6.
6. गोपथ ब्रा. 2/21.
7. सामविधान ब्रा. 1/5. बृहद्देवता 8/116-121.
8. वायु 62/137.
9. वायु 40/24-25.

तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना तथा उनचास तानों का समावेश स्वरमण्डल के अन्तर्गत किया गया है।[1]

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार प्रजापति के मुख से सामों का उदभव हुआ।[2] संगीत की अधिष्ठात्री देवी का सर्वप्रथम उल्लेख यहाँ वर्णित है।[3] गान्धर्व के अन्तर्गत ग्राम, मूर्च्छना तथा ताल आदि का उल्लेख किया गया है --

षड्ज मध्यम गान्धार ग्राम त्रय विशारदा:।
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सप्रयोगैः सुखप्रदम्।।[4]

कम्बल और अश्वतर ने त्रिलय समन्वित सप्तगीतकों के द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न कर वर प्राप्त किये थे।[5] मार्कण्डेय पुराण में नृत्य के लिए अंग सौष्ठव को प्रथम माना गया है। अंग सौष्ठव से सम्पन्न नर्तक का नृत्य ही यथार्थ नृत्य है।[6]

हरिवंश पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण को वंशीवादक तथा गीत-नृत्य के प्रवर्त्तक के रूप में वर्णित किया गया है। नृत्य की परम्परा में रास नृत्य श्रीकृष्ण की परम देन है। हरिवंश पुराण में गान के उदभव का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सृष्टि के निर्माण पर गान की द्विविध परम्परा का प्रवर्तन हुआ। एक गन्धर्वों के लिए और दूसरा यज्ञ करने वाले विप्रों के लिए --

गानं प्रभाषं संचक्रे गन्धर्वाणामभाषितः।
अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्मप्रभाषितम्।।[7]

---

1. वायु 86/36.
2. मार्कण्डेय 102/5-7.
3. मार्कण्डेय 23/50.
4. मार्कण्डेय 106/58.
5. मार्कण्डेय 23/59.
6. मार्कण्डेय 1/35-36.
7. हरिवंश 3/20/9.

गन्धर्व तथा अप्सराएँ सदैव नृत्य, वाद्य और गीत में संलग्न रहते हैं। इनका प्रादुर्भाव संगीत के लिए हुआ है।[1] नारद संगीत की वैदिक तथा गान्धर्व दोनों में कुशल बताये गये हैं। वे गान्धर्व कोविद तथा चारों वेदों के गायक हैं।[2] बलराम और रेवती के मिलन अवसर पर मधुर गान, वाद्य तथा नृत्य के साथ अभिनय का प्रदर्शन किया गया। रमणियाँ मण्डलाकार रास-नृत्य का प्रदर्शन करती हुई एक-दूसरे के हाथों पर तालियाँ बजा रही थीं।[3]

हरिवंश में छालिक्य गान का वर्णन किया गया है। इसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य का सुन्दर समन्वय होता था। नारद वीणा बजाते थे, श्रीकृष्ण बंशी बजाते हुए हल्लीसक नृत्य करते थे, अर्जुन मृदंग बजा रहे थे तथा अप्सराएँ अन्य वाद्यों को बजा रही थीं। यह एक सामूहिक नृत्य-गीत है। इसमें गीत गाते हुए नर-नारी नृत्याभिनय करते थे।[4]

नाट्यशास्त्र के अनुसार इन्द्र ध्वज नामक उत्सव में प्रयुक्त नाट्य में संगीत के लिए नारदादि गन्धर्वों का, वाद्य के लिए स्वाति आदि वाद्य विशारदों का तथा नृत्य के लिए अप्सराओं की योजना की गई।[5]

श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों में गीत, वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख हुआ है। गणिकाओं के नृत्य, संगीत, वाद्य, हावभाव, आलिंगन आदि क्रिया से ऋष्यश्रृंग मुनि मोहित हो गये थे।[6] भगवान् के धाम में जाने के लिए तैयार ध्रुव को देखकर आकाश में दुन्दुभि, मृदंग, ढोल आदि बजने लगे और श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे।[7] भगवान् वामन के जन्म के

---

1. हरिवंश 3/20/3-4.
2. हरिवंश 2/28/45.
3. हरिवंश 2/89/5-7.
4. हरिवंश 2/89/67-82.
5. नाट्यशास्त्र 1/46-51.
6. भागवत 9/23/9.
7. भागवत 4/12/31.

समय शंख, ढोल, मृदंग, डफ और नगाड़े बजने लगे, गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।[1]

कूर्म पुराण में वर्णित है कि गन्धर्वगण षड्जादि स्वरों में सूर्य का गान करते हैं तथा अप्सराएँ उनके समक्ष नृत्य करती हैं।[2] विष्णु पुराण में उल्लिखित है कि क्षीर सागर से लक्ष्मी देवी के उत्पन्न होने पर गन्धर्वगण गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।[3] ब्रह्म पुराण के अनुसार सूर्य के तेज को संक्षिप्त करने के लिए खरादते समय श्रेष्ठ अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व गाने लगे और वाद्य बजाने लगे थे। उस समय नृत्य, वाद्य तथा गीत से महान् कोलाहल होने लगे थे।[4] विष्णु लोक में अप्सराएँ अपने मधुर गान और नृत्य से भगवान पुरुषोत्तम को प्रसन्न करती थीं।[5]

स्कन्द पुराण में वर्णित है कि गीत के प्रभाव से देवर्षि नारद महान् और वैष्णवों में मान्य हुए तथा भगवान् शिवजी के प्रिय भक्त हुए।[6] धर्मराज को तपोभंग करने के लिए वर्द्धिनी नामक अप्सरा वीणा के मधुर स्वर युक्त मूर्च्छना और ताल से संयुक्त मधुर गान और नृत्य करती हुई धर्मराज के निकट गई।[7] गन्धर्व गीत में कुशल रंगविद्याधर नामक गन्धर्व पुलस्त्य मुनि के समीप मधुर गीत गाकर उनका ध्यान भंग करता था।[8] भागवत पुराण के अनुसार मार्कण्डेय मुनि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए उनके समक्ष अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व मधुर

---

1. भागवत 8/18/7-8.
2. कूर्म 1/42/12-16, भागवत 12/11/47.
3. विष्णु 1/9/100-102, पद्म 1/4/60.
4. ब्रह्म 32/99-103.
5. ब्रह्म 68/66-67.
6. स्कन्द 4/1/8/26.
7. स्कन्द 3/2/3/72-77.
8. स्कन्द 3/1/5/19.

स्वर में गान करने लगे तथा मृदंग, वीणा, ढोल आदि वाद्य मनोहर स्वर में बजने लगे थे।[1]

इस प्रकार पुराणों में भी गीत, वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख सर्वत्र मिलता है, जो इसकी प्राचीनता को प्रकट करता है।

वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों में संगीत का वर्णन मिलता है। गन्धर्व गान और वादन करते थे तथा अप्सराएँ नृत्य करती थीं। हाहा, हूहू, नारद, तुम्बुरू आदि गन्धर्वों का रामायण में उल्लेख हुआ है। श्रीराम के जन्म के अवसर पर गन्धर्वों का गान तथा अप्सराओं का नृत्य होने का वर्णन किया गया है --

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात् पतत्।।

अयोध्या में महान् उत्सव हुआ, जिसमें बहुत से नट और नर्तक अपनी कला दिखा रहे थे --

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।
रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तक संकुलाः।।[2]

दशरथ पुत्रों के वैवाहिक कार्य पूर्ण होने पर आकाश से पुष्प की वर्षा होने लगी, दुन्दुभियों की गम्भीर ध्वनि, गीतों के मनोहर शब्द तथा वाद्यों के मधुर घोष के साथ अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और गन्धर्व मधुर गीत गाने लगे --

दिव्य दुन्दुभिनिर्घोषैर्गीत वादित्र निः स्वनैः।।
ननृतुश्चाप्सराः संघागन्धर्वाश्च जगुः कलम्।[3]

----

1. भागवत 12/8/22-24. 2. रामायण 1/18/16-18.
3. रामायण 1/73/37-38.

श्रीराम के आदेश पर लव-कुश ने मार्गशैली से गान्धर्व-गान किया था।[1] लव और कुश ने स्वर, पद, ताल, मूर्च्छना आदि का शुद्ध गान कर श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया था। शत्रुघ्न के स्वागत के लिए वाल्मीकि आश्रम में गीत-वाद्य का आयोजन किया गया था।[2] दुःस्वप्न से व्यग्र भरत के मनोरंजन के लिए गान, नृत्य, वाद्य के साथ नाटक का प्रदर्शन किया गया था।[3] तपस्वियों का तपोभंग करने के लिए अप्सराएँ मधुर स्वर में गान किया करती थीं तथा नृत्य के साथ वाद्यों का वादन होता था।[4] रामलक्ष्मण के नागपाश से मुक्त होने पर सैनिकों ने भेरी, मृदंग तथा शंख बजाकर हर्ष में तुमुलनाद किया था।[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रामायण काल में संगीत का प्रचुर मात्रा में प्रचलन था। विविध समारोहों में संगीत, वाद्य एवं नृत्य का आयोजन किया जाता था।

इसी प्रकार महाभारत में संगीत के दिव्य कलाकारों के रूप में गन्धर्वों तथा किन्नरों का उल्लेख है। इनका निवास स्थान सदैव गीत तथा वाद्यों के निनाद से गुंजायमान रहता था।[6] उत्सवों के अवसर पर गीत, वाद्य, नृत्य आदि का आयोजन किया जाता था। रैवतक पर्वत पर आयोजित लोकोत्सव में नृत्य और नाट्य का प्रदर्शन किया गया था। खाण्डवदाह के अवसर पर कृष्ण तथा अर्जुन ने गीत, नृत्य तथा वाद्य का आयोजन किया था। द्रुपद की राजधानी में वाद्यों की ध्वनि सदैव होती रहती थी।[7] पांचालराज की सभा में गीत तथा नृत्य गूँजता रहता था।

---

1. रामायण 1/4/30.
2. रामायण, उत्तर 93/15 व 93/3.
3. रामायण, अयोध्या 75/4. 4. आरण्यक 12/7.
5. रामायण, युद्ध 50/61-62.
6. आश्वमेधिक पर्व 53/52-54, शांतिपर्व 184/38-41.
7. आदि पर्व 11/15, विराट 4/310, सभा 5/24.

अतिथियों के स्वागतार्थ गीत के साथ पणव, वंश, कांस्यताल आदि का वादन किया जाता था। इन्द्र की सभा में अर्जुन का स्वागत गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा किया गया था, जिसमें गन्धर्वों ने गान करते हुए वाद्यों का वादन किया था तथा अप्सराओं ने नृत्य किया था।

महाभारत में विविध वाद्यों का उल्लेख किया गया है। वीणा, वंश, मृदंग, पणव, भेरी, शंख, दुन्दुभि आदि वाद्यों का महाभारत में अनेक स्थलों में वर्णन किया गया है। भेरी, मृदंग, शंख, दुन्दुभि आदि का वादन उल्लास की अभिव्यक्ति एवं उत्साहवर्धन हेतु किया जाता था। मंगल अवसरों पर भी शंख, भेरी, पुष्कर आदि का समवेत वादन किया जाता था।[1] युद्ध के समय शंख, भेरी, पणव, आनक, पटह, मुरज आदि का घोर निनाद किया जाता था।[2]

महाभारत में संगीत शिक्षक की नियुक्ति का उल्लेख भी किया गया है। बृहन्नला रूपी अर्जुन विराट की राजसभा में राजकन्याओं के संगीत शिक्षक के रूप में नियुक्त था। गन्धर्वराज विश्वावसु को गीत, वाद्य, नृत्त और साम की शिक्षा प्राप्त थी।[3] संगीत की शिक्षा के लिए महाभारत में संगीत शाला होने का उल्लेख भी वर्णित है।[4]

इस प्रकार महाभारत के अनुशीलन से महाभारत काल में संगीत के अत्यधिक प्रचलन का प्रमाण प्राप्त होता है। विभिन्न उत्सवों में वाद्य तथा गीत के साथ नृत्य का आयोजन किया जाता था। वीणा, वेणु, मृदंग, पणव, पटह, मुरज, भेरी, पुष्कर, शंख आदि वाद्यों का तत्कालीन समाज में पर्याप्त प्रचलन था।

---

1. उद्योग 142/27.
2. सभा 4/101.
3. वन 17/858 व 20/1043-46.
4. विराट 2/121-122.

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र ग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत आदि के अनुशीलन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि संगीत का प्रचलन भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव की सृष्टि। मनुष्य आदि काल से ही संगीत का मनोरंजन के लिए प्रयोग करते आया है।

द्यूत विद्या

ऋग्वेद में द्यूत विद्या का उल्लेख हुआ है। इससे इसकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध होती है। ऋग्वेद के दसवें मंण्डल में जुआरी का गीत-सूक्त है। जुआरी अपना धन जुएँ में हार जाता है और घर आदि भी गिरवी रख देता है। ऋग्वेद में वर्णित है कि जुएँ के पासे अंगारे की तरह हाथ को जलाते हैं। ऐसा सोचकर जुआरी द्यूत न खेलने का निर्णय करता है किन्तु पासों की झनकार सुनकर वह अपने आपको रोक नहीं पाता और अपनी पत्नी को दाँव पर लगा देता है।[1] प्राचीन काल से ही द्यूत को बरबादी का कारण माना है।

प्राचीन संस्कृत वाङ्‌मय में संगीत, नृत्य, आखेट, जलविहार, द्यूत आदि का मनोरंजन के साधन के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। हरिवंश पुराण में वर्णित है कि महाराज ऋतुपर्ण दिव्य द्यूत विद्या के रहस्यवेत्ता थे।[2] द्यूत पारस्परिक प्रेम का नाश करने वाला, कलह का घोर स्थान तथा दुर्बुद्धि पुरूषों का संहार करने वाला है। रूक्मी द्यूत विद्या में कुशल था।[3]

---

1. ऋग्वेद 10/34.
2. हरिवंश 1/15/19.
3. हरिवंश 2/61/21-27.

गन्धर्वों का स्वामी विश्वावसु द्यूत क्रीड़ा में निपुण था। वह इन्द्र लोक में राजा प्रमति के साथ जुआ खेलते हुए गन्धर्व विद्या को हार गया था। उस समय इन्द्र और प्रमति जुआ खेल रहे थे तदनन्तर इन्द्र उर्वशी को जुआ में हार गया। तब विश्वावसु के पुत्र चित्रसेन ने राजा प्रमति को द्यूत क्रीड़ा में उसके राज्य, कोश, सेना तथा धन सहित उर्वशी को जीत लिया तथा प्रमति को गन्धर्वपाश में बाँध दिया था।[1]

महाभारत में कौरवों और पाण्डवों के मध्य द्यूत क्रीड़ा का उल्लेख हुआ है। इस द्यूत क्रीड़ा के कारण पाण्डवों को अपने राज्य एवं धन सम्पत्ति से वंचित होकर वनवास जाना पड़ा था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि द्यूत विद्या एक प्राचीन विद्या है और इसका प्रयोग मनोरंजन के लिए प्राचीन काल से होता आया है। लेकिन इस विद्या को समाज के लिए हानिकारक माना गया है क्योंकि इससे पारस्परिक प्रेम का नाश होता है। गन्धर्वगण इस विद्या में कुशल थे। विश्वावसु और चित्रसेन को द्यूत विद्या में पारंगत माना गया है।

चित्रकला

प्राचीन विद्याओं में चित्रकला का महत्वपूर्ण स्थान है। इस विद्या के द्वारा विविध प्रकार के चित्र बनाने की शिक्षा दी जाती है। प्राचीन काल में विभिन्न सभाभवनों, रथों एवं राजभवनों में विविध प्रकार के चित्र अंकित होने का उल्लेख किया गया है।

---

1. ब्रह्म 171/7-25.

नरवाहन कुबेर की सभा विचित्र झाँकी से सुशोभित थी। वह श्वेत बादलों के शिखर के समान दिखाई देती थी। उसकी दीवारें सुनहले रंगों से चित्रित की गई थीं।[1] वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि कुबेर का पुष्पक विमान विचित्र चित्रों से चित्रित था।[2] उसमें हरेभरे पत्तों, पुष्पों और फलों से युक्त वृक्षों, सुन्दर पुष्पों से सुशोभित पोखरों तथाअद्भुत सरोवरों से चित्रित श्वेतवर्ण भवन बने हुए थे।[3] उसके कमल मण्डित सरोवरों में गजराज लक्ष्मी का अभिषेक करते हुए चित्रित किये गये थे।[3]

उपर्युक्त विवरण से सिद्ध होता है कि चित्रकला भारतीय परम्परा में प्राचीनकाल से अनवरत रूप से प्रचलित है।

पुराणों में चित्रलेखा नामक अप्सरा का उल्लेख चित्रकला-विशारदा के रूप में हुआ है। हरिवंश, विष्णु, शिव, ब्रह्म और पद्म पुराण में वर्णित है कि चित्रलेखा ने ऊषा के निवेदन पर चित्रपट में श्रेष्ठ देवताओं, दानवों, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षसों आदि का चित्र अंकित कर उसे अपने पति को पहचानने के लिए दिया था। इस चित्रपट को देखकर ऊषा ने अपने पति का परिचय चित्रलेखा को कराया था। तदनन्तर चित्रलेखा द्वारिकापुरी जाकर अनिरुद्ध को ऊषा के महल में ले आई थी।[4]

इस विवरण से विदित होता है कि चित्रलेखा अप्सरा चित्रकला-विशारदा के रूप में प्रख्यात थी।

---

1. सभापर्व 10/4-5.
2. वा.रा. 7/15/40.
3. वा.रा. 5/7/10-15.
4. हरिवंश 2/118, शिव, रुद्र, युद्ध 51-53, विष्णु 5/32-33, ब्रह्म 105-106.

अन्तर्धान विद्या (माया)

पुराणों में यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के द्वारा अन्तर्धान विद्या के प्रयोग का वर्णन प्राप्त होता है। यक्षों ने कच्चे पात्र में पृथ्वी से अन्तर्धान विद्या का दोहन किया था। उनके दोग्धा कुबेर थे। किन्तु ब्रह्म पुराण में कुबेर के बछड़ा होने का उल्लेख है।[1]

हरिवंश पुराण में वर्णित है कि प्रतिज्ञा भंग होने के कारण उर्वशी पुरूरवा को त्यागकर अन्तर्धान हो गयी थी।[2] ऊषा के पति को लाने के लिए चित्रलेखा अन्तर्धान होकर द्वारिकापुरी गयी और अनिरुद्ध को ऊषा के महल में लाई थी।[3] अर्जुन से युद्ध करते हुए चित्रसेन गन्धर्व ने माया से अदृश्य होकर अर्जुन पर अस्त्रों की वर्षा की थी। उस समय अर्जुन ने शब्दवेध का सहारा लेकर चित्रसेन की अन्तर्धान रूप माया को नष्ट कर दिया था।[4]

भागवत पुराण के अनुसार शम्बरासुर माया का आश्रय लेकर आकाश में चला गया और प्रद्युम्न पर अस्त्र-शस्त्र चलाने लगा। शम्बरासुर ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस आदि की सैकड़ों मायाओं का प्रयोग किया, परन्तु प्रद्युम्न ने अपनी महामाया से उनका नाश कर दिया।[5]

---

1. ब्रह्म 4/105, वायु 62/184, पद्म 1/8/22, द्रोण पर्व 69/24.
2. हरिवंश 1/26/27-29, भागवत 9/14/27-31, स्कन्द 3/1/28/31-40.
3. हरिवंश 2/118/95. 4. वनपर्व 245/24-26.
5. भागवत 10/55/21-23.

चाक्षुषी विद्या

महाभारत के अनुसार गन्धर्वगण चाक्षुषी विद्या के बल से मनुष्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं और देवताओं के तुल्य प्रभाव सम्पन्न होते हैं। इस विद्या से तीनों लोकों में स्थित किसी भी वस्तु को आँख से देखा जा सकता है। इस विद्या के प्रभाव से किसी भी वस्तु को इच्छित रूप में देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।[1]

चाक्षुषी विद्या को मनु ने सोम को, सोम ने विश्वावसु को और विश्वावसु ने चित्ररथ को दिया था। चित्ररथ ने इस विद्या को तपस्या से अर्जित किया था। अर्जुन से युद्ध करते हुए चित्ररथ पराजित हो गया था। तदनन्तर उन्होंने अर्जुन को इस चाक्षुषी विद्या को अर्पित किया था। और अर्जुन से आग्नेयास्त्र प्राप्त कर दोनों आपस में मैत्रीभाव से बँध गये थे।[2]

पद्मिनी विद्या

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है कि ब्रह्मर्षि पार और पुंजिकस्थला अप्सरा की पुत्री कलावती ने पद्मिनी विद्या सती देवी से प्राप्त की थी। उन्होंने स्वरोचि को इस विद्या को प्रदान किया। तदनन्तर स्वरोचि ने उसका पाणिग्रहण किया।[3]

---

1. आदि पर्व 169/45-47.
2. आदि पर्व 169/41-53.
3. मार्कण्डेय 61/5-19.

पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। यह अष्टनिधियों का आधार स्वरूप है। पदम, महापदम, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंख -- ये आठ निधियाँ पद्मिनी विद्या के आश्रित हैं --

यत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकर कच्छपौ।
मुकुन्दो नन्दकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः॥[1]

तामसी विद्या
============

हरिवंश पुराण में लिखा है कि चित्रलेखा ने नारद मुनि से सिद्ध की हुई तामसी विद्या प्राप्त की थी। यह विद्या सब लोगों को मोह में डालने वाली है। इसी तामसी विद्या के द्वारा चित्रलेखा ने अनिरुद्ध के महल में अन्य सभी व्यक्तियों को आच्छादित कर दिया था।[2]

बाणासुर ने तामसी विद्या का आश्रय लेकर अदृश्य रहते हुए अनिरुद्ध पर बाणों का प्रहार आरम्भ किया था।[3]

---

1. मार्कण्डेय 65/4-5.   2. हरिवंश 2/119/22-33.
3. हरिवंश 2/119/171-172.

आन्वीक्षिकी विद्या

आचार्य कौटिल्य के अनुसार विद्याएँ चार प्रकार की होती हैं- आन्वीक्षिकी अर्थात् अध्यात्म सम्बन्धी, त्रयी अर्थात् ऋक, यजुष्, और साम, वार्ता अर्थात् कृषि, वाणिज्य आदि तथा दण्डनीति अर्थात् राज विद्या।

आन्वीक्षिकी विद्या के अन्तर्गत सांख्य, योग, वेदान्त आदि का समावेश है।[1] गन्धर्वराज विश्वावसु वेदान्त ज्ञान में पारंगत था। उसने याज्ञवल्क्य मुनि से आन्वीक्षिकी विद्या के सम्बन्ध में प्रश्न किये और मुनि से उपदेश प्राप्त किया। उन्होंने विभिन्न ऋषियों से जीवात्मा की परमात्मा से अभिन्नता से सम्बन्धित उपदेश भी सुना। ब्रह्म का उपदेश सुनकर विश्वावसु ने देवताओं, मनुष्यों तथा मोक्षमार्ग का आश्रय लिए हुए लोगों को, उन्हीं के लोकों में जाकर इस सम्यक् दर्शन का उपदेश दिया था।[2]

इसके अतिरिक्त अप्सराएँ इच्छानुसार रूप धारण करने तथा मन के समान चलने में समर्थ थीं। चित्रलेखा अप्सरा को समस्त त्रिलोकी की बातें ज्ञात रहतीं थीं। विश्वावसु आदि गन्धर्व राजा पुरूरवा की वस्त्रहीन अवस्था को उर्वशी को दिखाने के लिए स्वयं बिजली की तरह चमकने लगे थे।

- -

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1. 2. शांति पर्व 318/2.

मोहिनी विद्या

पद्म पुराण में मोहिनी विद्या का उल्लेख हुआ है। रम्भा नामक अप्सरा ने मोहिनी विद्या को सिद्ध किया था। उन्होंने अपनी सखी सुनीथा को इस विद्या को प्रदान किया था। मोहिनी विद्या को रम्भा से मृत्यु कन्या सुनीथा ने आनन्दपूर्वक ग्रहण किया। यह ऐसी विद्या है जिससे किसी भी पुरूष को मोहित किया जा सकता है।[1] मोहिनी विद्या को ग्रहण करके सुनीथा ने उसका अभ्यास किया। इस विद्या के सिद्ध होने पर सुनीथा अत्यन्त प्रसन्न हुई। इस मोहिनी विद्या से सुनीथा ने तपस्यारत अत्रि पुत्र अंग को मोहित किया। तदनन्तर अंग ने गान्धर्व-विवाह के द्वारा सुनीथा को ग्रहण किया।[2]

आयुर्वेद विद्या

आयुर्वेद शब्द का निर्माण आयु और वेद से मिलकर हुआ है -- आचार्य चरक ने आयुर्वेद को परिभाषित करते हुए लिखा है कि जिसमें हित, आयु, अहित आयु, सुख आयु और दुख आयु के लिए हित (पथ्य), अहित (अपथ्य), आयु का मान (प्रमाण और अप्रमाण) और आयु का स्वरूप बताया गया हो, उसे आयुर्वेद कहा जाता है —

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[3]

---

1. पद्म 2/34/39-41.
2. पद्म 2/35.
3. चरक संहिता 1/41.

आयुर्वेद का प्रयोजन :--

आयुर्वेद के मुख्यत: दो उद्देश्य हैं -- स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगियों के विकार को दूर करना।

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्।
आतुरस्य विकार प्रशमनं च।।

आयुर्वेद के अंग :--

आयुर्वेद के आठ अंगों का उल्लेख मिलता है -- {1} काय चिकित्सा, {2} कौमार भृत्य, {3} भूत विद्या, {4} शल्य तंत्र, {5} शालाक्य तन्त्र, {6} विषतंत्र, {7} रसायन और {8} बाजीकरण। इन आठ अंगों में सम्पूर्ण चिकित्सा का समावेश है।

आयुर्वेद का स्वरूप :--

स्वस्थ एवं रोगियों के लिए उत्तम मार्ग बताने वाला हेतु {निदान}, लिंग {लक्षण}, और औषध ज्ञान शाश्वत पुण्य देने वाला है, जिसे ब्रह्माजी ने स्वयं प्राप्त किया था --

हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः।।

आयुर्वेद का अवतरण :--

आयुर्वेद विद्या का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा को हुआ। ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति को, दक्ष प्रजापति से अश्विनी को और अश्विनी से इन्द्र को आयुर्वेद प्राप्त हुआ। इन्द्र इसे भूलोक में लाये। इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान भारद्वाज और धन्वन्तरि को मिला। इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा ज्ञात आयुर्वेद का भूलोक में अवतरण हुआ।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार इन्दीवर नामक गन्धर्व आयुर्वेद विद्या में पारंगत था। उसने स्वरोचि को आयुर्वेद विद्या प्रदान किया था।[1]

इस प्रकार यक्ष, गन्धर्व और अप्सराएँ विविध विद्याओं में कुशल थे। इसके अतिरिक्त यक्ष और गन्धर्व युद्ध-कला में दक्ष थे। उन्होंने अनेक युद्धों में अपनी युद्ध कुशलता का परिचय दिया है। इसका विवरण अगले अध्याय में वर्णित है।

--::--::--
--::--

---

1. मार्कण्डेय 60/54-55.

--:: अध्याय : 6 ::--

यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं का समाज.

1. सामाजिक स्थिति :--
   अ. परिवार की स्थिति.
   आ. वेशभूषा -- वस्त्र, आभूषण, माला, केशविन्यास और अंगराग.
   इ. भोजन.
   ई. आमोद-प्रमोद के साधन.
   उ. सदाचार.
   ऊ. संस्कार.

2. धार्मिक स्थिति :--
   अ. धर्म की व्युत्पत्ति और परिभाषा.
   आ. धर्म का लक्षण.
   इ. धर्म के भेद.
   ई. पूजा एवं उपासना.
   उ. भक्ति एवं उसके भेद.
   ऊ. तपस्या.
   ए. ध्यान एवं उसके प्रकार.

--::--::--
--::--

यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं का समाज

किसी भी समाज के अध्ययन के लिए समाज में वेशभूषा, भोजन, परिवार की स्थिति, आमोद-प्रमोद के साधन, विवाहादि संस्कार, सदाचार आदि का परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक होता है। इसके अलावा उनके द्वारा प्रयुक्त धार्मिक कार्यों, व्रतों आदि का अध्ययन भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समाज का अध्ययन भी इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर करेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समाज का अध्ययन उनकी सामाजिक और धार्मिक स्थितियों को विभाजित करते हुए किया गया है।

सामाजिक स्थिति :--

इसके अन्तर्गत परिवार की स्थिति, वस्त्र एवं पोशाक, आभूषण व अलंकार, भोजन, मनोरंजन के साधन, विविध संस्कार और सदाचार आदि का समावेश किया गया है।

धार्मिक स्थिति :--

इसमें यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के धार्मिक पक्ष का उल्लेख हुआ है। उनके समाज में प्रचलित पूजा एवं आराधना, व्रत एवं उपासना, भगवत्भक्ति, ध्यान आदि विविध धार्मिक कार्यों का यहाँ उल्लेख किया गया है।

परिवार की स्थिति

प्राचीन संस्कृत वाङ्.मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय माता-पिता के साथ पुत्र और पुत्रवधू भी रहते थे। परिवार में पिता का स्थान सबसे ऊँचा था। उनके आदेश का परिवार के प्रत्येक सदस्य पालन करते थे। परिवार में पत्नी के परामर्श का भी पूरा सम्मान किया जाता था।

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि हरिकेश यक्ष को उसके पिता ने यक्षों की वृत्तित्याग कर, सदा शिवभक्ति में लीन रहने के कारण घर से चले जाने का आदेश दिया था। जिससे वह अपने परिवार को त्याग कर वाराणसी चला गया था।[1] ब्रह्म पुराण के अनुसार समा नामक यक्षिणी अपने पति के आदेश पर मृगी का रूप धारण करके शिकार के लिए आये हुए राजा इल के समक्ष प्रकट हुई। राजा इल उसका शिकार करने के लिए प्रवृत्त हुए और उसने राजा को उमा वन में प्रवेश करा दिया था।[2]

गन्धर्व तथा यक्ष प्राय: समूह में रहते थे। विविध पर्वत शिखरों में वे निवास करते थे। पर्वत शिखरों में अनेक गन्धर्व नगरों का उल्लेख पुराणों में किया गया है।

परिवार में पत्नी पति की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती थी। अर्जुन से पराजित चित्ररथ नामक गन्धर्व को छुड़ाने के लिए उसकी पत्नी कुम्भीनसी ने युधिष्ठिर से निवेदन किया था, जिससे युधिष्ठिर ने उसे मुक्त कर दिया था।[3] उपबर्हण नामक गन्धर्व कुमार ब्रह्मा के शाप से प्राणहीन

---

1. मत्स्य 180/10-20.
2. ब्रह्म 108/20-35.
3. आदिपर्व 169/30-40.

हो गये थे। तब उसकी पत्नी मालावती कुपित होकर देवताओं को शाप देने उद्यत हो गयी थी। जिस कारण श्रीकृष्ण ने अपनी शक्तियों के साथ उसके शरीर में प्रवेश कर उपबर्हण को जीवित किया था।[1]

माता-पिता अपने संतान के कल्याण के लिए हमेशा उद्यत रहते थे। गन्धर्वराज घनवाहन ने अपनी पुत्री गन्धर्वसेना को शाप मुक्त करने के लिए उस कन्या के साथ सोमवार व्रत का पालन करते हुए शिवलिंग का पूजन किया और उसे शापमुक्त किया था।[2] मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है कि इन्दीवर नामक गन्धर्व अपनी कन्या मनोरमा का पाणिग्रहण स्वरोचि के साथ करके प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग चला गया।[3] सर्पदंश से मृत पुत्री प्रमद्वरा को रूरू की आधी आयु से जीवित करने का निवेदन विश्वावसु ने धर्मराज से किया था। तदनन्तर प्रमद्वरा का रूरू के साथ विवाह किया था।[4] विश्वावसु ने अपनी बहन पिप्पला को शापमुक्त करने के लिए भगवान् शिव की पूजा किया था।[5]

इस प्रकार यक्ष तथा गन्धर्व समाज में पिता का स्थान परिवार में सर्वोपरि था। उसका अपनी संतान पर तथा परिवार के आश्रित सदस्यों पर पूर्ण अधिकार रहता था। वे अपने दायित्व का पालन करने में सदैव तत्पर रहते थे। पिता परिवार में अनुशासन रखता था। पति और पत्नी में मधुर सम्बन्ध होता था। पिता के बाद भाई, बहन की रक्षा करता था। नारियों में नैतिकता विद्यमान थी। वे पतिव्रत धर्म का पालन करती थीं। पुत्रवधू का सम्मान किया जाता था। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि गन्धर्वी सोमदा ने अपनी पुत्रवधुओं का यथोचित अभिनन्दन किया था।[6]

---

1. ब्रह्मवैवर्त 1/18.
2. स्कन्द,प्रभास 25/59-60.
3. मार्कण्डेय 60/60-62.
4. आदिपर्व 9/13-16, देवीभागवत 2/9-10.
5. ब्रह्म 132/3-7.
6. वा.रा. 1/33/20-25.

वेशभूषा

वेशभूषा के अन्तर्गत वस्त्र, आभूषण, माला, केशविन्यास तथा अनुलेप आदि का समावेश किया गया है।

वस्त्र :—

पुराणों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के द्वारा सूती एवं रेशमी वस्त्र धारण किया जाता था। उत्सव के समय नये वस्त्र धारण किये जाते थे।

महाभारत के अनुसार गन्धमादन पर्वत में निवास करने वाले गन्धर्व और अप्सराएँ स्वच्छ रेशमी वस्त्र धारण करते थे।[1] मेनका चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वस्त्र धारण करके विश्वामित्र के पास गई थी।[2] रम्भा सजल मेघ के समान नीले रंग की साड़ी धारण करके नलकूबर से मिलने जा रही थी।[3] तिलोत्तमा लाल रंग की महीन साड़ी पहनी हुई सुन्द और उपसुन्द दैत्य के निकट गई थी।[4] मार्कण्डेय मुनि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए पुंजिकस्थला अप्सरा महीन साड़ी धारण करके उनके समीप गेंद खेल रही थी।[5]

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि बदरी आश्रम में तपस्यारत मित्र और वरुण देवता के समीप उर्वशी अति सूक्ष्म लाल रंग की साड़ी धारण करके आयी थी।[6] अंजना रेशमी साड़ी धारण की हुई

---

1. वनपर्व 159/18.
2. आदि पर्व 72/3.
3. वा.रा. 7/26/18.
4. आदि पर्व 211/9-13.
5. भागवत 12/8/26-28.
6. मत्स्य 201/23-28.

पर्वत शिखर पर विचर रही थी। उसकी साड़ी का रंग पीला था, किन्तु उसके किनारे का भाग लाल रंग का था —

तस्यावस्त्रं विशालाक्ष्या: पीतं रक्त दशं शुभम्।
स्थितायाः पर्वतस्याग्रे मारुतोऽपाहरच्छनैः।।[1]

उर्वशी सुन्दर महीन वस्त्र से आच्छादित होकर तथा अत्यन्त महीन मेघ के समान श्याम वर्ण की सुन्दर ओढ़नी धारण करके अर्जुन से मिलने गई थी।[2] विविध वस्त्राभूषणों से विभूषित सैकड़ों गन्धर्व कुबेर की उपासना करते थे।[3] अप्सराएँ दिव्य वस्त्र, दिव्य माला और दिव्य गन्ध व अनुलेपन से युक्त होती थीं —

"दिव्याम्बर दिव्य माला दिव्यगन्धानुलेपना:।"[4]

इन्दीवर नामक गन्धर्व दिव्याम्बर, दिव्यमाला और दिव्याभूषण से अलंकृत था।[5] यक्षराज कुबेर विचित्र वस्त्र और आभूषण धारण करते थे —

तस्यां वैश्रवणो राजा विचित्राभरणाम्बरः।[6]

अर्जुन के जन्म के समय दिव्य हार, दिव्य वस्त्र और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं —

दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वालंकारभूषिताः।
उपगायन्ति बीभत्सुं नृत्यन्तेऽप्सरसां गणाः।।[7]

---

1. वा.रा. 4/66/11-12.
2. वनपर्व 46/10-15.
3. सभा पर्व 10/25-26.
4. स्कन्द 4/1/9/14.
5. मार्कण्डेय 60/54.
6. आदिपर्व 10/6.
7. आदिपर्व 122/53.

राजा जनक के प्रमदावन में शुकदेव के समक्ष आयी हुई वरांगनाएँ लाल वर्ण की महीन साड़ियों से सुशोभित थीं।[1] वस्त्रों तथा आभूषणों से अलंकृत वर्द्धिनी अप्सरा धर्मराज के पास गई थी।[2] समुद्र मंथन से उत्पन्न अप्सराएँ सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित एवं गले में स्वर्ण हार पहने हुए थीं।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ विविध वर्ण के वस्त्र धारण करते थे। मुख्य रूप से लाल, सफेद और नीले रंग के वस्त्रों का प्रचलन था। अप्सराएँ महीन वस्त्र धारण करती थीं। साड़ियों के किनारे भाग अलग रंग से रंगे होते थे। अप्सराएँ रेशमी वस्त्रों को अधिक पसन्द करती थीं। अप्सराएँ दिव्य वस्त्र धारण करती थीं।

आभूषण :--

प्राचीनकाल से अंगों को अलंकृत करने के लिए आभूषण का प्रयोग होते आया है। पुराणों में मुकुट, चूड़ामणि, कुण्डल, हार, केयूर, अंगद, अंगूठी, करधनी, नूपुर आदि विविध अलंकारों का उल्लेख हुआ है।

नाट्य शास्त्र में आभूषण के चार प्रकार बताये गये हैं -- आवेध्य, बंधनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य आभूषण --

चतुर्विधन्तु विज्ञेयं नाट्ये ह्याभरणं बुधैः।
आवेध्यं बन्धनीयञ्च क्षेप्यमारोप्यमेव च।।[4]

आवेध्य आभूषण :-- जो आभूषण शरीर को बींधकर धारण किये जाते हैं, वे आवेध्य आभूषण कहलाते हैं। जैसे कान और नासिका में धारण किये जाने वाले कुण्डलादि आभूषण।

---

1. शान्ति पर्व 325/33-35.
2. स्कन्द 3/2/3/72-77.
3. भागवत 8/8/7.
4. नाट्यशास्त्र 23/12.

बन्धनीय आभूषण :-- ये आभूषण शरीर पर ऊपर से बाँधे जाते हैं। जैसे भुजबंध और करधनी आदि।

प्रक्षेप्य आभूषण :-- जो आभूषण शरीर पर ऊपर से स्थापित किया जाता है, उसे प्रक्षेप्य आभूषण कहते हैं, जैसे पैरों पर नूपुर तथा शरीर पर वस्त्र धारण करना।

आरोप्य आभूषण :-- ये आभूषण शरीर पर ऊपर से आरोपित किये जाते हैं, जैसे -- विभिन्न प्रकार के हार, माला आदि का पहनना।

विविध अंगों के आभूषण :--

मुकुट और चूड़ामणि मस्तक पर धारण किये जाते हैं। चूड़ामणि को सिर के बीच में धारण किया जाता है -- "चूड़ामणि शिरोमध्ये।" और मुकुट ललाट के ऊपर प्रदेश में पहना जाता है -- "मुकुट ललाटोर्ध्वे।" कुण्डल, मोचक और कीला कान में धारण करने के आभूषण हैं। कुण्डल को कान के निचले भाग में, मोचक को कान के मध्य में तथा कीला या कर्णफूल को कान के ऊपरी भाग में धारण किया जाता है।[1]

मुक्तावली, हर्षक तथा सरसूत्रक ग्रीवा पर पहनने के आभूषण हैं। कटक और अँगूठी अँगुलियों के आभूषण हैं। छोटे बड़े की तरह बनी अँगूठी "कटक" कहलाती है। जो कमल, पक्षी आदि के आकार में निर्मित हो उसे अँगूठी या अँगुलीयक कहते हैं।[2] हस्तली तथा वलय बाहुओं के तथा रुचक और चूलिका कलाई के आभूषण हैं। रुचक कलाई पर धारण करके का सुवर्ण निर्मित अँगूठी के आकार का आभूषण होता है, जबकि चूलिका कलाई के ऊपरी भाग पर पहनने का

---

1. नाट्यशास्त्र 23/16, अभिनवभारती, भाग 3, पृष्ठ 111.
2. नाट्यशास्त्र 23/17, अभिनव भारती, भाग 3, पृष्ठ 111.

आभूषण है। केयूर तथा अंगद नामक आभूषण केहनी के ऊपर धारण किये जाते हैं। त्रिसर और हार वक्षस्थल के आभूषण हैं। मोतियों की लम्बी सर तथा पुष्पों की माला सम्पूर्ण शरीर के आभूषण हैं। तरल और सूत्र को कमर पर धारण किया जाता है। त्रिसर मोतियों की तीन लड़ियों से बना हार है। नाभि के नीचे तक लम्बे हार के बीच धारण किये जाने वाला आभूषण तरल कहा जाता है। तरल के नीचे पहनी जाने वाली माला को सूत्र कहते हैं।[1]

नाट्य शास्त्र में स्त्रियों के प्रमुख आभूषणों का उल्लेख हुआ है। स्त्रियाँ मस्तक पर शिखापाश, शिखापत्र, पिण्डीपत्र, चूडामणि, मकरिका, मुक्ताजाल, गवाक्ष तथा शीर्षजाल धारण करती थीं। शिखापाश मस्तक के ऊपर बालों में धारण करने का आभूषण है। ललाट पर तिलक पहना जाता था। शिखिपत्र, वेणीगुच्छ, मोचक, कर्णिका, कर्णवलय, पत्र-कर्णिका, कुण्डल, कर्णमुद्रा, कर्णभूषण, कर्णकील तथा रत्नों से जटित दन्तपत्र कान में धारण किये जाते थे। शिखिपत्र मोर के पूँछ की तरह अनेक रंग की मणियों से बना होता था। दन्तपत्र रत्न या हाथी दाँत का बना होता था।[2]

नेत्रों का अंजन तथा ओष्ठ का रंगना भी स्त्रियों का आभूषण है। मुक्तामाला, व्यालपंक्ति, मंजरी, रत्नमाला, रत्नावलि आदि गले के आभूषण हैं। अंगद तथा वलयबाहु के ऊपरी भाग में पहने जाते हैं। रत्नों के हार वक्षःस्थल के तथा मणियों की जाली उरोजों के आभूषण हैं। बाजूबन्द तथा खर्जूर बाहु में धारण किये जाते हैं। कटक, कलशाखा, हस्तपत्र, सपूरक, मुद्रा तथा अंगूठी अंगुलियों के आभूषण होते हैं। मौक्तिक

---

1. नाट्यशास्त्र 23/18-20, अभिनवभारती, भाग 3, पृष्ठ 112.
2. नाट्यशास्त्र 23/22-26.

जाल युक्त कांची, मेखला, रसना और तलक नामक आभूषण कटि में धारण किये जाते हैं। कांची एक सर की, मेखला आठ सरों की, रसना सोलह सरों की तथा कलाप या तलक पच्चीस सरों की होती है। बत्तीस, चौसठ तथा एक सौ आठ सरों के मुक्ताहार का भी उल्लेख मिलता है।[1]

नूपुर, किंकिणी, रत्नजाल तथा छेटिका नामक गहने गुल्फ के ऊपर धारण किये जाने वाले आभूषण हैं। पादपत्र नामक आभूषण जंघा में धारण किया जाता है। पैरों की अंगुलियों में अंगुलीयक {अंगूठी} तथा अंगूठे पर तिलक पहने जाते हैं। अलक्तक {महावर} से पैर के तलों पर अनेक प्रकार की रचनाएँ चित्रित की जाती हैं। यह अशोक पल्लव के समान रक्त वर्ण का होता है।[2]

श्रीमद्भागवत में वर्णित है, रासलीला में गोपियों की कलाइयों के कंगन {वलय}, पैरों के पायजेब तथा कमर की किंकिणी बज उठी थीं। उनके कुण्डल हिलकर कपोलों पर आ जाते थे तथा वस्त्र उड़ रहे थे।[3] उनकी चोटियों में पुष्प गुथे हुए थे तथा वे पुष्पों के हार धारण की हुई थीं।[4] कृष्ण जन्म के समय गोपियों ने सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा अंजन से श्रृंगार किया था। उनका मुख कुंकुम से, कान मणि जटित कुण्डलों से, गला सोने के हार से सुशोभित था। उनके शरीर में रंग-बिरंगे वस्त्र तथा चोटियों में पुष्प के हार गुथे हुए थे तथा हाथों में जड़ाऊ कंगन थे।[5]

समस्त आभूषणों से विभूषित अप्सराओं ने भगवान् वामन के समीप नृत्य किया था।[6] इन्दीवर गन्धर्व दिव्य आभूषण से अलंकृत था।[7]

---

1. नारदशास्त्र 23/28-38.
2. नारदशास्त्र 23/39-41.
3. भागवत 10/33/6-8.
4. भागवत 10/33/16-18.
5. भागवत 10/15/9-11.
6. हरिवंश 3/70/8-9.
7. मार्कण्डेय 60/54.

यक्षराज कानों में कुण्डल तथा विभिन्न अंगों में विचित्र आभूषण धारण करते थे।[1] गन्धर्वगण विविध आभूषणों से विभूषित रहते थे।[2] अंजना के अंगों में रेशमी साड़ी तथा फूलों के विचित्र आभूषण थे।[3] उर्वशी चमकीले और मनोभिराम आभूषण धारण करके अर्जुन से मिलने गई थी। उनके कटि में करधनी की लड़ियाँ सुशोभित थीं तथा पैर में नूपुर बज रहे थे।[4]

अर्जुन के जन्म के समय दिव्य हार और आभूषणों से अलंकृत अप्सराएँ नृत्य करने लगी थीं।[5] तिलोत्तमा दिव्य आभूषण धारण करके सुन्द और उपसुन्द दैत्यों के समीप गई थी।[6] वर्गा नामक अप्सरा समस्त आभूषणों से विभूषित थी।[7] मारीच के आश्रम के समीप दिव्य आभूषणों से अलंकृत अप्सराएँ विचर रही थीं।[8] रम्भा दिव्य आभूषण धारण करके नलकूबर से मिलने जा रही थी। उसका पीनजघनस्थल कांची की लड़ियों से विभूषित था।[9] पुंजिकस्थला अप्सरा चोटियों में पुष्प गुंथे हुए थी और पुष्प माला धारण की हुई थी।[10] सुवर्ण, मणि, मुक्ता और मूँगों से निर्मित आभूषणों से सुशोभित बीस हजार दिव्य अप्सराएँ भारद्वाज के आश्रम में भरत के आतिथ्य-सत्कार के लिए गई थीं।[11] वर्द्धिनी अप्सरा किंकिणी से विभूषित तथा नूपुर की ध्वनि से झंकृत होती हुई धर्मराज के पास गई थी।[12] मेनका सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत होकर नन्दन वन में विष्णु शर्मा के तप में विघ्न करने लगी थी।[13] तिलोत्तमा की किंकिणियों एवं कंगनों की ध्वनि से दुर्वासा का ध्यान भंग हो गया था।[14]

---

1. सभापर्व 10/5-6.
2. सभापर्व 10/25-26.
3. वा.रा. 4/66/11
4. वनपर्व 46/2-15.
5. आदिपर्व 122/53.
6. आदिपर्व 211/15.
7. आदिपर्व 215/12.
8. वा.रा. 3/35/16.
9. वा.रा. 7/26/14-40.
10. भागवत 12/8/26-28.
11. वा.रा. 2/91/44.
12. स्कन्द 3/2/3/72-77.
13. संक्षिप्त स्कन्द पृष्ठ 192.
14. ब्रह्मवैवर्त 23/136.

माला :--

प्राचीनकाल से माला का उपयोग अलंकार के रूप में होता आया है। अप्सराएँ अपनी चोटियों में पुष्प गूँथती थीं तथा पुष्प की माला धारण करती थीं। नाट्य शास्त्र में पाँच प्रकार की माला का उल्लेख हुआ है -- वेष्टिम, वितत, संघात्य, ग्रंथिम, तथा प्रालम्बित माला। -- वेष्टिमं विततञ्चैव संघात्यं ग्रन्थिमन्तथा।
प्रालम्बितं तथा चैवमाल्यं पञ्चविधं स्मृतम्।।[1]

वेष्टिम माला हरी पत्तियों तथा पुष्पों को गूँथकर बनाया जाता है। वितत माला में पुष्पों को प्रसृत रूप में रखा जाता है। संघात्य माला में पुष्पों के डंठल सूत्र में बाँधकर गूँथे होते हैं। ग्रन्थिम माला में केवल पुष्पों को गूँथकर माला बनायी जाती है। प्रालम्बित माला लम्बी और लटकी हुई बनायी जाती है। इन मालाओं को शरीर के विभिन्न अंगों में धारण किया जाता था।

स्वर्ग की अप्सराएँ रक्त वर्ण के पुष्पों से विभूषित चोटी धारण करती हैं तथा विचित्र वेशभूषा से मनोहर दिखाई देती हैं।[2] अंजना पुष्पों की विचित्र मालाओं से अलंकृत होकर पर्वत शिखर पर विचर रही थी।[3] उर्वशी ने अर्जुन के पास जाने के लिए सुगंधित दिव्य पुष्पों के हार से अपने शरीर को सुसज्जित किया था। उसके केशों की वेणी में कुमुद के पुष्पों के गुच्छे लगे हुए थे। हारों से विभूषित उर्वशी के स्तन हिल रहे थे।[4] चित्ररथ का केश पुष्प-मालाओं से सुशोभित था।[5] तिलोत्तमा पुष्प चुनती हुई सुन्द और उपसुन्द दैत्य

---

1. नाट्यशास्त्र 23/11.
2. वा.रा. 4/24/34.
3. वा.रा. 4/66/11.
4. वनपर्व 46/2-8.
5. आदिपर्व 169/31-33.

के निकट गई थी।[1] पुष्प माला को धारण की हुई अप्सराएँ मारीच के आश्रम के समीप विचरण कर रही थीं।[2] रम्भा दिव्य वस्त्राभूषण से विभूषित होकर तथा केशपाश में पारिजात के पुष्प गूँथकर नलकूबर से मिलने जा रही थी।[3] गन्धर्वराज चित्ररथ कमलों की माला धारण करके गंगा में अप्सराओं के साथ जलक्रीडा कर रहा था।[4] पुंजिकस्थली अप्सरा चोटी में पुष्प गूँथी हुई थी तथा माला धारण की हुई थी।[5] नाना प्रकार के आभूषण एवं मालाओं से अलंकृत वर्द्धिनी अप्सरा धर्मराज के पास गई थी।[6] इन्दीवर गन्धर्व दिव्य वस्त्र, माला और आभूषण से विभूषित था।[7]

उपर्युक्त वर्णन से विदित होता है कि पुष्प एवं माला का प्रयोग शरीर के विविध अंगों को अलंकृत करने के लिए किया जाता था। पुष्प के गुच्छों से स्त्रियाँ अपनी चोटियों को सजाती थीं। पुष्प माला को गले में धारण किया जाता था। ये मालायें विविध रूपों में बनायी जाती थीं।

केश विन्यास :--

स्त्री पुरुष दोनों विविध प्रकार से केश-सज्जा करते थे। स्त्रियों में वेणी गूँथने, जूड़ा बाँधने तथा माँग निकालने का प्रचलन था। पुरुष लम्बे बाल रखते थे। साधु-सन्यासी श्मश्रु दाढ़ी रखते थे। स्त्रियाँ आकर्षक ढंग से केश विन्यास करती थीं। स्त्रियाँ वेणी में पुष्प गूँथती थीं। घुंघराले केश भी अलंकारों की तरह आकर्षक होते हैं।

---

1. आदिपर्व 211/11.
2. वा.रा. 3/35/16.
3. वा.रा. 7/26/14-15.
4. भागवत 9/16/2.
5. भागवत 12/8/26-27.
6. स्कन्द 3/2/3/72-77.
7. मार्कण्डेय 60/54-55.

वाजसनेयि संहिता में देवी सिनीवली को सुन्दर वेणी वाली कहा गया है।[1] शतपथ ब्राह्मण में वेणी बाँधने का उल्लेख हुआ है।[2] महाभारत में वर्णित है कि उर्वशी अपने कोमल और घुँघराले केशों के समूह को वेणी के रूप में आबद्ध करके उसमें कुमुद पुष्पों के गुच्छे लगाकर अर्जुन से मिलने गई थी।[3] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि रम्भा दिव्य वस्त्राभूषण से विभूषित होकर तथा केशपाश में पारिजात के पुष्प गूँथकर नलकूबर से मिलने जा रही थी।[4] भागवत में लिखा है कि पुंजिकस्थली अप्सरा की चोटी में गूँथे हुए पुष्प गिरते जा रहे थे।[5] गोपियों की चोटियों में पुष्प गूँथे हुए थे।[6]

अंगराग :--

अंग प्रत्यंगों की शोभा के लिए अंगराग, लेपन आदि का प्रयोग भी किया जाता था। हाथ पैरों पर मेंहदी-महावर रंगने का प्रचलन था। स्त्रियाँ माथे पर कुड्.कुम की बिन्दियाँ लगाती थीं। अनुलेप में सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग किया जाता था। स्नान के पश्चात् पुष्पों से सज्जित होने और चन्दन, तगर, नागकेशर, बकुल, अगुरू आदि सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग किया जाता था।

पद्म पुराण में चन्दन, अगुरू (अरगजा), कर्पूर तथा कुंकुम का अनुलेपन के रूप में उल्लेख किया गया है --

"श्रीखण्डागुरूकर्पूर कुड्.कुमादि विलेपनम्।"[7]

---

1. वाजसनेयि संहिता 11/56.
2. शतपथ ब्राह्मण 4/1/1, 13/4/3, 6/5/1/10.
3. वनपर्व 46/2-5.
4. वा.रा. 7/26/14-15.
5. भागवत 12/8/26.
6. भागवत 10/33/16.
7. पद्म 5/

उर्वशी स्तन पर दिव्य अंगराग लगाकर अर्जुन से मिलने गई थी। वे दिव्य चन्दन से चर्चित हो रही थीं।[1] गन्धर्वों ने राजा अवीक्षित और उसकी पत्नी को वस्त्र और माला के साथ अनुलेपन भी उपहार में प्रदान किया था।[2] तिलोत्तमा दिव्य सुगन्ध युक्त अंगराग आदि लगाकर सुन्द और उपसुन्द दैत्यों के निकट गई थी।[3] रम्भा अपने अंगों में दिव्य चन्दन का अनुलेप करके नलकूबर से मिलने जा रही थी।[4] चन्दन से चर्चित वर्द्धिनी अप्सरा धर्मराज का तपोविघ्न करने के लिए गई थी।[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं में वेशभूषा के रूप में वस्त्र, आभूषण, माला, अनुलेप, केशविन्यास, काजल, बिन्दी, मेंहदी एवं महावर का प्रयोग होता था। रेशमी एवं सूती वस्त्रों का प्रयोग होता था। आभूषण, सुवर्ण, रजत, मणि, मूँगा एवं रत्नों से निर्मित होते थे। पुष्पों से विविध प्रकार की मालायें बनायी जाती थीं। चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का अनुलेपन अंगों में लगाया जाता था। केश को स्त्रियाँ वेणी बनाती तथा जूड़ा बाँधती थीं। वे वेणी में पुष्प-गुच्छ लगाती थीं।

---

1. वन पर्व 46/5-10.
2. मार्कण्डेय 124/21.
3. आदिपर्व 211/15.
4. वा.रा. 7/26/14-15.
5. स्कन्द 3/2/3/77.

भोजन

पुराणों में यत्र-तत्र यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के खानपान का उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण के अनुसार यक्षगण कच्चा मांस खाते हैं तथा कुत्सित जीवों का भक्षण करते हैं।[1] वायु पुराण में उल्लिखित है कि कश्यपजी ने यक्ष और राक्षस को रक्त और चर्बी भक्षण का आदेश दिया था। वे प्राणियों की हिंसा में तत्पर होते हैं तथा कुत्सित एवं अखाद्य वस्तुओं का भोजन करते हैं। उनके आहार बहुत अधिक और भीषण होते हैं।[2] यक्षगण केवल देखकर मनुष्यों के रक्त-मांस एवं चर्बी का पान कर लेते हैं।[3] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि यक्ष और राक्षस समरांगण में मृत व्यक्तियों के रक्त का पान करते हैं तथा मांस खाते हैं। वे रक्त में स्नान कर पितरों और देवताओं को मांस का तर्पण करते हैं।[4] .... भागवत पुराण में लिखा है कि धनाध्यक्ष कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत हो गये थे।[5]

इस प्रकार यक्षगण मुख्य रूप से रक्त, मांस और चर्बी का आहार के रूप में प्रयोग करते थे। इनके खानपान के सम्बन्ध में बहुत कम वर्णन है। गंधर्व और अप्सराएँ फलों एवं अन्नों का आहार ग्रहण करती हैं। वायु पुराण में लिखा है यक्ष और गन्धर्व आम्रफल के सुस्वादु रस को बड़े चाव से पीते हैं। वे फलों को बड़ी प्रसन्नता से खाते हैं।[6] यक्ष और गन्धर्व मधुर जम्बू रस को पीते हैं।[7] देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पिशाचादि अग्नि में हुत अन्न को

---

1. मत्स्य 180/10.
2. वायु 69/103-109.
3. वायु 69/196-197.
4. मत्स्य 153/131-137.
5. भागवत 10/10/
6. वायु 38/5 व 21.
7. वायु 35/31.

करते हैं।[1] महेन्द्र पर्वत पर रहने वाले गन्धर्व गण मदिरापान करते थे।[2] पदम पुराण के अनुसार गन्धर्व स्नान करने वाले व्यक्ति के नेत्रों से गिरने वाले जल को ग्रहण करते हैं।[3]

आमोद-प्रमोद के साधन

पौराणिक अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ आमोद-प्रमोद के लिए नृत्य एवं संगीत का विशेष रूप से प्रयोग करते थे। कुबेर की सभा अप्सराओं के नृत्य तथा गन्धर्वों के गीत एवं वाद्य से निनादित रहती है। गन्धर्वगण जुआ के द्वारा भी मनोरंजन करते थे। जल विहार के द्वारा भी यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ मनोरंजन करती हैं। गन्धर्वों के निवास स्थान गीत तथा वाद्यों के निनाद से सदैव गुंजायमान रहते थे।[4] गन्धर्वजन गीत, नृत्य, वाद्य आदि के द्वारा देवताओं का मनोरंजन करते थे।[5]

नाट्यशास्त्र में उल्लिखित है कि इन्द्रध्वज उत्सव में नाट्य के साथ संगीत के लिए गन्धर्वों की तथा नृत्य के लिए अप्सराओं की योजना की गई थी।[6] श्रीराम के जन्म तथा विवाह के समय गन्धर्व तथा अप्सराओं का गान तथा नृत्य हुआ था।[7] यज्ञ से निवृत्त होने पर श्रीराम के समक्ष लव और कुश के संगीत का प्रदर्शन किया गया था।[8] भरत का मनोरंजन करने के लिए गान, नृत्य, वादन, नाटक आदि का आयोजन किया गया था।[9]

---

1. वायु 15/16.
2. वा.रा. 4/67/45.
3. संक्षिप्त पदम पृष्ठ 186.
4. शान्तिपर्व 38/41.
5. वनपर्व 19/982-83, वायु 69/3.
6. नाट्यशास्त्र 1/12-19.
7. वा.रा. 1/18/16-17, 1/73/38-39.
8. वा.रा. 6/94/30-31.
9. वा.रा. 2/15/4.

श्रीराम तथा सीता के मनोरंजन के लिए वनवाटिका में गीत तथा नृत्य नर्तकियों द्वारा प्रस्तुत किया गया।[1] तपस्वियों को लुभाने के लिए अप्सराओं को नृत्य तथा गान के लिए नियुक्त किया जाता था।[2] शिवजी की उपासना में गन्धर्व तथा अप्सराएँ गीत व नृत्य का प्रदर्शन करते थे।[3] यज्ञ के अवसर पर मनोरंजन के लिए गान तथा नाट्य का प्रदर्शन किया जाता था।[4] अप्सराएँ तथा गन्धर्व नृत्य, वाद्य, गीत तथा नाना प्रकार हास्यों द्वारा इन्द्र का मनोरंजन करते थे।[5] इन्द्र सभा में अर्जुन के मनोरंजन के लिए गन्धर्वों तथा अप्सराओं का नृत्य-गान हुआ था।[6]

मंदाकिनी में अप्सराएँ जलविहार का आनन्द ले रही थीं।[7] गन्धर्वराज चित्रसेन ने सेवकों के साथ द्वैतवन सरोवर को जलविहार के लिए घेर लिया था।[8] सोमाश्रयण तीर्थ में चित्ररथ अपनी स्त्रियों के साथ गंगा में जलक्रीड़ा कर रहा था।[9] परशुराम की माता रेणुका, गंगा में जल-विहार करते हुए गन्धर्वराज चित्ररथ और अप्सराओं को देखने लगी थीं, जिससे उन्हें पति का कोपभाजन होना पड़ा था।[10] चैत्ररथ वन में गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरा आदि सदैव क्रीड़ा-विहार करते हैं।[11] उर्वशी पुरूरवा के साथ विविध वनों में विहार करती रही।[12] गंगा के तट पर शिव-पार्वती के साथ गन्धर्व और अप्सराएँ क्रीड़ा-विहार कर रहे थे।[13]

---

1. वा.रा. 6/42/21-22.
2. स्कन्द 3/1/39/65-68; ब्रह्म 178/15-20.
3. हरिवंश 3/86/13-15.
4. हरिवंश 2/91/26.
5. सभापर्व 7/24-25.
6. वनपर्व 46/28.
7. नारदीय 1/62/23.
8. वनपर्व 240/21-23.
9. आदिपर्व 169/3-5.
10. भागवत 9/16/2-5.
11. वा.रा. 4/43/39-52.
12. हरिवंश 3/26/5.
13. हरिवंश 2/117/1-5.

गन्धर्वगण द्यूतक्रीड़ा के द्वारा भी मनोरंजन करते थे। विश्वावसु द्यूत क्रीड़ा में कुशल थे। उन्होंने इन्द्र लोक में जुआ खेलते हुए राजा प्रमति के पास इन्द्र की धन सम्पत्ति सहित उर्वशी को भी जुआ में हार गया था, तब चित्रसेन ने राजा प्रमति को जुआ में हराकर इन्द्रलोक की धनसम्पत्ति तथा उर्वशी को जीतकर राजा प्रमति को बन्दी बना लिया था।[1]

महाभारत में कौरव और पाण्डवों के मध्य भी जुआ खेलने का उल्लेख हुआ है। जुआ के कारण ही द्रौपदी का सभा के मध्य चीरहरण हुआ था तथा पाण्डवों को अपना राज्य त्यागकर वनवास जाना पड़ा था। मनोरंजन के लिए चित्रकला का भी प्रचलन था। चित्रलेखा अप्सरा चित्रकला में दक्ष थी। उन्होंने प्रमुख देवता, असुर, गन्धर्व, मनुष्य आदि को चित्रपट में चित्रित करके अपनी सखी ऊषा को दिखाया था।

इस प्रकार गन्धर्वों तथा अप्सराओं में मनोरंजन के लिए नृत्य, वाद्य, गीत, जलक्रीड़ा, वन-विहार, जुआ, चित्रकला आदि के प्रचलित होने का उल्लेख प्राप्त होता है।

---

1. ब्रह्म 171/7-15.

सदाचार

वैदिक एवं पौराणिक संस्कृति का आधार सदाचार या श्रेष्ठ चरित्र है। समस्त धर्मों का आधार सदाचार ही है। सदाचार और नैतिकता के परिपालन से आत्मबल की वृद्धि होती है। व्यक्ति आचारनिष्ठ होकर ही सभ्य और सुसंस्कृत समाज का निर्माण कर सकता है। किसी राष्ट्र के उत्थान के लिए चरित्रवान् नागरिक होना आवश्यक है और चरित्र निर्माण के लिए सदाचार का पालन करना आवश्यक होता है।

शरीर और आत्मा की शुद्धि के लिए रागद्वेष, मोह, क्रोध, लोभ आदि का परित्याग करते हुए जो आचरण किया जाता है, उसे ही सदाचार कहते हैं। इसमें पाप कर्म का त्याग और पुण्य कर्म का अर्जन होता है। मत्स्य पुराण के अनुसार दान, सत्य, तपस्या, निर्लोभता, विद्या, यज्ञानुष्ठान, पूजन और इन्द्रिय-निग्रह -- ये आठ शिष्टाचार के लक्षण हैं --

दानं सत्यं तपो लोभो विद्येज्या पूजनं दमः।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्।।[1]

स्कन्द पुराण में वर्णित है कि राग और द्वेष से रहित उत्तम बुद्धि वाले महापुरुष जिसका पालन करते हैं, वही सदाचार है। प्रत्येक मनुष्य को श्रद्धालु एवं अदोषदर्शी होकर भली-भाँति सदाचार का पालन करना चाहिए। अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मों में सदाचार का सेवन करना चाहिए। धर्म की इच्छा रखने वाले पुरुष को यम-नियमों का पालन यत्नपूर्वक करना चाहिए। सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, क्रूरता का अभाव, अहिंसा,

---

1. मत्स्य 145/38.

दम, सदा प्रसन्न रहना, मधुर बर्ताव करना और सबके प्रति कोमलभाव रखना -- ये दस यम हैं। शौच, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और इन्द्रियों का दमन -- ये दस नियम कहे गये हैं --

सत्यं क्षमाऽऽर्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम्।
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश।।
शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम्।
उपोषणोपस्थदण्डौ दशैते नियमाः स्मृताः।।[1]

सदाचार से विहीन व्यक्ति के मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकते। आचार परम धर्म है। आचार उत्तम तप है, आचार से आयु बढ़ती है और आचार से समस्त पापों का क्षय होता है। इसलिए मनुष्यों को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए।[2] पद्म पुराण के अनुसार आचार से आयु, धन, स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। आचार अशुभ लक्षणों का निवारण करता है। आचारहीन मनुष्य संसार में निन्दित, दुःखी, रोगी और अल्पायु होता है।[3]

पतिव्रता स्त्रियों के सदाचार का वर्णन करते हुए उल्लिखित है कि पति स्त्री के लिए वाणी, शरीर और क्रिया द्वारा देवता की भाँति पूजनीय है। वह धर्म के कार्य में सदा पति के अनुकूल रहे, धन खर्च करने में संयम से काम ले और शरीर को सदा पवित्र बनाये रखे। पति की मङ्गल कामना करे, उनसे सदा प्रिय वचन बोले, माङ्गलिक कार्य में संलग्न रहे, घर को सजाती रहे और वस्तु को प्रतिदिन साफ-सुथरी रखने की चेष्टा करे। प्रतिदेव घर पर आवें तो उनका उठकर स्वागत करे। आसन और जल देकर अभिनंदन करे। दूसरे पुरुष से वार्तालाप, असन्तोष, पराये कार्यों की चर्चा, अधिक हँसी और अधिक रोष उत्पन्न होने के अवसर का सर्वथा त्याग करे।

---

1. स्कन्द 4/2/5/19-21. 2. स्कन्द 4/1/35/15.
3. पद्म 1/46.

स्त्रियों को अधिक आलस्य, अत्यधिक नींद, कलह में रुचि रखना, जोर-जोर से हँसना, दूसरों से हास-परिहास करना, पराये पुरुषों का चिन्तन करना, इच्छानुसार घूमना, निर्लज्जता का बर्ताव करना और आवश्यकता के बिना दूसरे के घर जाना — इन सबका प्रयत्न पूर्वक त्याग कर देना चाहिए।

गन्धर्वराज धनवाहन और उसकी पुत्री गन्धर्वसेना ने सदाचार का पालन करते हुए सोमवार व्रत के साथ शिवलिंग का पूजन किया था।[1] हरिकेश यक्ष सदाचार के साथ शिव भक्ति करते थे।[2] चित्ररथ गन्धर्व की पत्नी कुम्भीनसी ने अपने पति को अर्जुन की कैद से मुक्त करने के लिए युधिष्ठिर से निवेदन किया था।[3] उपबर्हण की पत्नी मालावती ने अपनी पति को जीवित करने के लिये भगवान् विष्णु को मजबूर किया था।[4] मणिभद्र नामक यक्ष के पुत्र सदाचारी और पुण्यात्मा थे।[5]

संस्कार

भारतीय जीवन में संस्कार का अत्यधिक महत्व है, यह स्मृतियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। संस्कार के द्वारा मानव को संस्कारित करके सभ्य व सुसंस्कृत बनाया जाता है, जिससे वह पाप तथा अज्ञान से दूर रहकर आचार-विचार से सम्पन्न हो सके। संस्कार विहीन व्यक्ति धर्मकर्मादि का अधिकारी नहीं होता। संस्कार ही संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष के साधन हैं।

---

1. स्कन्द 7/25/59-60.
2. मत्स्य 180/10-20.
3. आदिपर्व 169/34-37.
4. ब्रह्मवैवर्त 1/18.
5. वायु 69/150-157 एवं ब्रह्माण्ड 2/7/119-126.

संस्कार का अर्थ परिष्कार या सुसंस्कृत करना है। किसी को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है। मीमांसा दर्शन के आचार्य जैमिनी ने संस्कार शब्द का प्रयोग "उपनयन" के अर्थ में किया है। इसकी व्याख्या करते हुए शाबर स्वामी ने लिखा है कि जिसके करने या होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के लिए योग्य बनता है, वह संस्कार है --

"संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जातो पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य।"[1]

तंत्र वार्तिक के अनुसार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ जो योग्यता प्रदान करती हैं, संस्कार कहलाती हैं --

"योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारो इत्युच्यन्ते।"

अतः संस्कार का अभिप्राय उन क्रियाओं से है, जिनसे मानव की शारीरिक और मानसिक पवित्रता होती है। इससे दोषों का परि-मार्जन एवं गुणों का विकास होता है। इससे आत्मा और शरीर दोनों की शुद्धि होती है।

संस्कार के भेद :--

स्मृतियों में संस्कार दो प्रकार के बताये गये हैं -- ब्राह्म {स्मार्त} संस्कार और दैव {श्रौत} संस्कार। इनसे व्यक्ति मलिनताओं से मुक्त होकर शुद्ध और सत्त्वभाव को प्राप्त करता है। दोनों संस्कारों के तीन-तीन भेद हैं -- गर्भाधान, अनुव्रत और धर्मशुद्धि। गर्भाधान के आठ, अनुव्रत के आठ और धर्मशुद्धी संस्कार के पाँच भेद बताये गये हैं।

---

1. मीमांसा शाबरभाष्य 3/1/3.

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन और चूडाकर्म -- ये आठ गर्भाधान संस्कार के भेद हैं। इसी प्रकार कर्णवेध, उपनयन, व्रतादेश, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अग्नि परिग्रह -- ये अनुव्रत संस्कार के अष्ट भेद हैं। ये संस्कार ही सम्मिलित रूप से षोडश संस्कार के रूप में प्रसिद्ध हैं। व्यास स्मृति में षोडश संस्कारों के नाम इस प्रकार हैं -- (1) गर्भाधान, (2) पुंसवन, (3) सीमन्तोन्नयन, (4) जातकर्म, (5) नामकरण, (6) निष्क्रमण, (7) अन्नप्राशन, (8) वपन (चूडाकर्म), (9) कर्णवेध, (10) व्रतादेश, (11) वेदारम्भ, (12) केशान्त, (13) वेदस्नान (समावर्तन), (14) विवाह, (15) विवाहाग्नि परिग्रह तथा (16) त्रेताग्नि संग्रह --

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोजातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमणेऽन्नप्राशनं वपन क्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेशा वेदारम्भ क्रिया विधिः।
केशान्त स्नानमुद्वाहो विवाहाग्नि परिग्रहः।
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।।[1]

गृह्य सूत्रों में वर्णित सोलह संस्कारों में वानप्रस्थ, सन्यास और अन्त्येष्टि कर्म को भी परिगणित किया गया है। मनुस्मृति में उल्लिखित है कि गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक संस्कारों की परम्परा है।[2] इस प्रकार कुछ विद्वान् अन्त्येष्टि कर्म को भी षोडश संस्कार के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।

इसके अतिरिक्त शरीर शुद्धि, द्रव्यशुद्धि, अर्थशुद्धि, मनः-शुद्धि और भावशुद्धि -- ये पाँच धर्मशुद्धि संस्कार के भेद हैं। यह श्रौत संस्कार के अधिक निकट होने के कारण प्रचलित नहीं है।

---

1. व्यास स्मृति 1/13-15. 2. मनुस्मृति 2/16.

षोडष संस्कारों में प्रारम्भ के तीन संस्कार -- गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन -- जन्म से पूर्व सम्पादित होते हैं। मनुस्मृति के अनुसार गर्भाधान, जातकर्म, वपन और उपनयन आदि संस्कारों से माता पिता के वीर्य एवं गर्भ-सम्बन्धी सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।[1] स्कन्द पुराण के अनुसार गर्भाधान से अन्त्येष्टि कर्म तक समस्त क्रियाएँ वैदिक मंत्रों से सम्पन्न होती हैं। कन्याओं के समस्त संस्कार बिना मंत्र के करने का विधान है। केवल विवाह संस्कार मंत्र से करना चाहिए।[2]

संस्कारों का संक्षिप्त परिचय :--

संस्कारों में मुख्य रूप से सोलह संस्कारों का विशेष रूप से स्मृति एवं पुराणों में वर्णन किया गया है। इन्हीं का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है :--

1. गर्भाधान :--

अथर्ववेद में गर्भाधान संस्कार का उल्लेख मिलता है।[3] यह संस्कार गर्भ स्थापन के समय होता है। किन्तु शंख स्मृति के अनुसार रजो धर्म के प्रकट होने पर गर्भाधान संस्कार होता है।[4] कुछ मतानुसार विवाह के बाद प्रथम संभोग के समय ही गर्भाधान संस्कार किया जाना चाहिए, जबकि अन्य मत में प्रत्येक मासिक धर्म के बाद गर्भाधान संस्कार करना चाहिए।[5] स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य के मिथुन भाव से

---

1. मनुस्मृति 2/27.
2. स्कन्द पुराण 4/1/36.
3. अथर्ववेद 5/25.
4. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/11, व्यास स्मृति 1/16, शंख स्मृति 2/1.
5. मेधातिथि मनु स्मृति 2/16.

संतान का गर्भाधान होता है। प्रत्येक गर्भस्थ जीव वीर्य व गर्भजनित दोषों से प्रभावित होता है। गर्भाधान संस्कार द्वारा उसका परिमार्जन होता है। इस संस्कार को वैदिक मंत्र से करना चाहिए। स्कन्द पुराण में वर्णित है कि ऋतुकाल में रजस्वला स्त्री के स्नानादि से शुद्ध हो जाने पर गर्भाधान करे। गर्भाधान कर्म में मूल और मघा नक्षत्र को त्याग देना चाहिए।[1] विधिपूर्वक संस्कार युक्त गर्भाधान से अच्छी और योग्य संतान उत्पन्न होती है।

2. <u>पुंसवन संस्कार :--</u>

अथर्ववेद में पुंसवन शब्द का उल्लेख हुआ है। इसका अर्थ पुत्र को जन्म देना है।[2] गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का विस्तृत वर्णन किया गया है। संस्कार प्रकाश के अनुसार पुत्रोत्पत्ति के कारण ही इसका नाम पुंसवन पड़ा -- "पुंमान् प्रसूयते येन, तद् पुंसवनमीरितम्।" यह संस्कार गर्भाधान के तीसरे मास में करने का विधान है।[3] इसके द्वारा गर्भस्थ जीव में पुरूष भाव का आधान किया जाता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जीव में पुरूष- भ्रूण की अधिकता हो तो पुरूष और स्त्री-भ्रूण की अधिकता होने पर स्त्री भाव का आधान होता है --

"पुंमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्रीभावत्यधिके स्त्रियः।"

इसलिए इस संस्कार में पुरूष-भ्रूण के पोषण, बल और अधिकता के लिए मंत्र के साथ वटशुंग, कुश तथा दूर्वा आदि का रस गर्भिणी के नासिका के द्वारा डाला जाता है और कुछ आयुर्वेदिक औषधियों

1. स्कन्द 4/1/36.
2. अथर्ववेद 6/11/1.
3. व्यास स्मृति 1/16.

का सेवन कराया जाता है। अतः पुंसवन संस्कार का उद्देश्य गर्भ को स्वस्थ और पुष्ट रखना है।

श्रीमद्भागवत में वर्णित है कि स्त्री पहले सुहागिनी स्त्रियों की पूजा करे। तत्पश्चात् पति की पूजा करके उसकी सेवा में लगी रहे और यह भावना करती रहे कि पति का तेज उसके गर्भ में स्थित है। इस व्रत को पुंसवन कहते हैं।[1] यह व्रत समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। यह व्रत पति की आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष प्रतिपदा से प्रारम्भ करना चाहिए।[2] स्कन्द पुराण के अनुसार उदरस्थ गर्भ के चलने-फिरने से पहले ही उसका पुंसवन संस्कार हो जाना चाहिए।[3]

3. <u>सीमन्तोन्नयन संस्कार :--</u>

लघु आश्वलायन स्मृति के अनुसार स्त्री के केशों को विभक्त करने को सीमन्त कहते हैं। यह सधवा स्त्री का चिन्ह है और सौभाग्य प्रदान करने वाला है --

कृतकेशा विभागं स्याद् योषिद् भालाग्रभागतः।
सीमन्तं सधवा चिह्नं सदा सौभाग्य दायकम्।।[4]

अधिकांश विद्वानों ने इस संस्कार को छठें अथवा आठवें मास में करने का निर्देश किया है।[5] स्त्रियों के केशपाश को दो समान भागों में बाँटने वाली सिन्दूर रेखा को सीमन्त कहा जाता है। इस संस्कार का उद्देश्य गर्भपात को रोकना है। इसमें स्त्री की माँग में स्नुही के काँटे का स्पर्श कराया जाता है और मंत्रों के साथ सोम आदि देवताओं की पूजा की जाती है।

---

1. भागवत 6/18/53-54.
2. भागवत 6/19/2.
3. स्कन्द 4/1/36.
4. लघु आश्वलायन स्मृति 4/11.
5. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/11, शंख स्मृति 2/2, वसिष्ठ स्मृति 4/121, लघु आश्वलायन स्मृति 4/2, स्कन्द 4/1/36.

4. जातकर्म संस्कार :—

यह संस्कार शिशु के जन्म होने के पश्चात् किया जाता है। प्रसव के तुरन्त बाद जातकर्म संस्कार सम्पन्न करना चाहिए।[1] इसका उद्देश्य बालक की वृद्धि करना है। नालच्छेद से पूर्व शिशु को सुवर्ण पात्र में दधि, घृत और मधु मिलाकर चटाया जाता है।[2] और मंत्रों के साथ शिशु की जिह्वा में सुवर्ण की शलाका से वेद लिखा जाता है।

कश्यप जी ने भगवान् वामन का जातकर्म संस्कार किया था।[3] नन्द जी ने श्रीकृष्ण का जातकर्म संस्कार करवाया था।[4] वाल्मीकि ने लव और कुश के जातकर्म संस्कार किये थे।[5] और्व मुनि ने सगर का जातकर्म संस्कार किया था।[6] सम्राट चित्रकेतु ने अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार करवाया था।[7] राजा अवीक्षित के पुत्र का जातकर्म संस्कार तुम्बुरु ने किया था।[8] भारद्वाज मुनि ने अपनी पुत्री श्रुतावती का जातकर्म संस्कार किया था।[9]

5. नामकरण संस्कार :—

इस संस्कार में शिशु का नाम रखा जाता है। यह संस्कार प्रसव के ग्यारहवें दिन सम्पन्न होता है। स्मृतियों में वर्णित है कि नाम ऐसे हो, जिनसे सात्विक और पवित्रभाव निकले और जो उसके

---

1. व्यास स्मृति 1/17.
2. मनुस्मृति 2/29.
3. भागवत 8/18/13.
4. भागवत 10/15/1.
5. भागवत 9/11/11.
6. हरिवंश 1/14/11.
7. भागवत 6/14/32.
8. मार्कण्डेय 124/26.
9. शल्य 48/65.

कर्तव्यों को सूचित करे तथा जो सुनने में अच्छा लगे। नामकरण ग्यारहवें दिन अथवा पुण्यतिथि, मुहूर्त और शुभ नक्षत्र में करना चाहिए। शिशु का नाम मनोहर, मंगलसूचक, अन्त में दीर्घस्वर वाला और आशीर्वाद सूचक होना चाहिए।

याज्ञवल्क्य और व्यास स्मृति के अनुसार जन्म के ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार करना चाहिए।[1] किन्तु मनु स्मृति में जन्म के दसवें या बारहवें दिन या शुभ तिथि तथा मुहूर्त में नामकरण करने का निर्देश है।[2] इसका उद्देश्य आयु और तेज की वृद्धि एवं अलौकिक व्यवहार की सिद्धि बताया गया है। उपबर्हण गन्धर्व का नामकरण संस्कार वसिष्ठ ने किया था।[3]

6. <u>निष्क्रमण संस्कार :--</u>

यह संस्कार शिशु को प्रथम बार घर से बाहर निकालने के समय होता है। यह शिशु के जन्म के चौथे माह में होता है। निष्क्रमण संस्कार में सूर्य या चन्द्रमा का पूजन करके बालक को उसका दर्शन कराया जाता है। इसमें मंत्रोच्चारण के साथ शिशु को सूर्य या चन्द्रमा का दर्शन कराया जाता है। मनुस्मृति में वर्णित है कि चौथे मास में निष्क्रमण संस्कार करते समय बच्चे को चन्द्रमा का दर्शन कराया जाता है --

"चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।"[4]

लेकिन लघु आश्वलायन स्मृति में उल्लिखित है कि चौथे मास में पिता बच्चे को आँगन में सूर्य का दर्शन कराये।[5]

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/2, व्यास स्मृति 1/17.
2. मनुस्मृति 2/30.
3. ब्रह्मवैवर्त 1/12.
4. मनुस्मृति 2/34.
5. लघु आश्वलायन स्मृति 7/1-3.

7. अन्नप्राशन संस्कार :--

लघु आश्वलायन स्मृति के अनुसार सोने, चाँदी या काँसे के नये बर्तन में दूध, दही, घी, मधु और अन्न रखकर मंत्रोच्चारण करते हुए सुवर्ण के चम्मच अथवा हाथ से शिशु को भोजन कराना तथा जल पिलाना चाहिए। पुत्री का अन्नप्राशन बिना मंत्र के करना चाहिए।[1] मनु स्मृति में वर्णित है कि छठें मास में कुल के नियमानुसार अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए -- "षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद् वेष्टं मंगलं कुले।"[2] कन्या को पाँचवे या सातवें मास में अन्नप्राशन कराना चाहिए। इससे शिशु के मन और शरीरादि में बल का संवर्धन होता है।

8. चूड़ाकर्म संस्कार :--

इसे वपन या मुण्डन संस्कार भी कहा जाता है। स्कन्द पुराण में वर्णित है कि शिशु की आयु एक वर्ष हो जाय, तब कुल के नियमानुसार चूड़ाकर्म करना चाहिए।[3] मनु के अनुसार पहले या तीसरे वर्ष शिशु का चूड़ाकर्म संस्कार करना चाहिए।[4] लघु आश्वलायन स्मृति के अनुसार तीसरे वर्ष उत्तरायण में शुभ मास या शुभ दिन चूड़ाकर्म संस्कार करना चाहिए।[5] इससे केश का वपन किया जाता है तथा मंत्रोच्चारण द्वारा सोम तथा अग्नि आदि देवताओं से बालक की रक्षा के लिए प्रार्थना की जाती है।

चूड़ाकर्म में शिखा-वपन का निषेध है क्योंकि शिखा ब्रह्मरन्ध्र स्थान पर होता है। केशों के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से होकर सूर्य प्राण बनकर शरीर में प्रवेश करते हैं। चूड़ाकर्म संस्कार का फल बल, आयु तथा तेज की वृद्धि करना है।

---

1. लघु आश्वलायन स्मृति 8/1-4.
2. मनुस्मृति 2/34.
3. स्कन्द 4/1/36.
4. मनुस्मृति 2/35.
5. लघु आश्वलायन स्मृति 9/1.

9. कर्णविध संस्कार :--

इस संस्कार को तीसरे या पाँचवे वर्ष करने का विधान है। इस संस्कार के समय मंत्रोच्चारण द्वारा मंगलमय वाणी को सुनने और परनिन्दा, पाप, बुराई आदि न सुनने की कामना की जाती है। कर्णविध संस्कार कान की परिशुद्धि एवं ग्रहणशीलता के लिए किया जाता है। यह संस्कार पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व की प्राप्ति के लिए किया जाता है। कर्णविध रहित व्यक्ति को श्राद्ध का अधिकारी नहीं माना जाता है।

व्यास स्मृति के अनुसार चूडाकर्म के पश्चात् कर्णविध संस्कार करना चाहिए।[1] कात्यायन गृह्यसूत्र के अनुसार कर्णविध तीसरे या पाँचवे वर्ष में करना चाहिए। इस संस्कार में कान और स्त्रियों की नासिका भी वेधी जाती है।[2] सोने, चाँदी या लोहे की सूई से कर्ण का वेधन करना चाहिए। कर्णविध के लिए प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम होता है।[3]

10. उपनयन संस्कार :--

इसे यज्ञोपवित संस्कार भी कहते हैं। इसके द्वारा बालक की बुद्धि का परिमार्जन होता है। उपनयन का अर्थ है -- समीप ले जाना। इस संस्कार में बालक को गुरू के समीप ले जाते हैं और वह अध्ययन का अधिकारी हो जाता है। इसमें बालक को ब्रह्मग्रन्थि {जनेऊ} पहनाया जाता है। इस ब्रह्मग्रन्थि को ध्यान, उपासना, जप, तर्पण आदि का आधार माना जाता है।

---

1. कृते चूडे च बाले च कर्णविधो विधीयते। व्यास स्मृति 1/18.
2. कर्णविधो वर्षे तृतीये पंचमे वा। कात्यायन गृह्यसूत्र 1/2.
3. बृहस्पति संहिता 1/87-104.

अथर्ववेद में भी उपनयन संस्कार का वर्णन है।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका में विश्वरूप ने लिखा है कि वेदाध्ययन के लिए आचार्य के समीप ले जाने को उपनयन कहते हैं --

"वेदाध्ययनायाचार्य समीपे नयनमुपनयनम्।"[2]

मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष तथा वैश्य का बारहवें वर्ष उपनयन संस्कार करना चाहिए।[3] स्कन्द पुराण में वर्णित है कि ब्राह्मण सातवें या आठवें वर्ष में, क्षत्रिय ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार के योग्य होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के उपनयन संस्कार का अन्तिम समय क्रमशः सोलह, बाईस और चौबीस वर्ष तक है।[4] और्व मुनि ने सगर के यज्ञोपवीत संस्कार कराये थे।[5]

प्राचीन काल में गुरू के आश्रम में शिष्य मेखला, दण्ड, यज्ञोपवीत और मृगचर्म धारण करते थे तथा अपने निर्वाह के लिए भिक्षा ग्रहण करते थे।

11. व्रतादेश संस्कार :--

इस संस्कार में गुरू शिष्य को व्रत के अनुष्ठान के लिए आदेश देता है। गुरू-आश्रम में अर्जित व्रतों एवं शिक्षाओं को बालक के जीवन में चरितार्थ करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

---

1. अथर्ववेद 11/5/1-26.
2. याज्ञवल्क्य स्मृति 11/14.
3. मनुस्मृति 3/36.
4. स्कन्द 4/1/36.
5. सं.पद्म पृष्ठ 611.

12. वेदारम्भ संस्कार :--

इस संस्कार के पश्चात् ही ब्राह्मण श्रौत संस्कारों के संपादन का अधिकारी बनता था। मनु के अनुसार वेदों के अध्ययन के बाद युवक गृहस्थाश्रम में प्रवेश के योग्य होता है। वेदपाठ के पूर्व और अन्त में "ऊँ" का उच्चारण करना चाहिए। ऊँकार से हीन वेदपाठ न तो सफल होता है और न सिद्धि दायक ही होता है।

13. केशान्त संस्कार :--

यह संस्कार विद्याध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् होता है। इसमें केश के साथ श्मश्रु का भी वपन होता है। यह संस्कार प्रथम बार श्मश्रु के वपन के लिए किया जाता है।

14. समावर्तन संस्कार :--

इसे वेद स्नान या व्रतान्त संस्कार भी कहते हैं। विद्याध्ययन का यह अन्तिम संस्कार है। इसमें गुरू की आज्ञा प्राप्त करके युवक अपने घर लौटता है। गुरू को दक्षिणा दिया जाता है। यह संस्कार ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति का सूचक है। इस समय गुरू शिष्य को माता पिता, गुरू, अतिथि आदि की सेवा और मानवोपयोगी उदात्त कर्तव्यों के परिपालन करने का उपदेश देता है। इस संस्कार में युवक स्नातक की उपाधि प्राप्त करता है। इस संस्कार के पश्चात् व्यक्ति विवाह का अधिकारी बनता है।

श्रीकृष्ण ने इस संस्कार में गुरू सांदीपनि को गुरूदक्षिणा के रूप में, उनके पुत्र को यमलोक से लाकर प्रदान किया था।

15. विवाह संस्कार :—

गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए विवाह संस्कार का विधान किया गया है। इस संस्कार द्वारा स्त्री-पुरुष में देह, प्राण और मन का सम्बन्ध स्थापित होता है। वैवाहिक सम्बन्ध में आबद्ध स्त्री-पुरुष में शक्ति का संचार होता है। इस संस्कार में वर-वधू गृहस्थ जीवन के पालन के लिए कुछ प्रतिज्ञाएँ करते हैं।

विवाह का लक्ष्य प्रजनन अर्थात् संतति का विस्तार है। यह संस्कार संतति के लिए किया गया एक मान्य समझौता है। स्मृति में विवाह के लिए असमान गोत्र की व्यवस्था की गई है। जिससे अच्छी संतति का जन्म हो सके। स्नातक युवक को अपने ही वर्ण की शुभ लक्षणा कन्या के साथ विवाह करना चाहिए। वह कन्या अपने पिता के गोत्र की न हो और माता की सपिण्ड न हो। विवाह संस्कार में होम आदि क्रियाएँ अग्नि में सम्पन्न की जाती हैं।

अथर्ववेद के अनुसार जिस पुरुष की कोई स्त्री न हो, उसके साथ ही कन्या का विवाह करना चाहिए। कन्याओं का विवाह बड़ी आयु में होना चाहिए।[1] वर को संयमी, पत्नी का रंजक, स्वतंत्र विचारक, बलवान् और ज्ञानवान् होना चाहिए।[2] वह पत्नी का पालनकर्ता, उत्तम वक्ता, ऐश्वर्यशाली और पत्नी को सन्मार्ग दिखाने वाला हो।[3] पति का कर्तव्य है कि वह पत्नी को सुशिक्षित करे, उसे अधर्माचरण से बचाये तथा स्त्री को दुःख न दे।[4] वर में जाति, विद्या, अवस्था, शक्ति, आरोग्य, बहुपक्षता, शील और

---

1. अथर्ववेद 6/60/1.
2. अथर्ववेद 1/14/2-4.
3. अथर्ववेद 2/36/8.
4. अथर्ववेद 14/1/26.

धन-सम्पत्ति -- ये आठ गुण होने चाहिए।[1] स्मृति चन्द्रिका के अनुसार वर में कुल, शील, शरीर, यश, विद्या, धन और सनाथता-- ये सात गुण होने चाहिए --

"कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथता च।"[2]

अथर्ववेद में युवती के निम्न गुण कहे गये हैं -- वह कन्या, वधू, कुलपा, पति के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली, विवाह के पूर्व पिता के घर रहने वाली तथा फूल की माला के तुल्य हो।[3] वह मृदुता, सरलता, अक्रोध, पातिव्रत्य, मधुरभाषिता से सम्पन्न हो।[4] वह ब्रह्मचारिणी, संयमी, विदुषी, सुरूपा, मनोहर और गुणवती हो, उसे आत्मिक शक्ति सम्पन्न, स्वाभिमानी, स्वावलम्बी, उर्वरा, सुदृष्टि युक्त, पति का हितचिंतक, पतिसुखदायिनी, पुष्ट, दयालु और संयमी होना चाहिए।[5] स्कन्द पुराण के अनुसार कार्यकुशल, पुत्रवती, पतिव्रता, मधुरभाषिणी और पति के अधीन रहने वाली पत्नी स्त्री के रूप में साक्षात् लक्ष्मी है। निरोग, भ्रातायुक्त, अपने से छोटी अवस्था वाली, सौम्यमुख वाली तथा मधुर-भाषिणी कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।[6]

पत्नी का कर्तव्य है कि वह पति की आज्ञा का पालन करे तथा उसके मन के अनुकूल कार्य करे। वह पति से प्रेम करे तथा उसका विरोध न करे। वह पति से मधुर और शांत वाणी का प्रयोग करे तथा पति के अनुकूल रहकर जीवन को अमृतमय बनाये।[7] उत्तम लक्षणों

---

1. बृहत्पाराशर स्मृति 6/17-21.
2. स्मृति चंद्रिका भाग 1, पृष्ठ 78.
3. अथर्ववेद 1/14/1-4.
4. अथर्ववेद 3/25/4.
5. अथर्ववेद 2/36/1 व 14/2/14.
6. स्कन्द 4/1/36.
7. अथर्ववेद 2/26/4, 3/30/2, 14/1/42, ऋग्वेद 10/85/26.

वाली तथा सदाचार का पालन करने वाली पत्नी पति की आयु बढ़ाती है।[1]

मनु के अनुसार बहुत मोटी, बहुत पतली, बहुत लम्बी, बहुत छोटी, अधिक आयु वाली, अंगहीन तथा कलहप्रिय कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए --

नातिस्थूलां नाति कृशां न दीर्घां नातिवामनाम्।
वयोऽधिकां नांगहीनां न सेवेत् कलहप्रियम्।।

जो किसी अंग से हीन न हो, सुन्दर नाम वाली हो, बारीक केश वाली हो, छोटे दाँत वाली हो तथा सुकुमार शरीर से सम्पन्न हो -- ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिए।[2]

विवाह के भेद :--

वेद, पुराण, स्मृति एवं महाभारत में विवाह के भेद का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति में वर्णित है कि ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच -- ये आठ प्रकार के विवाह होते हैं --

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।[3]

स्कन्द पुराण में भी इसी प्रकार वर्णित है --

विवाह ब्राह्म दैवार्षाः प्राजापत्यासुरौ तथा।
गांधर्वोराक्षसश्चापि पैशाचोऽष्टमुच्यते।।[4]

---

1. स्कन्द 4/1/36.
2. मनुस्मृति 3/9-10.
3. मनुस्मृति 3/21.
4. स्कन्द 4/1/38/1.

ब्राह्म विवाह :--

इसमें पिता कुलीन, शीलवान, विद्वान् और योग्य वर को अपने घर पर आमंत्रित करके वस्त्र एवं आभूषण से सुसज्जित कन्या को दान स्वरूप प्रदान करता था --

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।।[1]

अग्नि पुराण में ब्राह्म विवाह के सम्बन्ध में वर्णित है --

आहूय दानं ब्राह्मः स्यात्कुलशीलयुताय तु।
पुरुषांस्तारयेत्तज्जो नित्यं कन्या प्रदानतः।।[2]

इसी प्रकार स्कन्द पुराण में लिखा है --

स ब्राह्मो वरमाहूय यत्र कन्या स्वलंकृता।
दीयते तत्सुतः पूयोत्पुरुषानेकविंशातिम्।।[3]

यह सबसे उत्तम विवाह माना जाता है। यह विवाह पति-पत्नी को सुखदायक और कल्याणकारी होते हैं। इससे उत्पन्न पुत्र तेजस्वी होता है। इसमें सूर्य ने अपनी पुत्री सूर्या का विवाह सोम से किया है।[4] दक्ष कन्याओं का विवाह इस पद्धति से हुआ था।

दैव विवाह :--

जब पिता यज्ञ में पुरोहित को वस्त्र एवं आभूषण आदि से अलंकृत कन्या का दान करता था, तो उसे दैव विवाह कहा जाता था --

---

1. मनुस्मृति 3/27.
2. अग्नि 1/154/9.
3. स्कन्द 4/1/38/2.
4. ऋग्वेद 10/85/9.

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैव धर्मं प्रचक्षते।।[1]
यज्ञस्थायर्त्विजे दैवस्तज्ज: पातित्पुर्दश:।[2]

वैदिक काल में यज्ञों का प्राधान्य था और यज्ञ में ऋत्विक को कन्यादान करना सौभाग्य का सूचक माना जाता था। बृहद्देवता में यजमान रथवीति के द्वारा अपनी पुत्री को श्यावाश्व को प्रदान करने का उल्लेख है।[3] इन्द्र-इन्द्राणी तथा च्यवन ऋषि का विवाह दैव विवाह के उदाहरण हैं।

आर्ष विवाह :--

मनुस्मृति में उल्लिखित है जब कन्या के पिता वर से गाय-बैल या धन लेकर विधि विधान से कन्या का दान करता था, तो उसे आर्ष विवाह कहा जाता था।[4] इससे उत्पन्न पुत्र आगे और पीछे की तीन पीढ़ियों को पवित्र करता है।[5] इसी प्रकार अग्नि पुराण में आर्ष विवाह का लक्षण इस प्रकार वर्णित है —

"तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वार्षउच्यते।"[6]

अगस्त्य-लोपामुद्रा का विवाह इसी पद्धति से हुआ था।

प्राजापत्य विवाह :--

अग्नि पुराण में वर्णित है कि जिस विवाह में पुरूष के द्वारा याचना की जाने पर उसे कन्या दी जाती है, उस विवाह को प्राजापत्य विवाह कहा जाता है —

---

1. मनुस्मृति 3/28.
2. स्कन्द 4/1/38/3.
3. ऋग्वेद 5/50/81.
4. मनुस्मृति 3/29.
5. मनुस्मृति 3/38.
6. अग्नि 1/154/10.

"प्रार्थिता दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्मकृत्।"[1]

यह धार्मिक विवाह कहा जाता है। मनु स्मृति में उल्लिखित है कि जब वर को वधू प्रदान करके उसे धर्मानुसार आचरण करने कहा जाता है, उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं --

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य: च।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।।[2]

इस विवाह से उत्पन्न पुत्र पूर्व तथा पश्चात् की छः पीढ़ियों को पापमुक्त करता है।[3] स्कन्द पुराण में भी इसी प्रकार उल्लिखित है --

सहाभौ चरतां धर्ममित्युक्त्वा दीयतेऽर्थिने।
यत्र कन्या प्राजापत्यस्तज्जो वंशान्पुनाति षद्।।[4]

प्राजापत्य विवाह में वर-वधू द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर देवपूजन के साथ कन्या दान किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य संतान को जन्म देना था। अतः इसे "प्राजापत्य" नाम दिया गया।

आसुर विवाह :--

वर कन्या के पिता को धन सम्पत्ति देकर कन्या को क्रय कर लेता है। इस प्रकार प्राप्त कन्या से विवाह आसुर विवाह कहलाता है --

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।।[5]

---

1. अग्नि 1/154/10.
2. मनुस्मृति 3/30.
3. मनुस्मृति 3/38.
4. स्कन्द 4/1/38/4.
5. मनुस्मृति 3/31.

महाभारत, स्कन्द और अग्नि पुराण में भी आसुर विवाह के लक्षण बताये गये है। इसे अत्यन्त गर्हित माना जाता है।[1] पाण्डु-माद्री का विवाह इसका एक उदाहरण है।

गान्धर्व विवाह :--

जब कन्या माता-पिता की आज्ञा के बिना अपनी पसन्द के युवक से प्रणय सूत्र में बँध जाती है, तो ऐसे प्रेम सम्बन्ध को गान्धर्व विवाह कहते हैं। इसमें कन्या माता-पिता के पसन्द किये हुए वर को त्यागकर अपनी पसन्द के युवक से विवाह कर लेती है। मनुस्मृति में इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है --

इच्छयान्योन्य संयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः काम संभवः।।[2]

गान्धर्व विवाह में प्रेम भावना एवं सहवास सुख निहित होता है। दुष्यन्त-शकुन्तला, उषा-अनिरूद्ध, राजा अंग तथा सुनीथा का विवाह इसी पद्धति से हुआ था।

राक्षस विवाह :--

जब कन्या के सम्बन्धियों को मारकर रोती हुई कन्या का बलपूर्वक अपहरण करके उससे विवाह करना राक्षस विवाह कहलाता है --

हत्त्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रूदतींगृहात्।
प्रसह्य कन्या हरणं राक्षसो विधिरूच्यते।।[3]

---

1. अनुशासनपर्व 44/7, स्कन्द 4/1/38/5, अग्नि 1/154/11.
2. मनुस्मृति 3/32.
3. मनुस्मृति 3/33.

इसमें वीरता का प्रदर्शन ही मुख्य होता था। युद्ध में सम्बन्धियों को पराजित करके कन्या को बलपूर्वक अपहरण कर लिया जाता था।

पैशाच विवाह :--

पैशाच विवाह में सोते हुए या नशे में धुत्त कन्या के साथ सम्बन्ध स्थापित कर उसे विवाह के लिए मजबूर कर दिया जाता था --

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।[1]

अग्निपुराण में वर्णित है कि कन्या को छलपूर्वक प्राप्त करना पैशाच विवाह कहा जाता है -- "पैशाच कन्यकाच्छलात्।"[2] इसे सबसे अधम विवाह कहा गया है।

महाभारत में उल्लिखित है कि ब्राह्म, प्राजापत्य और गान्धर्व विवाह धर्मानुकूल हैं तथा आसुर और राक्षस विवाह पापमय हैं।[3] स्कन्द पुराण में उपर्युक्त अष्ट विवाह में प्रथम चार विवाह को धर्मानुकूल बताया गया है। ब्राह्मण इन्हीं चार पद्धति से विवाह करते थे। क्षत्रिय प्रथम छः प्रकार के विवाह करते थे। असुरगण राक्षस और पैशाच विवाह करने में भी नहीं हिचकते थे। अन्तिम दो विवाह को निकृष्ट माना जाता है तथा यह समाज के लिए अहितकर होता है।

---

1. मनुस्मृति 3/33. 2. अग्नि 1/154/11.
3. अनुशासन पर्व 44/9-10.

इस प्रकार प्राचीनकाल में विवाह अनेक प्रकार से किये जाते थे। समाज की प्रतिष्ठा और पवित्रता को बनाये रखने में विवाह का विशेष महत्व है। यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समाज में भी विविध विवाह पद्धति का प्रयोग होता था। उर्वशी ने राजा पुरूरवा का वरण किया था। अप्सराओं ने ऋषियों की तपस्या को भंग करके प्रणय सम्बन्ध स्थापित किया था तथा कन्याओं को जन्म दिया था। गन्धर्वों और अप्सराओं के मध्य भी प्रेम सम्बन्ध स्थापित होते थे। अतः यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं में विवाह की विभिन्न प्रणाली का प्रचलन था।

16. अग्नि परिग्रह संस्कार :--

श्रुतियों और स्मृतियों के अनुसार गृहस्थ जीवन सुख-समृद्धि एवं पवित्रता के लिए घर में गृहाग्नि की प्रतिष्ठा करने का विधान है। इसे ही अग्नि परिग्रह संस्कार कहा गया है। घर में अग्नि की प्रतिष्ठा करके पंच महायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। गृहस्थ जीवन में ब्रह्म, पितृ, देव, भूत और मनुष्य यज्ञ -- इन पाँचों यज्ञों को प्रतिदिन करते रहने का विधान है।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् अन्त्येष्टि कर्म को भी संस्कार के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। मनु स्मृति के अनुसार अन्त्येष्टि कर्म अन्तिम संस्कार है।[1] श्रीराम ने जटायु का दाह संस्कार किया था।[2] विभीषण ने अपने स्वजनों का शास्त्रीय विधि से अन्त्येष्टि कर्म किया था।[3] प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु की अन्त्येष्टि क्रिया की थी।[4] गन्धर्व कन्या मदालसा का दाह संस्कार किया गया था।[5] इन संस्कारों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

---

1. मनु स्मृति 2/16.
2. भागवत 9/10/12.
3. भागवत 9/10/29.
4. भागवत 7/10/24.
5. मार्कण्डेय 20/47.

धार्मिक स्थिति

साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण समाज का दर्पण होता है। पुराण भारतीय समाज के भव्य विचारों का रूचिर दर्पण है। भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत है। भारतीय धर्म का आधार आस्तिकता है। भारतीय भगवान् को सर्वस्व अर्पण करने में अपने जीवन की सार्थकता मानता है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित है। धर्म के आधार पर ही जीवन के समस्त कार्यों की व्यवस्था की गई है। धर्म से ही मनुष्य को ज्ञान, भगवत्प्रेम और भगवान् की प्राप्ति होती है। मनुस्मृति में वेद और स्मृति को धर्म का आधार बताया गया है। इन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है —

श्रुतिर्वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो ही निर्बभौ।[1]

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि श्रुति तथा स्मृति द्वारा अनुमोदित कर्म ही धर्म कहा जाता है।[2]

धर्म की व्युत्पत्ति और परिभाषा धर्म शब्द संस्कृत की "धृ" धातु से हुआ है, जिसका अर्थ है -- धारण करना, आलम्बन या पालन करना। वायु पुराण के अनुसार धारणार्थक "धृ" धातु से धर्म शब्द की निष्पत्ति हुई। सबको धारण करने के कारण इसका नाम धर्म पड़ा। धर्म ने ही प्रजा को धारण किया है, अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता है, वही धर्म है —

---

1. मनुस्मृति 2/10.
2. मत्स्य 145/30.

धारणाद धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।[1]

वायु पुराण में भी उल्लिखित है कि धर्म शब्द की निष्पत्ति धारणार्थक "धृ" धातु से हुई है। जिसके आचरण करने से कुशल हो, उसे धर्मकहते हैं।[2] इसी प्रकार मत्स्य पुराण में कहा गया है कि धर्म शब्द "धृञ" धातु से बना हुआ है, जो धारण तथा माहात्म्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। परमेश्वर के महत्त्व को अंगीकार कर धारण करने को धर्म कहा जाता है।[3] भागवत पुराण के अनुसार वेदों में जिन कर्मों का विधान है, वे धर्म हैं और उनके विपरीत कर्म अधर्म हैं —

"वेद प्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।"[4]

उणादि सूत्र में भी धारणार्थक "धृञ" धातु में मन् प्रत्यय होने पर धर्म शब्द की निष्पत्ति बतायी गई है।

वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि ने धर्म को परिभाषित करते हुए लिखा है कि जिसमें लौकिक उन्नति और मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसे धर्म कहते हैं —

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।"

अमरकोष के अनुसार "धृञ" धातु से निष्पन्न धर्म शब्द का अर्थ धारण करना, पालन करना, आश्रय देना आदि है —

"धरति लोकोऽनेन, धरति लोकं वा धरति विश्वं इति।
धरति लोकान् ध्रियते वा जनैरिति।"[5]

---

1. शांतिपर्व 109/11.
2. वायु 59/27-28.
3. मत्स्य 134/17.
4. भागवत 6/1/40.
5. अमरकोष 1/6/3.

आचार्य जैमिनि के अनुसार वेदशास्त्र में वर्णित श्रेयस्कर कर्म ही धर्म है -- "चोदना लक्षणोऽर्थः धर्मः।"

मत्स्य पुराण के अनुसार श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित, वर्णाश्रम के आचार से युक्त तथा शिष्टाचार द्वारा समृद्ध नियम धर्म कहा जाता है।[1]

इस प्रकार शास्त्रों में धर्म की परिभाषा धारणाद धर्मः की गयी है।

धर्म का लक्षण :--

मनु स्मृति में धर्म के दस लक्षणों का उल्लेख हुआ है। धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-संयम, ज्ञान, विद्या, सत्य और क्रोध का त्याग -- ये दस धर्म के लक्षण हैं --

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[2]

श्रीमद्भागवत में धर्म के तीस लक्षणों का उल्लेख किया गया है। सत्य, दया, तपस्या, शौच तितिक्षा, उचित-अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रिय का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, महापुरुषों की सेवा, सांसारिक भोगों से निवृत्ति, अभिमान से बचना, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्नादि का यथायोग्य विभाजन, प्राणियों में आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, भगवान के नाम, गुण, लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण,

---

1. मत्स्य 145/52.
2. मनुस्मृति 6/92.

उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म समर्पण — ये तीन आचरण सभी का परम धर्म है।[1]

याज्ञवल्क्य ने अहिंसा, सत्य वचन, चोरी न करना, पवित्र रहना, इन्द्रिय-संयम, दान देना, दया करना, मन का संयम और क्षमा करना — इनको धर्म के साधन बताया है —

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
दानं, दया, दमः क्षान्ति सर्वेषां धर्म साधनम्।।[2]

पद्म पुराण के अनुसार व्यक्ति को वेद और स्मृतियों में वर्णित उत्तम सदाचार का पालन करना चाहिए। शम, दम, तप, शौच, सत्य, मांस न खाना, अस्तेय और अहिंसा — ये धर्म के साधन हैं।[3] धर्म से अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः विद्वान् पुरूषों को धर्म के लिए चेष्टा करते रहना चाहिए।[4]

मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस मार्ग से पिता-पितामह गये हैं, उसी मार्ग में चलना चाहिए।[5] जो धर्म का पालन करते हैं, उसकी रक्षा धर्म करता है और जो उसका तिरस्कार करता है वह अधोगति प्राप्त करके मारा जाता है —

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।[6]

महाभारत के अनुसार याग, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दम और लोभ न करना — ये आठ धर्म हैं —

---

1. भागवत 7/11/8-12.
2. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/122.
3. पद्म 5/280/39.
4. पद्म 5/75/2.
5. मनुस्मृति 4/178.
6. मनुस्मृति 8/15.

इज्याध्ययन दानानि तपः सत्यं क्षमा दमः।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।[1]

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि द्रोह न करना, लोभ न करना, इन्द्रिय-संयम, दया, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य, करूणा, क्षमा और धैर्य -- ये दस धर्म के मूल हैं --

अद्रोहोऽप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्य ततः सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः।।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्।[2]

मनुस्मृति में वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मा को प्रिय लगने वाला परोपकारादि -- ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण हैं --

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[3]

इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि श्रुति, स्मृति में वर्णित सदाचार ही धर्म के मूलाधार हैं।

धर्म के भेद :--

भारतीय सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित है। धर्म व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। उसमें मानवीय गुणों को जाग्रत करता है और उसे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध कराता है। धर्म ही व्यक्ति को मर्यादाओं में रहकर अर्थ का उपार्जन, काम का उपभोग और

---

1. वनपर्व 2/75. 2. मत्स्य
3. मनुस्मृति 2/12.

मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। प्राचीन वाङ्मय में धर्म के विविध रूपों का दर्शन होता है। सामान्य रूप से धर्म के तीन भेद वर्णित हैं -- {1} सामान्य धर्म, {2} विशिष्ट धर्म और {3} आपद्धर्म।

सामान्य धर्म :--

इसे मानव धर्म भी कहा जाता है क्योंकि यह सभी व्यक्तियों के लिए उपयोगी है। इसके अन्तर्गत वे नैतिक नियम आते हैं, जिनका आचरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। इसका लक्ष्य मनुष्यों में सद्गुणों का विकास करना है। इन धर्मों का अनुसरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। मनुस्मृति में धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, विवेक, विद्या, सत्य और अक्रोध -- धर्म के इन दस लक्षणों का उल्लेख हुआ है।[1] सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, दान, दया, दम, अस्तेय तथा इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अपने भीतर स्थापित करना {प्रत्याहार} -- ये नौ सबके लिए धर्म के साधन हैं --

सत्यं शौचमहिंसा च क्षान्तिर्दानं दया दमः।
अस्तेयमिन्द्रियाकोचः सर्वेषां धर्मसाधनम्।।[2]

इन सदाचारों का सभी व्यक्ति को अपने जीवन में समावेश करना चाहिए।

विशिष्ट धर्म :--

इसके अन्तर्गत वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कुल-धर्म, राजधर्म, युग-धर्म, मित्र-धर्म आदि का समावेश किया गया है। अपने वर्ण, आश्रम, कुल आदि के अनुसार जिस धर्म का आचरण वर्णित है उसका पालन करना विशिष्ट धर्म है।

---

1. मनुस्मृति 6/92.
2. स्कन्द 4/1/40/86.

ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना है। क्षत्रिय प्रजा का पालन, दान, यज्ञ आदि कर्म का पालन करे। वैश्य पशुओं का पालन, दान देना, यज्ञ, अध्ययन, व्यापार और कृषि आदि धर्म का पालन करे तथा शूद्र को तीनों वर्णों की सेवा करना चाहिए।[1]

ब्रह्मचर्याश्रम में गुरुशुश्रूषा पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहकर स्वाध्याय करना चाहिए। योग्य कन्या से विवाह कर अग्निहोत्रादि कर्मों को करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करना -- गृहस्थाश्रम धर्म है। वानप्रस्थाश्रम में स्वाध्याय, जप, तप, संयम आदि में जीवन व्यतीत करना चाहिए और सन्यासाश्रम में काषायवस्त्र, त्रिदण्ड, कमण्डलु, धारण कर भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए भगवच्चिंतन करते रहना चाहिए।

कुलधर्म का लक्ष्य पारिवारिक संगठन को बनाये रखना, कुल परम्पराओं की रक्षा करना तथा विभिन्न संस्कारों को पूर्ण करना है। परिवार में प्रत्येक व्यक्ति के अन्य सदस्यों के प्रति कर्तव्यों का इसमें उल्लेख होता है। राजधर्म में राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य तथा प्रजा का राजा के प्रति कर्तव्यों का उल्लेख होता है। इसी प्रकार विभिन्न युग में व्यक्ति के कर्तव्यों का वर्णन, मित्र, गुरु, शिष्य के कर्तव्य आदि भी विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत आते हैं।

आपद्धर्म :--

संकट के समय में सामान्य और विशिष्ट धर्म से हटकर जो धर्म निर्धारित किये गये हैं, उन्हें आपद्धर्म कहा जाता है। यह परि-स्थिति विशेष से सम्बन्धित अस्थायी धर्म है। रोग, शोक, विपत्ति और संकट की स्थिति में व्यक्ति को कर्तव्यों में कुछ छूट दी

---

1. मनुस्मृति 1/88-91.

गयी है। आपत्ति काल में धर्म रक्षा के लिए झूठ बोलने तक की स्वीकृति दी गई है। लेकिन असामान्य स्थिति में ही आपद्धर्म का सहारा लेने का विधान है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करना चाहिए। जिससे समाज और राष्ट्र का कल्याण हो सके।

पुराणों में वर्णित है कि यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ भगवद् पूजा एवं उपासना, भक्ति, तपस्या, ध्यान, व्रत-उपवास आदि धार्मिक कार्यों में सदैव संलग्न रहते हैं। वे इन्द्र, कुबेर, सूर्य, विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, वरुण आदि देवों की सदा स्तुति करते रहते थे। विविध युद्धों में असुरों का संहार करने वाले देवों की, गन्धर्व, यक्ष एवं अप्सराएँ अत्यन्त आनन्दित होकर स्तुति करती थीं।

पूजा एवं उपासना

भारतीय जीवन में पूजा का विशेष महत्त्व है। स्नान आदि के द्वारा पवित्र होकर पुष्प, अक्षत, चन्दन आदि सामग्री लेकर एकाग्रचित्त हो देवताओं की पूजा करने का विधान है। पूजा के पश्चात् दान दिया जाता है। यह सब अमंगलों का नाशक और परममंगल की जननी है।[1] भक्तिपूर्वक निष्कपटभाव से पूजा की सामग्री लेकर कुशा के आसन में पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके पूजा करना चाहिए।[2] भागवत पुराण में उल्लिखित

---

1. भागवत 11/30/7-9.
2. भागवत 10/63/7-10.

है कि सत्ययुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता युग में यज्ञ, द्वापर युग में पूजा और कलियुग में केवल भगवन्नाम कीर्तन से समान फल मिलता है --

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजते मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।[1]

पूजा के प्रकार :--

पद्म पुराण में पूजा के पाँच प्रकार बताये गये हैं -- अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या। देवता के स्थान की साफ-सफाई करना, पहले के चढ़े हुए निर्माल्य आदि को हटाना - अभिगमन कहलाता है। पूजा के लिए पुष्प, चन्दन आदि का संग्रह करना उपादान कहा गया है। अपने साथ अपने इष्टदेव की आत्म-भावना करना - योग है। इष्टदेव के मंत्र का जप करना स्वाध्याय कहा जाता है। सूक्त, स्तोत्र आदि का पाठ, भगवान् का कीर्तन तथा भगवत्-तत्त्व आदि का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों का अभ्यास भी स्वाध्याय के अन्तर्गत आता है। अपने आराध्य देव की यथार्थ विधि से पूजा करना -- इज्या कहलाता है। इन पाँचों पूजा से क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य नामक मुक्ति प्राप्त होती है।[2]

भक्त को जो सामग्री प्राप्त हो, उसी से परमात्मा की भक्ति-भाव के साथ पूजा करनी चाहिए। प्रतिमा-पूजन में स्नान एवं अलंकार ही अभीष्ट है। भक्ति रखने वाला मनुष्य केवल जल ही अर्पण करे तो भी वह श्रेष्ठ है। पूजन करने वाला पवित्रतापूर्वक पूजन की सामग्री एकत्रित कर, कुशों का आसन बिछाकर, उत्तर दिशा की ओर मुख करके या प्रतिमा के सामने बैठकर पाद्य, अर्घ्य, स्नान आदि उपचारों की व्यवस्था करे। भक्त को चन्दन, कपूर, केसर, अगुरु आदि से

---

1. भागवत 12/3/52.
2. पद्म 4/44.

सुवासित जल के द्वारा मंत्र पाठ पूर्वक श्रीहरि को स्नान कराकर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, हार, गन्ध, अनुलेपन का श्रृंगार करके पाद्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप आदि अर्पित करना चाहिए। तदनन्तर भगवान् का ध्यान करना चाहिए।[1] विद्वान् पुरुष अग्नि में हविष्य के द्वारा, जल में पुष्पों के द्वारा, हृदय में ध्यान के द्वारा तथा सूर्य में जप के द्वारा प्रतिदिन श्रीहरि की पूजा करते हैं --

हविषाग्नौ जले पुष्पैः ध्यानेन हृदये हरिम्।
यजन्ति सूरयो नित्यं जपेन रवि मण्डले।।[2]

स्कन्द पुराण में भगवान् की पूजा के सोलह उपचारों का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम साधक भगवान् को ध्यान में स्थिर करके पूजा के लिए आवाहन करे। तत्पश्चात् आसन, पाद्य, अर्घ्य अर्पण करके आचमन करावे। इसके बाद सुगन्धित पदार्थों द्वारा सुवासित और औषधियों से युक्त जल से भगवान् को स्नान करावे। फिर वस्त्र और यज्ञोपवीत अर्पित करके उनके अंगों पर उत्तम चन्दन का लेप करे। तत्पश्चात् पुष्प द्वारा भगवान् की पूजा करना चाहिए।[3] अहिंसा पहला, इन्द्रिय-संयम दूसरा, जीवों पर दया करना तीसरा, क्षमा चौथा, शम पाँचवा, दम छठाँ, ध्यान सातवाँ और सत्य आठवाँ पुष्प है। इन पुष्पों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण संतुष्ट होते हैं। अन्य पुष्प तो पूजा के बाह्य अङ्ग हैं। जल वरूण देवता का पुष्प है, घी, दूध और दही -- चन्द्रमा के पुष्प हैं, अन्न आदि प्रजापति के, धूप-दीप अग्नि का और फल पुष्पादि वनस्पति का, कुश-मूलादि पृथ्वी का, गन्ध और चन्दन वायु का और श्रद्धा विष्णु का पुष्प है।[4] इसके बाद धूप अर्पित करे। कपूर, चन्दन, मिश्री, मधु और जटामासी से युक्त धूप का निवेदन करना चाहिए। तत्पश्चात् दीप एवं

---

1. पद्म 4/90.
2. पद्म 4/84/55.
3. स्कन्द 3/3/5.
4. पद्म 4/84/

नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। इसके बाद आचमन कराना चाहिए। फिर पाप-नाशक आरती उतारकर भगवान् को नमस्कार करें। इसके बाद भगवान् के चारों ओर परिक्रमा करनी चाहिए। तदनन्तर भगवान् के साथ अपनी एकता का चिन्तन करना चाहिए। इन षोडश उपचारों में "सहस्रशीर्षा पुरुषः" आदि ऋचाओं वाला यजुर्वेद के महासूक्त का पाठ करने का विधान वर्णित है।[1]

पद्म पुराण के अनुसार आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल एवं नमस्कार आदि षोडशोपचारों द्वारा भक्त को अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा की पूजा करनी चाहिए :—

आवाहनासनार्घ्यपाद्यैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैर्नमस्कृतैः।।[2]

विघ्न से बचने के लिए गणेश की, धर्म और मोक्ष के लिए श्री विष्णु की, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शंकर की, आरोग्य के लिए सूर्य की तथा कामनाओं की सिद्धि के लिए भगवानी की पूजा करनी चाहिए।[3] ऐश्वर्य के लिए इन्द्र की, ब्रह्म तेज और ज्ञान के लिए ब्रह्मा की, धन के लिए अग्नि की, कर्मों की सिद्धि के लिए गणेश की, बल के लिए वायु की, सांसारिक बन्धन से मुक्ति के लिए श्रीहरि की, योग, मोक्ष तथा ज्ञान के लिए महादेव की पूजा-अर्चना करनी चाहिए।[4]

स्कन्द पुराण के अनुसार पत्र, पुष्प, फल अथवा स्वच्छ जल तथा कनेर से भगवान् शिव की पूजा करके मनुष्य उन्हीं के समान हो जाता है। आक {मदार} का फूल कनेर से दस गुना श्रेष्ठ माना गया है। आक के फूल

---

1. स्कन्द 3/3/5/
2. पद्म 5/280/57.
3. पद्म 1/46.
4. पद्म 3/57.

से धतूरा का फल दस गुना श्रेष्ठ है। नीलकमल एक हजार कचनार से श्रेष्ठ माना जाता है।[1] ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, कुबेर, वरुण, यमराज, नैऋत्य और वायुदेव शिवलिङ्ग की निरन्तर आराधना करते हैं। गन्धर्व, किन्नर तथा राक्षस भी शिव की उपासना करते हैं।[2]

जो व्यक्ति जिस भाव से भगवान् की उपासना करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। भगवत् उपासना ही पुरुषार्थ चतुष्टय -- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष -- की प्राप्ति का एक मार्ग है। इन्द्र रूप में भगवद् उपासना से ऐश्वर्य, ब्रह्मा के रूप में उपासना से वंश वृद्धि, सनत्कुमार के रूप में उपासना से दीर्घायु, पृथु के रूप में उपासना से जीविका और संपत्ति, बृहस्पति के रूप में उपासना से तीर्थों का फल, सूर्य के रूप में उपासना से अज्ञान का नाश, चन्द्रमा के रूप में उपासना से अनुपम सौभाग्य और कुबेर के रूप में भगवान् की उपासना से अनुपम समृद्धि की प्राप्ति होती है।[3]

पद्म पुराण में पूजा की तीन पद्धति का उल्लेख हुआ है -- श्रौत, स्मार्त और आगम। वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में बतायी गई पूजा की पद्धति "श्रौत" कहलाती है। वासिष्ठी पद्धति के अनुसार की जाने वाली पूजा "स्मार्त" कहलाती है तथा पांचरात्र में बताया हुआ विधान "आगम" कहलाता है।[4]

इन्द्र भवन में शिव पूजोत्सव के समय गन्धर्व तथा अप्सराएँ उपस्थित थीं और उन्होंने वाद्य बजाते एवं गाते हुए शिवजी की पूजा की।[5] कुबेर सभा में सैकड़ों यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ कुबेर की आराधना करते हैं।[6] भगवान् वामन के समक्ष अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने स्तुति करते हुए नृत्य किया था।[7] वरुण सभा में गन्धर्व और अप्सराएँ गीत गाते और वाद्य

---

1. स्कन्द 1/1/5.
2. स्कन्द 1/1/7.
3. सं.स्कन्द पृष्ठ 299.
4. पद्म 5/280.
5. हरिवंश 2/69/14.
6. सभापर्व 10/20-26.
7. हरिवंश 3/70/5-10.

बजाते हुए वरूण देव की उपासना करते हैं।[1] पदमवन में महादेव की यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर आदि सदा पूजा करते हैं।[2]

भक्ति
======

अत्यधिक श्रद्धायुक्त होकर अपने इष्टदेव के समक्ष दैन्य भाव से अपने आपको समर्पित करना ही भक्ति है। भक्ति में श्रद्धा, प्रेम, दैन्य का भाव तथा समर्पण का होना आवश्यक है। भक्ति का सम्बन्ध हृदय से होता है।

भक्ति के अंग :--

भक्त भक्ति-भावना को जिन साधनों के द्वारा व्यक्त करता है, वही भक्ति के अंग कहे गये हैं। प्रार्थना, पूजा, बलिदान आदि भक्ति के अंग हैं।

प्रार्थना :--

यह ईश्वर के साथ सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम है। इसके द्वारा भक्त अपने इष्टदेव के समक्ष सम्मान की भावना अभिव्यक्त करता है। प्रार्थना सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और दयालु परमात्मा की साधना करना है। प्रार्थना में कोई न कोई माँग होती है।

---

1. सभापर्व 9/26-27. 2. वायु 38/57.

पूजा :--

भक्त के द्वारा बुद्धि, कल्पना और मेधा का प्रयोग अपने आराध्यदेव को सजाने, सुन्दर बनाने, स्तुति करने आदि के लिए करना पूजा कहलाता है। इसमें जल, पुष्प, पत्र, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती आदि के द्वारा भगवान् की उपासना की जाती है। पूजा सामान्यतः मूर्तिपरक ही होती है।

बलिदान :--

भक्त के द्वारा आराध्यदेव को प्रसन्न करने के लिए उसके समक्ष, पशु आदि की बलि चढ़ाना तथा धन सम्पत्ति आदि अर्पित करना बलिदान कहा जाता है।

भक्ति के भेद

पुराणों में भक्ति को विविध प्रकार से विभाजित किया गया है। मन, वचन और कर्म के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की होती है-- मानसिक, वाचिक और कायिक भक्ति।

मानसिक भक्ति :--

ध्यान-धारणा पूर्वक बुद्धि के द्वारा भगवद् स्वरूप का स्मरण अथवा वेदार्थ का विचार किया जाता है। इसे भक्ति भाव को बढ़ाने वाली मानसिक भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजी की प्रसन्नता बढ़ाने वाली है।

वाचिक भक्ति :--

मंत्र, जप, वेदपाठ तथा आरण्यकों के द्वारा भगवान् की स्तुति और कीर्तन करना वाचिक भक्ति कही गयी है।

कायिक भक्ति :--

मन और इन्द्रियों को रोकने वाले व्रत, उपवास, नियम आदि के अनुष्ठान से भगवान् की आराधना करना कायिक भक्ति कही जाती है। यह सब प्रकार की सिद्धियों का सम्पादन करने वाली है। ये द्विजातियों की त्रिविध भक्ति हैं।[1]

लौकिक, वैदिक आदि के अनुसार भक्ति के तीन भेद वर्णित हैं -- लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक भक्ति।

लौकिक भक्ति :--

गाय के घी, दूध, दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, अगुरू, धूप, नैवेद्य, हार, नृत्य, वाद्य, संगीत एवं फल-फूल के उपहार का अर्पण करके पूजा करना लौकिक भक्ति कही गयी है।

वैदिक भक्ति :--

वैदिक मंत्रों का जप और संहिताओं के अध्ययन आदि तथा हविष्य की आहुति के द्वारा की जाने वाली भक्ति को वैदिक भक्ति कहते हैं। अमावस्या, पूर्णिमा तथा विषुव (तुला व मेष की संक्रान्ति) आदि के दिन अग्निहोत्र क्रिया, यज्ञों की दक्षिणा तथा देवताओं को पुरोडाश और चरू अर्पण करना -- ये सब वैदिक भक्ति हैं।

आध्यात्मिक भक्ति :--

यह भक्ति दो प्रकार की होती है -- सांख्यज और योगज भक्ति।

---

1. पद्म 1/15 और 4/85.

साँख्यज भक्ति :--

प्रधान आदि प्राकृत तत्त्व संख्या में चौबीस हैं, वे सब जड़ एवं भोग्य हैं। उनका भोक्ता पुरूष उच्चीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन है। इस तरह संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरूष के तत्त्व को जानना साँख्यज भक्ति है। यह सांख्य शास्त्रानुसार आध्यात्मिक भक्ति है।

योगज भक्ति :--

इन्द्रियों को संयम में रखकर प्राणायाम पूर्वक ध्यान करना योगज भक्ति है। समस्त इन्द्रियों को विषयों की ओर से खींचकर हृदय में धारणा करके, अपने हृदय के भीतर परमात्मा को विराजमान स्वीकार करके ध्यान स्थिर करना योग जन्य भक्ति है। इस प्रकार योगज भक्ति में ईष्टदेव को अपने हृदय में ध्यान किया जाता है।[1]

सत्त्व, राजस एवं तामस गुणा के अनुसार भी भक्ति के भेद का वर्णन मिलता है। गुणा के अनुसार भक्ति के तीन भेद हैं -- सात्त्विकी, राजसी और तामसी भक्ति।

सात्त्विकी भक्ति :--

पारलौकिक लाभ को स्थायी तथा इहलौकिक वस्तुओं को नश्वर समझकर वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए आत्म ज्ञान के लिए ईश्वर की भक्ति करना सात्त्विकी भक्ति कहलाती है। यह उत्तम भक्ति होती है। मोक्ष की इच्छा रखने वाले को उत्तम भक्ति करनी चाहिए। भागवत पुराणा के अनुसार पापों के क्षय तथा परमात्मा को अर्पणा करने के लिए पूजन करना सात्त्विक भक्ति है।[2]

---

1. पद्म 1/15, 4/85. 2. भागवत 3/29/10.

राजसी भक्ति :--

जो भक्त यश-ऐश्वर्य एवं स्पर्धा के लिए परमात्मा की भक्ति करता है, वह राजसी भक्ति कहलाती है। यह मध्यम भक्ति है।

तामसी भक्ति :--

काम-क्रोध के वशीभूत होकर अपने लाभ एवं दूसरों की हानि के लिए हिंसा, दम्भ या मात्सर्य का भाव रखकर भक्ति करना तामसी भक्ति है।[1]

इसके अतिरिक्त चौथी निर्गुणा भक्ति भी होती है। ब्रह्म और जीव में भेद उत्पन्न करने वाली बाह्य उपाधियों को त्यागकर अत्यधिक प्रेम से भगवत्-स्वरूप का चिन्तन करते रहना - अद्वैत या निर्गुणा भक्ति कही जाती है।[2] भागवत में उल्लिखित है कि परमात्मा के गुणों के श्रवण मात्र से मन की गति का अविच्छिन्न रूप से परमात्मा के प्रति हो हो जाना तथा उसमें निष्काम और अनन्य प्रेम उत्पन्न होना — निर्गुणा भक्ति है। ऐसा निष्काम भक्त प्रभु सेवा को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष को भी त्याग देता है।[3]

भक्तिपूर्वक पूजित होने पर भगवान् सभी मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। भागवत पुराण में नवधा भक्ति का उल्लेख हुआ है। भगवान् के गुण, लीला, नाम आदि का श्रवण, उनका कीर्तन, उनके रूप-नामादि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, पूजा, अर्चना, वन्दना, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म निवेदन -- ये भगवान् की भक्ति के नौ भेद हैं —

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।[4]

---

1. पद्म 5/126.
2. स्कन्द 2/2/10/86-88.
3. भागवत 3/29/11-13.
4. भागवत 7/5/23.

यक्ष, गन्धर्व एवं अप्सराएँ भक्तिभाव से भगवान् की पूजा-अर्चना करते थे। वे विविध देवों का यशोगान करते हुए स्तुति करते थे।

तपस्या

यक्ष एवं गन्धर्व तपस्या में संलग्न रहते हैं। ब्रह्मचर्य, मौनावलम्बन और निराहार रहना -- ये तपस्या के लक्षण हैं। यह अत्यन्त भीषण एवं दुष्कर होता है।[1] तपस्या धर्म के चार चरणों में एक है। भागवत पुराण में वर्णित है कि सत्य, दया, तप और दान -- धर्म के चार चरण हैं --

कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः।
सत्यं दया तपो दानमितिपादा विभोर्नृपः।।[2]

मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मचर्य, जप, हवन, यथा समय स्वल्प भोजन का सेवन और राग-द्वेष-लोभ के त्याग को तप कहते हैं।[3]

भागवत में विद्या, तपस्या, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थ स्नान, व्रत, दान और तप -- ये अन्तःकरण की शुद्धि के साधन हैं।[4] तपस्या सत्यस्वरूप और नित्य है। इसका उद्देश्य स्वर्गादि उत्तम लोकों की प्राप्ति है।[5] भागवत पुराण में तपस्या को भी मुक्ति का साधन बताया गया है। मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, शास्त्रों की व्याख्या, एकान्त सेवन, जप और समाधि — ये मोक्ष के दस साधन हैं।[6]

---

1. मत्स्य 145/43.
2. भागवत 12/3/18.
3. मनुस्मृति 2/79.
4. भागवत 12/3/48
5. पद्म 1/31.
6. भागवत 7/9/46.

तपस्या के भेद :--

तपस्या तीन प्रकार की होती है -- सात्त्विक, राजस और तामस तपस्या।

सात्त्विक तपस्या :--

जो तप परोपकार के उद्देश्य से किया जाता है, वह सात्त्विक तप होता है। ब्रह्माजी ने जगत् के उपकार के लिए तपस्या करके सृष्टि की।

राजस तपस्या :--

क्षत्रियोचित तेज की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला भयंकर तप राजस कहलाता है। धन-ऐश्वर्य एवं विजय प्राप्त करने के लिए यह तप किया जाता है।

तामस तपस्या :--

दूसरों का संहार करने के लिए शक्ति प्राप्ति की इच्छा से जो तपस्या की जाती है वह तामस या आसुर कही गई है।[1]

इस प्रकार भगवान् श्रीराम ने शम्बूक के समक्ष तपस्या के तीन प्रकार का वर्णन किया था। हरिकेश यक्ष ने वाराणसी में भगवान् शिव की दारुण तपस्या की थी, जिससे भगवान् शिव सबके पूज्य एवं गणों के स्वामी धनपति होने का वर दिया था।[2] कुबेर ने कावेरी के संगम में सौ वर्षों तक तपस्या की और यक्षों के स्वामी के रूप में अभिषिक्त हुए।[3] पुष्पमित्र नामक यक्ष ने पुष्कर में अनेक वर्षों तक भीषण तपस्या की और

- -

1. पद्म 1/31.
2. मत्स्य 180/15-25.
3. मत्स्य 189/1-11.

नरवाहन कुबेर हुए।[1] हरिवंश पुराण में वर्णित है कि संसार के सभी कार्य तपस्या से सुलभ हैं।[2] पदमपुराण के अनुसार इन्द्रिय संयम और शौच संतोषादि नियमों के पालनपूर्वक तपस्या करने से इन्द्रिय जय, धैर्य, सत्य, क्षमा, सरलता, दया और दान आदि सदगुणों की प्रतिष्ठा होती है।[3] गन्धर्वकुमार सुशड्.ख भारी तपस्या में लगा हुआ था।[4] हिमालय के शिखर पर आठ सौ वर्षों तक मौनभाव से व्रत धारण करके कुबेर ने भारी तपस्या की और महादेव के मित्र बन गये।[5] सुकेतु नामक यक्ष ने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया और एक हजार हाथियों के समान बलशाली कन्या प्राप्त किया था।[6]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यक्ष और गन्धर्व तपस्या में संलग्न रहते थे और देवताओं को प्रसन्न करके अभीष्ट वर प्राप्त करते थे।

ध्यान

पुराणों में वर्णित है कि परमात्मा की पूजा के पश्चात उनके स्वरूप का ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त होकर मंत्र जप करना चाहिए। ध्यान करने वाले मनुष्य को सदा शुद्धचित्त होकर भगवान के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। ध्यानस्थ आत्मा सब प्रकार के दोषों से रहित, निरामय, निष्काम, निश्चल और वैर तथा मैत्री से शून्य हो जाता है। ईश्वर का

- -

1. हरिवंश 3/28/21-30.
2. हरिवंश 2/29/1.
3. पदम 1/19.
4. सं.पदम पृष्ठ 145.
5. वा.रा. 7/13/24-30.
6. वा.रा. 1/25/5-7.

ध्यान करने वाला पुरुष शोक, दुःख, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा भ्रम आदि से और इन्द्रियों के विषयों से मुक्त हो जाता है। ध्यान करने से कर्म का भी क्षय हो जाता है।

भागवत पुराण में वर्णित है कि मन के द्वारा इन्द्रियों को, उनके विषयों से खींचकर, बुद्धि की सहायता से परमात्मा में लगाना ध्यान है। जो तीव्र ध्यान के द्वारा परमात्मा में अपने चित्त का संयम करता है, उसके चित्त से वस्तु की अनेकता और उनकी प्राप्ति के लिए होने वाले कर्मों का भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।[1]

ध्यान के प्रकार

पद्म पुराण में ध्यान के दो प्रकार बताये गये हैं — निर्गुण और सगुण।

निर्गुण ध्यान :—

जो लोग योगशास्त्र में वर्णित यम-नियमादि साधनों के द्वारा परमात्मा का ध्यान करते हुए केवल ज्ञान दृष्टि से उनका दर्शन करते हैं। परमात्मा हाथ से रहित है, परन्तु सब कुछ ग्रहण करता है, पैर से रहित है, पर सर्वत्र जाता है। मुख से रहित होकर भी भोजन करता है, नासिका के बिना ही सूँघता है, कान रहित होकर भी सब कुछ सुनता है। वह सबका साक्षी और जगत् का स्वामी है। वह समस्त लोकों का प्राण है। वह जितेन्द्रिय, एकरूप, आश्रयविहीन, निर्गुण, ममतारहित, सगुण, निर्मल, ओजस्वी, दाता और सर्वज्ञ है। वह सर्वत्र व्यापक एवं सर्वमय है। इस प्रकार अनन्य-बुद्धि से निराकार परमात्मा का ध्यान करना - निर्गुण ध्यान कहा जाता है।[2] इसे

---

1. भागवत 11/14/42-46.   2. पद्म 4/84.

निरालम्ब ध्यान भी कहते हैं। जो रूपरहित, अप्रमेय, सर्वस्वरूप, सर्वव्यापक तथा तुरीयातीत है, उन परमेश्वर का निराकार स्वरूप निरालम्ब ध्यान के द्वारा चिन्तन करने योग्य है।[1]

सगुण ध्यान :--

भगवान् का मूर्त किंवा साकार रूप सगुण ध्यान का विषय है। भगवान् निराश्रय हैं, उसका कोई आलम्ब नहीं है, बल्कि वह सबका आधार है। उसकी वासना से सारा ब्रह्माण्ड वासित है। उनका श्री विग्रह सजल मेघ के समान श्याम है। उनकी प्रभा सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है। उनके दाहिने हाथों में शङ्ख और कौमोदकी गदा विराजमान है तथा बायें हाथों में पद्म और चक्र सुशोभित हो रहे हैं। शङ्ख के समान मनोहर ग्रीवा, सुन्दर, गोलाकार मुखमण्डल तथा पद्म के समान आँखें, कुन्द के जैसे चमकते हुए दाँतों से भगवान की बड़ी शोभा हो रही है। किरीट, हार, कड़े, कटिसूत्र तथा अँगूठियों से उनके श्रीअङ्ग विभूषित हैं। इस प्रकार परमात्मा के सगुण रूप का ध्यान करना -- सगुण ध्यान कहलाता है।[2] इसे सालम्ब ध्यान कहा जाता है।

भागवत पुराण में उल्लिखित है कि जो परमात्मा के स्वरूप में अपना चित्त स्थिर करके उसके ध्यान में संलग्न है, वह अपने मन से जैसा संकल्प करता है, उसका वह संकल्प सिद्ध हो जाता है।[3]

यक्ष, गन्धर्व एवं अप्सराएँ परमात्मा का ध्यान करते हुए उसकी आराधना करते हैं। कुबेर सभा, इन्द्र सभा आदि में यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ उनकी पूजा, आराधना एवं ध्यान करते हैं। तपस्या करते

---

1. स्कन्द 3/3/30.
2. पद्म 4/84.
3. भागवत 11/15/26.

हुए अनेक यक्षों एवं गन्धर्वों ने अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुए उनसे अभीष्ट वरदान प्राप्त किये हैं। एक गन्धर्व राज ने शिवजी की तपस्या व ध्यान के द्वारा उपबर्हण नामक परम वैष्णव पुत्र प्राप्त किया था।[1] यक्ष, गंधर्व तथा अप्सराएँ विविध देवों की स्तुति करते हुए वर्णित किये गये हैं। गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने दिव्य स्तुतियों के द्वारा भगवान् विष्णु का स्तवन किया।[2] गन्धर्व एवं अप्सराएँ भक्तिपूर्वक शिवजी की पूजा करके स्तुति करती हैं।[3] तारकासुर संग्राम में दानवों को पराजित करने वाले भगवान् नारायण की ब्रह्मा, ब्रह्मर्षि, गन्धर्व तथा अप्सराओं ने स्तुति किया।[4] गन्धर्व और अप्सराओं ने मंगलमय वाणी में भगवान् नारायण की स्तुति की।[5]

--::--::--
--::--

---

1. ब्रह्मवैवर्त 1/12.
2. वा.रा. 1/15/32.
3. नारदीय 1/13/122.
4. हरिवंश 1/48/58.
5. हरिवंश 2/4/20.

--:: अध्याय : 7 ::--
============

युद्ध और आयुध
==============

1. युद्ध :--

अ. सेना, सैन्य संगठन और युद्ध संचालन.

आ. युद्ध के प्रकार -- वाक्युद्ध, मल्ल युद्ध, गदा युद्ध, द्वन्द्व युद्ध, तुमुल युद्ध, अश्म युद्ध, मंत्र युद्ध और मायामय युद्ध.

इ. वाहन, रथ और सारथि.

2. आयुध :--

अ. आयुध के भेद.

आ. प्रमुख आयुधों का परिचय -- गदा, तलवार, मुद्गर, मूसल, भिन्दिपाल, चक्र, शक्ति, वज्र, परिघ, पाश, त्रिशूल, बाण और धनुष.

इ. दिव्यास्त्रों का परिचय -- ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, ऐषीकास्त्र, आङ्गिरसास्त्र, मोहनास्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्जन्यास्त्र, सावित्रास्त, नारायणास्त्र, मानवास्त्र, रौद्रास्त्र, वारुणास्त्र, शोषणास्त्र, ब्रह्मशिरास्त्र, वायव्यास्त्र, दानवास्त्र, संवर्तास्त्र, गान्धर्वास्त्र और वैष्णवास्त्र.

ई. माया -- तामसी माया, पार्वती माया और महामाया.

--::--::--
--::--

युद्ध

पुराणों के अनुशीलन से हमें विविध प्रकार के युद्ध का विवरण प्राप्त होता है। देवताओं तथा दानवों के मध्य युद्ध होते ही रहते थे। पुराणों में वर्णित है कि अनेक युद्धों में यक्षों तथा गन्धर्वों ने अपने शौर्य का प्रदर्शन किया था। ब्रह्मा और विष्णु से, तपस्या करके असुरों ने वरदान प्राप्त किया और उसी के बल पर देवताओं के ऊपर आक्रमण करके उन्हें पराजित किया। असुरों के अत्याचार बढ़ने पर भगवान् महादेव और विष्णु के परामर्श के अनुसार देवताओं ने युद्ध में असुरों को पराजित किया। इस प्रकार देवताओं और असुरों के मध्य अनेकों युद्ध हुए जिसका पुराणों में यत्र-तत्र वर्णन किया गया है।

युद्ध दो शक्तियों द्वारा अपने हितों के उद्देश्य से किया जाने वाला एक सशस्त्र संघर्ष है। यह दो मानव समूहों के मध्य किया जाने वाला सुव्यवस्थित बल प्रयोग होता है। जब दो देशों या राजाओं के मध्य राजनीतिक समस्याओं का समाधान वार्त्ता या अन्य शान्तिपूर्ण साधनों से सम्भव नहीं हो पाता, तब युद्ध ही एक मात्र उपाय होता है। युद्ध क्षत्रियों का प्रधान मार्ग है। प्रजा की रक्षा करने मात्र से राजा कृतकृत्य हो जाता है। राजा को सदैव युद्ध के लिए उद्यत रहना चाहिए।

युद्ध के कारण :—

पुराणों में वर्णित युद्ध की समीक्षा से युद्ध के निम्नलिखित कारण ज्ञात होते हैं :—

1. राज्य विस्तार के लिए :— जैसे बलि और इन्द्र का युद्ध।
2. सार्वभौम सत्ता हेतु :— तारक असुर और देवताओं का युद्ध।
3. अपहृत व्यक्तियों को मुक्त कराने हेतु :— यथा बाणासुर और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध।

4. धन सम्पत्ति प्राप्त करने हेतु :-- असुरों का देवताओं के साथ युद्ध।
5. प्रतिशोध के लिए :-- जलन्धर और इन्द्र के मध्य युद्ध तथा आदि दैत्य और भगवान् शिव का युद्ध।
6. मित्रों की मदद हेतु :-- चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज का देवी से युद्ध।
7. स्त्री के लिए :-- जैसे शुम्भ-निशुम्भ का युद्ध तथा महिषासुर का देवी से युद्ध।
8. भेदभाव के कारण :-- कौरव-पाण्डवों का युद्ध।

इस प्रकार विभिन्न कारणों से दो राजाओं के मध्य युद्ध आरम्भ हो जाता था। पहले साम, दान और भेद की नीति से इष्ट सिद्धि का प्रयास किया जाता था। इनमें असफल होने पर ही दण्ड रूप युद्ध का सहारा लिया जाता था।[1]

सेना

पुराणों में युद्ध और सेना का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। शत्रुओं को पराजित करने के लिए उत्साहित वीर योद्धाओं का समूह रखा जाता था। उन्हें युद्ध-कौशल का प्रशिक्षण देकर रणनीति में कुशल बनाया जाता था। शुक्र नीति के अनुसार अस्त्र-शस्त्र से संयुक्त योद्धाओं के समूह को सेना कहा जाता है। सेना दो प्रकार की होती है -- स्वगमा और अन्यगमा। स्वयंगमन करने वाली सेना स्वगमा कहलाती है। इसके अन्तर्गत पैदल सैनिक आते हैं। रथ, हाथी, घोड़े आदि वाहनों से युक्त सेना अन्यगमा कहलाती है। ये दोनों सेनाएँ ही सम्मिलित रूप से चतुरंगिणी सेना कहलाती हैं, अर्थात् रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक -- यह चारों प्रकार की सेना ही चतुरंगिणी सेना है। अग्निपुराण में

---

1. हरिवंश 1/20/60-66.

सेना के छः अंगों का उल्लेख हुआ है — मंत्र, कोष, पदाति, अश्व, गज और रथ — ये सेना के छः अंग हैं[1], लेकिन हरिवंश पुराण में रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, पण्यधान्य और आणाणिक — ये छः सेना के अंग कहे गये हैं।[2]

महाभारत में योद्धाओं के विभिन्न समूहों का वर्णन किया गया है। एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़े और पांच पैदल सैनिक को पत्ति कहते हैं। पत्ति की तिगुनी संख्या को सेनामुख कहते हैं। तीन सेनामुख को एक गुल्म कहा जाता है। तीन गुल्म का एक गण होता है। तीन गण की एक वाहिनी होती है और तीन वाहिनियों को पृतना कहा गया है। तीन पृतना की एक चमू, तीन चमू की एक अनीकिनी और दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होती है। इस प्रकार एक अक्षौहिणी सेना में 21870 रथ, 21870 हाथी, 65610 घोड़े और 109350 पैदल सैनिक होते हैं।[3]

सैन्य संगठन

सेना के संचालन के लिए सेनापति की नियुक्ति की जाती थी। प्रत्येक सेना के लिए सेनापति होता था। सेनापतियों के ऊपर प्रधान सेनापति हुआ करता था। प्रधान सेनापति चतुरंगिणी सेना के अधिपतियों के कार्यों की जानकारी रखता था। वह समस्त युद्धों एवं शास्त्रास्त्रों में पारंगत तथा गज, अश्व, रथ आदि के संचालन में कुशल होता था। आचार्य कौटिल्य ने सेनापति के कर्तव्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि सैनिकों की शिक्षा, अवस्थान, अभियान, आक्रमण आदि विषयक तथा तूर्य-ध्वनि,

---

1. अग्नि 242/2.
2. हरिवंश 2/34/4.
3. आदिपर्व 2/19-26.

ध्वजा-पताका आदि से व्यूह-रचना के संकेत में पारंगत करने की शिक्षा देना सेनापति का प्रधान कर्तव्य है।[1]

अग्नि पुराण में सेनाओं के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। रथ सैनिक का कार्य संगठित शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न करना तथा मित्र सेना को संगठित करना है। अश्वारोही सेना का कार्य वनों और मार्गों का पर्यवेक्षण करना, आवागमन के साधनों की रक्षा करना, पलायन करती हुई सेना का पीछा करना, शीघ्रता से कार्यों का सम्पादन करना, श्रेणीबद्ध सेना का वध करना, शस्त्र धारण करना, शिविर और मार्ग को साफ करना तथा शत्रु का वध करना है।[2]

आचार्य कौटिल्य के अनुसार अश्व सेना छिपकर शत्रु सेना की खोज और प्रतिकार करती है। गज सेना आगे-आगे चलती हुई मार्ग के कष्टों का निवारण करती है। सेना की रक्षा, शत्रु सेना का निवारण, शत्रु को कैद करना आदि कार्य रथारोही सेना का कार्य है और पैदल सेना सभी ऋतुओं तथा सम-विषम सभी स्थलों में कार्य करती है।[3]

शूरवीर योद्धा के लक्षण का वर्णन करते हुए अग्नि पुराण में उल्लिखित है कि जिसका कद लम्बा हो, नाक तोते की चोंच की तरह हो, जो क्रोधी स्वभाव का तथा कलहप्रिय हो, सदैव प्रसन्न रहता हो और विजय की कामना करता हो, उसे उत्तम योद्धा समझना चाहिए। पैदल सैनिक का कार्य युद्ध में मारे गये अथवा घायल सैनिक को हटाना, हाथियों को पानी पिलाना और हथियार पहुँचाना है। ढाल वाले सैनिक का कार्य सेना की रक्षा करना और शत्रु का व्यूह तोड़ना है। रथी योद्धा का कार्य घायल योद्धा को हटाना तथा शत्रु सेना में त्रास उत्पन्न करना है।[4]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.
2. अग्नि 242/24-27.
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 10.
4. अग्नि 236/43-48.

युद्ध-संचालन :--

सेनाओं के लिए उपयुक्त भूमि का उल्लेख करते हुए अग्नि पुराण में कथित है कि जिसमें बड़े-बड़े सूखे वृक्ष, वल्मीक, वृक्ष, झाड़ी, काँटे और ऊँची-नीची भूमि न हो तथा जिसमें सेना के निकलने योग्य मार्ग हो, ऐसी भूमि पदाति सेना के लिए उपयुक्त होती है। अश्वारोही सेना के लिए वह भूमि उपयुक्त होती है, जिसमें थोड़े-थोड़े वृक्ष और पत्थर हों, जहाँ के पर्वतों को शीघ्रता से पार किया जा सके, जो रेतीली अथवा दलदल न हो और जहाँ निकलने का मार्ग न हो। रथ सेना के लिए वृक्ष, पर्वत तथा कीचड़ से रहित भूमि उपयुक्त होती है और जहाँ निर्झर, अगम्य पर्वत तथा ऊँची-नीची भूमि हो तथा जिसमें तोड़ने योग्य वृक्ष और लताएँ हों, वह भूमि गज सेना के लिए उपयुक्त मानी गई है।[1]

शुक्रनीति में छः प्रकार के बल का उल्लेख हुआ है — शरीर का बल, शूरता का बल, सेना का बल, अस्त्र का बल, बुद्धि का बल, और आयु का बल। सैनिकों के बल को बढ़ाने के लिए राजा को कुश्ती, व्यायाम आदि का आयोजन करते रहना चाहिए तथा उन्हें पौष्टिक भोजन प्रदान करना चाहिए। राजा को सैनिकों के शौर्य बल को बढ़ाने के लिए व्याघ्रों का शिकार, शस्त्रास्त्रों के चलाने का अभ्यास तथा शूरवीरों की संगति कराना चाहिए। राजा अच्छा वेतन देकर तथा दिव्यास्त्रों का प्रयोग कराकर अस्त्र-बल तथा अर्थशास्त्र व राजनीति में कुशल व्यक्तियों की संगति प्रदान करके सेना के बुद्धि-बल को बढ़ाना चाहिए।

राजा को चाहिए कि वह सेना को सदा प्रोत्साहित करता रहे। उसे सदा प्रसन्न रखे तथा समय-समय पर पुरस्कार और उपहार

---

1. अग्नि 242/28-30.

आदि प्रदान करे। सेना को उत्साहित करने का प्रयास मंत्री और पुरोहित को भी करते रहना चाहिए। सूत और मागधगण उन्हें वीरता की गाथाएँ और गीत सुनाकर उत्साहित करें तथा गुप्तचरों को सदा अपनी विजय का समाचार सुनाकर सेना को उत्साहित करते रहना चाहिए।[1]

मत्स्य पुराण में कथित है कि राजा को ऋतुओं का ध्यान रखते हुए सेना को नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि उचित रूप से सेना का प्रयोग करके शत्रु पर आसानी से विजय प्राप्त किया जा सकता है। राजा को उत्साह एवं पराक्रम से संयुक्त विशाल सेना से सुसज्जित होकर शत्रुओं के उपर आक्रमण करना चाहिए। वर्षा ऋतु में पैदल और गजारोही की सेना में अधिकता हो। हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में रथ और अश्व सेना अधिक मात्रा में होनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में गधे और ऊँटों की संख्या अधिक होनी चाहिए तथा वसन्त और शरद ऋतुओं में चतुरंगिणी सेना से युक्त होकर शत्रुओं पर आक्रमण करना चाहिए।[2]

राजा को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए युद्ध-भूमि की स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए। दुर्गम प्रदेश में स्थित शत्रु पर आक्रमण करने के लिए सेना में पैदल सैनिक अधिक संख्या में नियुक्त करना चाहिए। अधिक वृक्षों से युक्त अथवा कुछ कीचड़ युक्त प्रदेश में आक्रमण करने के लिए हाथियों की संख्या अधिक होनी चाहिए और समतल भूमि में रथ और घोड़ों की संख्या अधिक लेकर शत्रु पर विजय प्राप्त करना चाहिए।[3]

अग्नि पुराण के अनुसार गजारोही की रक्षा के लिए चार योद्धाओं को, रथारोही के लिए चार अश्वारोहियों को, अश्वारोही की रक्षा के लिए चार खड्गधारी योद्धाओं को और एक ढालधारी योद्धा

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 10.
2. मत्स्य 240/13-20, अग्नि 228/6-7.
3. मत्स्य 240/21-23, अग्नि 236/49-50.

की रक्षा के लिए चार धनुर्धारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। राजा को युद्ध भूमि में सबसे आगे खड्गधारियों को, उसके पीछे धनुर्धारियों को, उनके पीछे अश्वारोहियों को, फिर रथारोहियों और गजारोहियों को रखना चाहिए। पैदल, गजारोही और अश्वारोही योद्धाओं में जो शूरवीर हों, उन्हें सेना में आगे रखना चाहिए।[1]

युद्ध के प्रकार

पुराणों में विविध प्रकार के युद्धों का उल्लेख हुआ है। योद्धा गणों को युद्ध में शत्रुओं का मुकाबला विविध प्रकार के युद्धों से करते हुए वर्णित किया गया है। एक ही योद्धा कभी बाहु युद्ध, कभी गदा युद्ध, कभी अश्म युद्ध, कभी वाक् युद्ध और कभी माया युद्ध करते हुए बताया गया है।

कौटिल्य के अनुसार युद्ध के तीन भेद हैं -- प्रकाश युद्ध, कूट युद्ध और तूष्णीं युद्ध।[2] जो युद्ध पहले से निश्चित स्थान और समय के अनुसार होता है, उसे "प्रकाश युद्ध" कहते हैं। इस युद्ध में दो सेनाएँ युद्ध होने के पूर्व ही आक्रमण करने की घोषणा कर देती हैं। युद्ध का ज्ञान दोनों सेनाओं को पहले से होने के कारण इसे "प्रकाश युद्ध " कहा गया है। यह धर्म युद्ध होता है। राजा को चाहिए कि जब प्रकाश युद्ध लाभकारी हो तभी इसकी घोषणा करे।

---

1. अग्नि 236/38-40.   2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 7.

शत्रु को नष्टकरने के लिए कूट युद्ध किया जाता था। अग्नि पुराण में कथित है कि भुजाओं को फैलाकर जोर-जोर से चिल्लाना चाहिए कि शत्रु नष्ट हो गये हैं, हमें मित्रों की बहुत सी सेना मिल गई है, सेना नायक का वध हो गया, राजा भाग गया है। ऐसा करने से शत्रु सेना में भगदड़ मच जाती है और पलायन करती हुई सेना को आसानी से नष्ट किया जा सकता है।[1]

शत्रु पर संकट आया देखकर भय का प्रदर्शन करते हुए किया गया आक्रमण तथा एक स्थान पर युद्ध त्यागकर अन्यत्र प्रहार करने को "कूट युद्ध" कहते हैं। विष आदि का प्रयोग तथा गुप्तचरों के द्वारा भेद डालने को "तूष्णीं युद्ध" कहा जाता है।

वाक् युद्ध

पुराणों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि दो योद्धा जब युद्ध के लिए एक-दूसरे के समक्ष उपस्थित होते थे, तो सर्वप्रथम वाक् युद्ध होता था। जब रावण ने कुबेर पर आक्रमण किया था, तब कुबेर और रावण के मध्य पहले वाक् युद्ध हुआ था। तदनन्तर रावण और कुबेर अस्त्र-शस्त्र के द्वारा युद्ध करने लगे थे।[2] योद्धाओं का वाक् युद्ध आगे चलकर शस्त्रास्त्र युद्ध में परिवर्तित हो जाता था। अस्त्र-शस्त्र का युद्ध विपक्षी के साथ होता है किन्तु वाक् युद्ध शत्रु पक्ष और स्वपक्ष दोनों में होते हुए वर्णित किया गया है। वाक् युद्ध में योद्धा अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न करता था और शत्रु को कमजोर बताकर उसे मृत्यु का भय दिखाता था। इस प्रकार वाक् युद्ध से शस्त्रास्त्र युद्ध का आरम्भ हो जाता था।

---

1. अग्नि 236/59-60.   2. वा.रा. 7/15.

मल्ल युद्ध [बाहु युद्ध]

हरिवंश पुराण में मल्ल युद्ध के लक्षण एवं नियमों का वर्णन किया गया है। बाहु युद्ध करने वाले योद्धाओं का मत है कि गोबर के चूर्ण को उबटन के समान शरीर में मलना, जल से धोना और गेरू के रंग का लेप करना अखाड़े में उतरने वाले पहलवानों का धर्म है। संयम, स्थिरता, शौर्य, व्यायाम, सत्क्रिया औरअमद व्यवहार से बचते हुए अधिक बल प्रकट करना -- इन छः साधनों के द्वारा रंगभूमि में विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। ब्रह्मा ने मल्ल युद्ध का नियम बनाया है कि यह युद्ध अखाड़े में केवल भुजाओं द्वारा हो, इसमें अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग न हो, केवल दाँव-पेंच और बल के द्वारा ही विपक्षी को परास्त करना चाहिए। अवस्था एवं बल के अनुरूप उसके जोड़े का विचार करना चाहिए। मल्ल युद्ध में शारीरिक बल और दाँव-पेंच से ही बाहु युद्ध करने का विधान है। मल्ल के द्वारा प्रतिद्वन्द्वी को गिरा देने मात्र से विजय मान ली जानी चाहिए।[1]

भागवत पुराण में मल्ल युद्ध का सुन्दर वर्णन किया गया है। कंस ने कृष्ण और बलराम का वध करने के लिए अपने पहलवानों को उनके साथ मल्ल युद्ध के लिए नियुक्त किया था। श्रीकृष्ण और चाणूर तथा बलराम और मुष्टिक के मध्य मल्ल युद्ध का सजीव चित्रण किया गया है। वे एक-दूसरे को जीतने की इच्छा से हाथ से हाथ बाँधकर और पैरों से पैर अड़ाकर बलपूर्वक अपनी ओर खींचने लगे। वे पंजों से पंजे, घुटनों से घुटने, माथे से माथे और छाती से छाती लगाकर एक-दूसरे पर चोट करने लगे। वे दाँव-पेंच करते हुए परस्पर पकड़कर घुमाते, ढकेलते, जकड़ लेते, लिपट जाते, उठाकर पटक देते, छूटकर भाग निकलते और कभी पीछे हट जाते थे। वे

---

1. हरिवंश 2/30/12-30.

एक-दूसरे को रोकते, प्रहार करते और पछाड़ देने की चेष्टा करते थे। कभी कोई नीचे गिर जाता, तो दूसरा उसे घुटनों और पैरों से दबाकर उठा लेता। वे एक-दूसरे को हाथों से पकड़कर ऊपर ले जाते, गले में लिपट जाने पर ढकेल देते और हाथ-पाँव इकट्ठे करके गाँठ बाँध लेते थे।[1] मल्ल युद्ध अथवा कुश्ती समान बल के योद्धाओं के साथ होने का विधान है।[2]

इस प्रकार मल्ल युद्ध में दो योद्धा आपस में लड़ते हुए अपने शौर्य का प्रदर्शन करते थे। मल्ल युद्ध का आयोजन मनोरंजन के लिए भी होता था। लेकिन युद्ध के मैदान में शत्रु के वध के लिए भी मल्ल युद्ध होता था। श्रीकृष्ण और ऋक्षराज जाम्बवान् अट्ठाईस दिन तक दिन-रात बिना विश्राम किये लड़ते रहे।[3]

जनक का पुत्र लक्ष्मीनिधि और राजा सुबाहु बाहु युद्ध द्वारा लड़ने लगे। दोनों एक-दूसरे से पैर से पैर, हाथ से हाथ और छाती से छाती सटाकर युद्ध करने लगे थे।[4] जरासंध और भीमसेन लगातार सत्ताईस दिनों तक मल्ल युद्ध की रीति से लड़ते रहे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के संकेत पर भीमसेन ने उसके शरीर को चीरकर दो टुकड़े करके फेंक दिया था।[5]

जरासंध और भीमसेन मल्ल युद्ध करते हुए लड़ते रहे। अन्त में भीमसेन ने जरासंध के शरीर को चीरकर दो टुकड़े कर दिया था।[6]

- -

1. भागवत 10/44/1-5.
2. भागवत 10/43/38.
3. भागवत 10/56/23-24.
4. पद्म 4/26.
5. पद्म 5/277.
6. पद्म 5/278.

गदा युद्ध

पुराण, वाल्मीकि रामायण और महाभारत में गदा युद्ध का बारम्बार वर्णन मिलता है। बलराम और जरासंध के बीच भीषण गदा युद्ध हुआ था। इस युद्ध को देखने के लिए गन्धर्वों सहित अप्सराएँ भी आ पहुँचीं थीं।[1] महाभारत में लिखा है कि तिलोत्तमा अप्सरा को प्राप्त करने के लिए सुन्द और उपसुन्द दैत्य गदा युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए।[2] रावण और कुबेर के मध्य गदा युद्ध हुआ था। यक्षराज कुबेर ने रावण के मस्तक पर गदा से प्रहार किया। तदनन्तर रावण द्वारा गदा प्रहार करने से कुबेर रक्त से नहा उठे और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे।[3]

दुर्योधन ने बलराम से गदा युद्ध की शिक्षा प्राप्त की थी।[4] भीमसेन और दुर्योधन का महान् भीषण गदा युद्ध हुआ था। भीमसेन के गदा के आघात से दुर्योधन रक्तरंजित होकर धराशायी हो गया था। मणिभद्र के गदा के आघात से धूम्राक्ष खून से लथपथ होकर गिर गये थे।[5] कुबेर ने भयंकर गदा लेकर अनुह्राद दैत्य पर गदा चलाया था, किन्तु उसने अपनी गदा से उसको बीच में तोड़ डाला।[6]

द्वन्द युद्ध

जब दो व्यूहाकार खड़ी सेनाएँ एक-दूसरे पर आक्रमण करती थीं, तब रथी का रथी के साथ, अश्वारोही का अश्वारोही के साथ, गजारोही का गजारोही के साथ तथा पैदल का पैदल सैनिक के साथ युद्ध

---

1. हरिवंश 2/36/16.
2. आदिपर्व 211/20.
3. भागवत 7/15/29-35.
4. भागवत 10/57/26.
5. वा.रा. 7/15/10-11.
6. हरिवंश 3/60/68-69.

होता था। इस प्रकार के युद्ध को द्वन्द्व युद्ध की संज्ञा दी गई है। पुराणों में देवासुर-युद्ध में, रामायण में राक्षसी और वानरी सेना के युद्ध में तथा महाभारत में कौरव-पाण्डवों के युद्ध में द्वन्द्व युद्ध का उल्लेख किया गया है।

तारकासुर संग्राम में देवता और असुर मेघ के समान गर्जना करते हुए एक-दूसरे से भिड़ गये। थोड़ी देर में यह युद्ध द्वन्द्व युद्ध के रूप में परिणत हो गया। इस युद्ध में वायुदेव से दनु कुमार का, यम्भ से यमराज का, अग्नि से संह्राद का, महाहनु से नैर्ऋति का, मेघाभ के साथ ईशान का और तारकासुर के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ था। यक्ष, पिशाच, पितर, भूत और गुह्यकगण भी अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से द्वन्द्व युद्ध में संलग्न थे।[1]

श्रीराम की वानरी सेना ने राक्षसों की चतुरंगिणी सेना का द्वन्द्व युद्ध की रीति से सामना किया था। वे राक्षसों को वृक्ष, पर्वत शिखर, गदा, बाण आदि से मारते थे।[2]

भीमसेन और जरासंध ने द्वन्द्व युद्ध की रीति से लड़ा था। तदनन्तर भीमसेन ने जरासंध के शरीर को चीरकर दो टुकड़े करके पृथ्वी पर फेंक दिया था।[3]

इन्द्र और वृत्रासुर के संग्राम में देवताओं का दैत्यों के साथ घोर युद्ध हुआ था। उस घोर संग्राम में मर्यादा का उल्लंघन करने वाला द्वन्द्व युद्ध होने लगा। इस युद्ध में इन्द्र वृत्रासुर के साथ, यमराज व्योमासुर के साथ, तीक्ष्णकोपन अग्नि के साथ, धूम वायु के साथ, अतिकोपन नैर्ऋत के साथ, कुबेर के साथ कुष्माण्ड तथा ईशान के साथ दुःसह दैत्य का द्वन्द्व

---

1. स्कन्द 1/1/28.
2. भागवत 9/10/20.
3. पदम 5/278.

युद्ध हुआ था। अन्य दैत्यगणों का भी देवताओं के साथ द्वन्द्व युद्ध हुआ था।[1]

श्रीराम के सेनापति राक्षसों की चतुरंगिणी सेना के साथ द्वन्द्व युद्ध की रीति से भिड़ गये थे।[2]

तुमुल युद्ध

तुमुल युद्ध में सेना अस्त्र-शस्त्रों से संयुक्त होकर भयानक युद्ध करती हुई महान कोलाहल से व्याप्त हो जाती थी। सम्पूर्ण सेना युद्ध में विकृत अंग होकर अपनी पहचान खो बैठती थी। योद्धा स्व-पक्षीय सैनिकों को विपक्षी मानकर उनका प्राण हरण कर लेता था।

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि देवासुर-संग्राम में हुए तुमुल युद्ध में बाणों और शस्त्रों के प्रहार से देवताओं के होश गायब हो गये थे। बाणों की बौछार से युद्ध-भूमि रुण्ड-मुण्ड से भर गयी थी। देवता छिन्न-भिन्न मस्तक होकर विषादयुक्त हो गये थे।[3] तुमुल युद्ध में युद्ध-भूमि मारो, काटो, पकड़ो आदि की ध्वनि से भयानक कोलाहलयुक्त हो जाती थी।[4]

वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि गन्धर्वों और भरत की सेना में बड़ा भयंकर, रोंगटे खड़े कर देने वाला तुमुल युद्ध हुआ था। वह संग्राम लगातार सात रात्रि तक चलता रहा। तदनन्तर भरत ने संवर्त नामक अस्त्र का प्रयोग करके तीन करोड़ गन्धर्वों का संहार किया था —

---

1. स्कन्द 1/1/17.
2. भागवत 9/10/20.
3. मत्स्य 175/1-10.
4. मत्स्य 25/24.

ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
सप्तरात्रं महाभीमं न चान्यतरयोर्जयः।।[1]

अश्म युद्ध
=========

युद्ध में प्रस्तर खण्डों के प्रहार से शत्रु सेना को विदीर्ण करने का उल्लेख है। युद्ध में विपक्षी सेना पर पर्वतों, वृक्षों, पत्थरों आदि की वर्षा की जाती थी। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि ताटका ने राम-लक्ष्मण पर पत्थरों की वर्षा की थी।[2]

हरिवंश पुराण के अनुसार अनुह्राद दानव ने अपनी सेना को कुबेर से पीड़ित देखकर के कुबेर के रथ पर एक बड़ी शिला पटक दी थी। उस शिला के प्रहार से रथ के चक्र, कूबर, ध्वज-पताका और घोड़े नष्ट हो गये थे। अनुह्राद ने कुबेर पर पर्वत शिखर गिराया था, जिसके आघात से उनके सारे अंग विह्वल हो गये थे और वे पृथ्वी पर गिर पड़े थे।[3] असुरों ने भगवान् नृसिंह के ऊपर विविध अस्त्र-शस्त्रों के साथ शिला का भी प्रहार किया था।[4]

मंत्र युद्ध

यह युद्ध दुर्बल अथवा पराजित राजा के द्वारा किया जाता है। यदि प्रबल आक्रामक संधि का पालन न करे तो दुर्बल राजा उसे बताए कि काम-क्रोध-लोभ आदि के द्वारा अनेक राजा नष्ट हो चुके हैं, आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। आपको ममता त्यागी वीरों से युद्ध, जनता का

---

1. वा.रा. 7/101/5-8.
2. वा.रा. 1/26/15-16.
3. हरिवंश 3/60/39-49.
4. हरिवंश 3/45/19-21.

विनाश कर अधर्म की प्राप्ति तथा धन और मित्र का त्याग नहीं करना चाहिए। यदि उपदेश से कार्य न हो तो गुप्तचरों को नियुक्त कर आक्रामक के अन्तःपुर, धान्य, संग्रहालय आदि को जला दे और रक्षकों का वध करके इन घटनाओं पर खेद प्रकट करने का अभिनय करते हुए कहे कि यह सब नगर और जनपद के निवासियों ने किया है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य युक्तियों को भी आक्रामक के प्रकृति वर्ग को रुष्ट करने के लिए अपनाना चाहिए। इस प्रकार यह दुर्बल राजा द्वारा आक्रामक पर किया गया अप्रत्यक्ष युद्ध होता है।[1]

मायामय युद्ध

भागवत पुराण में वर्णित है कि माया के प्रयोग से क्षण भर में आकाश मेघ से घिर गया था। भयंकर गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकने लगी। बादलों से खून, कफ, पीव, मल-मूत्र एवं चर्बी की वर्षा होने लगी और ध्रुवजी के आगे आकाश से धड़ गिरने लगे। फिर आकाश से पत्थरों की वर्षा के साथ गदा, परिघ, मूसल और तलवार गिरने लगे। बहुत से सर्प वज्र की तरह फुंफकार मारते रोषपूर्ण नेत्रों से आग की चिनगारियाँ उगलते आ रहे हैं। झुण्ड के झुण्ड मतवाले हाथी, सिंह भी दौड़े चले आ रहे हैं। प्रलयकाल के समान भयंकर समुद्र अपनी तरंगों से पृथ्वी को डुबाता हुआ बड़ी भीषण गर्जना के साथ उनकी ओर बढ़ रहा है। असुरों ने अपनी माया से ऐसे ही बहुत से कौतुक दिखलाये।[2]

महिषासुर क्षण में सिंह, क्षण भर में वाराह, क्षण में हाथी तथा क्षण भर में भैंसा होकर दुर्गा से युद्ध कर रहा था। वह क्षण भर में

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 12. 2. भागवत 4/10/23-29.

आकाश में चला जाता, क्षण में पृथ्वी पर उतर आता, क्षण में चारों दिशाओं में घूम जाता और क्षण में गर्जना करने लगता।[1]

चित्रलेखा अप्सरा ने अपनी माया से अनिरुद्ध को अदृश्य करके ऊषा के महल में ले आयी थी।[2] शम्बरासुर ने प्रद्युम्न के साथ मायामय युद्ध किया था। शम्बरासुर ने माया द्वारा प्रद्युम्न पर वृक्षों की वर्षा की थी। तदनन्तर प्रद्युम्न के रथ पर माया से व्याघ्र, वराह, रीछ, वानर, हाथी, घोड़े और ऊँट के रूपों में बाणों का प्रहार किया था। उन्होंने माया से बहुत से गजराज, सिंह तथा सर्प प्रगट किये थे। प्रद्युम्न ने उन मायाओं को दूर करने के लिए विभिन्न मायाओं का प्रयोग किया था।[3] मायावती ने प्रद्युम्न को समस्त मायाओं की शिक्षा दी थी।[4] देवासुर संग्राम में मयासुर ने माया का प्रयोग करके देवताओं के ऊपर वृक्षों, चट्टानों तथा पत्थरों की वर्षा की थी। अग्नि और पवन देवताओं ने इसे शान्त किया था।[5]

भगवान् शिव से युद्ध करते हुए अंधकासुर ने तामसी माया के द्वारा अंधकार फैलाकर अपने शरीर को अदृश्य कर लिया था। उस समय भगवान् नरादित्य ने मनुष्य का रूप धारण करके अंधकार को नष्ट किया था। तदनन्तर भगवान् महेश्वर ने त्रिशूल से अंधकासुर का वध किया था।[6]

इसके अतिरिक्त आकाश युद्ध, दिवा युद्ध, निशा युद्ध आदि का भी वर्णन मिलता है।

---

1. स्कन्द 1/3/20.
2. हरिवंश 2/119/74.
3. हरिवंश 2/106/12-33.
4. हरिवंश 2/104/15.
5. हरिवंश 117/24-34.
6. स्कन्द 5/1.

व्यूह रचना

युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा स्वपक्ष को सुरक्षित रखने के लिए व्यूह रचना की जाती थी। महाभारत में सर्वतोमुख व्यूह, वज्र व्यूह, क्रौंचारूण व्यूह, श्येन व्यूह, महा व्यूह, श्रृंगाटक व्यूह, सर्वतोभद्र व्यूह, शकट व्यूह, चन्द्राकार व्यूह, मण्डलार्द्धक व्यूह, चक्र व्यूह, शराचिमुख व्यूह, पद्म व्यूह आदि का उल्लेख हुआ है।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार युद्ध के लिए मकर व्यूह, शकट व्यूह, वज्र व्यूह, सर्वतोभद्र व्यूह तथा सूची व्यूह की रचना की जाती है। सेना की व्यूह रचना शत्रु की आँखों से ओझल स्थान पर करना चाहिए। व्यूह रचना के लिए उपयोग में आने वाली सेना अधिक हो तो उसको व्यूह में खपाने को "आवाप", पैदल सैनिक को खपाना "प्रत्यावाप", हाथी, घोड़े आदि के प्रक्षेप को "अन्वावाप" और राजद्रोही व्यक्तियों की सेना के प्रक्षेप का नाम "अत्यावाप" है। हाथियों और घोड़ों की सेना से रचित व्यूहों के नाम मध्यभेदी, अन्तर्भेदी और शुद्ध व्यूह हैं। पक्ष, कक्ष और उरस्थ -- इन तीन भागों में विभक्त सेना का दण्ड, भोग, मण्डल और असंहत -- ये चार प्रकार के व्यूह बन सकते हैं। इनमें सेना जिस व्यूह में तिरछा खड़ी की जाती है, वह दण्ड-व्यूह कहलाता है। चार अथवा छः अंगों को एक में मिलाकर वर्तुलाकार बनाये गये व्यूह को भोग-व्यूह कहते हैं। चारों ओर से शत्रु को घेरकर आक्रमण करना मण्डल-व्यूह कहलाता है। यदि चारों ओर से अलग-अलग आक्रमण हो तो असंहत-व्यूह कहा जाता है।[1]

दण्ड व्यूह के अन्तर्गत संजय व्यूह, विजय व्यूह, स्थूलकर्ण व्यूह, विशालविजय व्यूह, चमूमुख व्यूह, झषास्य व्यूह, सूची व्यूह, और वलय

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 10.

व्यूह का समावेश है। भोग व्यूह दो प्रकार के होते हैं -- सर्पसारी और गोमूत्रिका। इसके अतिरिक्त शकट व्यूह, मकर व्यूह और पारिपतन्त व्यूह भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। मण्डल व्यूह के दो भेद हैं -- सर्वतोभद्र और दुर्जय व्यूह। अष्टानीक व्यूह को भी मण्डल व्यूह का एक प्रकार कहा गया है। असंहत व्यूह के पाँच भेद हैं -- वज्र व्यूह, गोधा व्यूह, उद्यान व्यूह (काकपदी व्यूह), अर्धचन्द्रक व्यूह और कर्कटशृंगी व्यूह। इसके अतिरिक्त अरिष्ट व्यूह, अचल व्यूह, अप्रतिहत व्यूह, प्रदर व्यूह, दृढ़क व्यूह, असह्य व्यूह, चाप व्यूह, चापकुक्षि व्यूह, प्रतिष्ठ व्यूह और सुप्रतिष्ठ व्यूह का भी उल्लेख है।

विजिगीषु को प्रदर व्यूह पर दृढ़ व्यूह से, दृढ़ व्यूह पर असह्य व्यूह से, प्रतिष्ठ व्यूह पर सुप्रतिष्ठ व्यूह से, संजय व्यूह पर विजय व्यूह से, स्थूलकर्ण व्यूह पर विशाल व्यूह से तथा पारिपतन्त व्यूह पर सर्वतोभद्र व्यूह से आघात करना चाहिए। दुर्जय व्यूह से सब प्रकार के व्यूहों पर आघात किया जा सकता है।[1] वज्र व्यूह का मुख सब ओर होता था। इसका आश्रय लेकर असुरों ने देवताओं के साथ युद्ध किया था।[2] प्रहस्त ने लंका से निकलने के पूर्व दुर्भेद्य व्यूह की रचना की थी।[3]

अग्नि पुराण में व्यूह के दश भेद वर्णित हैं -- गरुड़ व्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येन व्यूह, अर्धचन्द्र व्यूह, वज्र व्यूह, शकट व्यूह, मण्डल व्यूह, सर्वतोभद्र व्यूह और सूची व्यूह।[4] व्यूह में योद्धाओं को न तो अति निकट रखना चाहिए और न बहुत दूर। राजा को शत्रु से अपने सैन्य व्यूह की रक्षा संघटित योद्धाओं के द्वारा करनी चाहिए।[5]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 10.
2. हरिवंश 3/61/4.
3. वा.रा. 6/32.
4. अग्नि 236/29-30.
5. अग्नि 236/35-36.

पुराणों में व्यूहों का नामोल्लेख है किन्तु उसके निर्माण विधि पर प्रकाश नहीं डाली गयी है।

वाहन

युद्ध में विविध प्रकार के वाहन का प्रयोग किया जाता था। पुराणों में उल्लिखित है कि हाथी, घोड़े, बैल, भैंसा, गधे, ऊँट, खच्चर, मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वाराह, रीछ, कुत्ता, मृग आदि का प्रयोग सेना के द्वारा वाहन के रूप में किया जाता था।[1] पक्षों के वाहन नानाप्रकार के रत्नों से विभूषित थे और उनकी पीठ पर बहुरंगे कम्बल आदि कसे हुए थे।[2]

कौटिल्य के अनुसार घोड़े को गति के आधार पर सान्नाह्य और औपवाह्य कार्य पर नियुक्त करना चाहिए। संग्राम सम्बन्धी कार्य को सान्नाह्य कर्म कहते हैं। औपवाह्य कर्म पाँच प्रकार के होते हैं — मण्डलाकार घूमना, चाल में विकार उत्पन्न हुए बिना घूमना, लंघन, विभिन्न चालों से दौड़ना और चालक के संकेत पर चलना।

उत्तम, मध्यम और अधम रथवाही घोड़ों का क्रमशः बारह, नौ और छः योजन मार्ग चलना निर्धारित ... है। इसी प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम पृष्ठवाही घोड़ों का क्रमशः दस, साढ़े सात और पाँच योजन मार्ग तय करना है। उत्तम, मध्यम और अधम घोड़ों की गति तीन प्रकार की होती है — विक्रम, भद्राश्वास और भारवाह्य।[3]

---

1. भागवत 11/30/15, शिव 2/5/36/26.
2. वनपर्व 162/33.
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.

शुक्रनीति में वर्णित है कि जिस घोड़े का मुख चालीस अंगुल का हो वह उत्तम, 32 अंगुल मुख वाला अश्व मध्यम तथा 28 अंगुल मुख वाला घोड़ा अधम माना जाता है। जिस घोड़ा के कान की लम्बाई 1-10 अंगुल तथा चौड़ाई 3-4 अंगुल होती है, वह उत्तम माना गया है। मुख में बालहीन, ऊँची नासिका, लम्बा गर्दन और छोटे पेट वाला, प्रचण्ड वेग, हंस तथा मेघ के समान शब्द वाला और भौंरी युक्त अश्व उत्तम माना जाता है। शंख, चक्र, गदा, स्वस्तिक, तोरण, धनुष, कलश, माला, मत्स्य, खड्ग के समान आकार वाली भौंरी शुभ मानी जाती है। जो अश्व ऊँचा पैर उठाकर चलते हैं, जिसकी चाल हाथी अथवा सिंह के समान हो अथवा मोर, हंस, तीतर, कबूतर, मृग, ऊँट या बैल के समान हो वह उत्तम कहा गया है।

घोड़े का रंग तोते, मृग, मोर, कबूतर और हंस के सदृश होता है।[1] चित्ररथ नामक गन्धर्वराज ने अर्जुन और उनके भाइयों को अलग-अलग गन्धर्वलोक के सौ-सौ घोड़े भेंट किये थे। वे घोड़े दिव्य कांति से युक्त, मन के समान वेगशाली, आवश्यकतानुसार दुबले-मोटे होने वाले, इच्छानुसार अपना रंग बदलने वाले, सवार की इच्छानुसार वेग से चलने वाले तथा जब आवश्यकता या इच्छा हो, तभी उपस्थित होने में समर्थ थे। इन घोड़ों को देकर चित्ररथ अर्जुन के मित्र हो गये थे।[2]

युद्ध में अश्व की संख्या सबसे अधिक होती थी। इनकी संख्या रथ और गज सेना से तिगुनी होती थी। रथ में कम से कम चार घोड़े अवश्य जुते होते थे।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चित्ररथ ने चार सौ वायु के समान वेगशाली दिव्य अश्व दिये थे तथा तुम्बुरू ने हरे रंग के सुवर्ण मालाओं से विभूषित अश्व अर्पित किया था।[3]

---

1. हरिवंश 3/58/25.
2. आदि पर्व 169/48-58.
3. सभापर्व 52/23-24.

कौटिल्य के मतानुसार हाथी की अधिकतम ऊँचाई नौ हाथ होती है। कर्म के अनुसार हाथी चार प्रकार के होते हैं — दम्य, सन्नाह, उपाविह्य और व्याल। व्याल हाथी सभी कार्मों में दूषित माना गया है।[1]

शुक्रनीति में गज के चार भेद वर्णित हैं -- भद्र, मन्द, मिश्र और भृग गज। वृहदाकार गण्डस्थल तथा मस्तक वाला, श्रेष्ठ भौंह वाला तथा शीघ्रगामी गज उत्तम कहा गया है।

समरांगण में हाथी के मस्तक, सूंड और दाँतों पर प्रहार करके उसे आहत किया जाता था। अंधक ने ऐरावत के मस्तक, सूंड और दाँतों पर प्रहार कर उसे घायल कर दिया था।[2]

चतुरंगिणी सेना में गज सेना को रथ सेना के समान महत्व दिया गया है। महाभारत में कथित है कि प्रत्येक श्रेष्ठ हाथी पर सात पुरुष सवार होते थे। उनमें दो महावत, दो धनुर्धारी, दो खड्.ग-युद्ध विशारद और एक पुरुष शक्ति और त्रिशूल धारण करके बैठता था।[3] रथ में हाथियों को भी जोता जाता था। कालनेमि और निमि का रथ हाथियों के द्वारा खींचा जाता था।[4] मेघनाद के रथ को तीक्ष्ण दाँत वाले चार हाथी खींच रहे थे।[5]

बीस वर्ष का हाथी पकड़ना लाभकारी माना गया है। सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ लम्बा, दस हाथ मोटा और चालीस वर्ष का हाथी उत्तम माना जाता है। तीस वर्ष का मध्यम और पच्चीस वर्ष का अधम होता है।[6] हाथी सोने के जंजीरों से कसे होते थे तथा उनमें बड़े-बड़े घंटे लटकाये जाते थे। घंटों की ध्वनि से युद्ध-भूमि में कोलाहल होने लगता था।[7]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.
2. वामन 9/10-11.
3. उद्योग पर्व 155/16-17.
4. मत्स्य 148/51-52.
5. रामायण 5/48/18.
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.
7. हरिवंश 2/35/16-17.

रणभूमि में चिंघाड़ते हुए हाथी सम्पूर्ण दिशा को भयावह कर देते थे।

अग्नि पुराण में लिखा है कि संगठित व्यूह को तोड़ना, टूटे हुए को जोड़ना तथा चारदीवारी, तोरण, अट्टालिका और वृक्षों को तोड़ना-फोड़ना -- यह उत्तम हाथी का पराक्रम है।[1]

रथ

कौटिल्य अर्थशास्त्र में रथ के छः भेद वर्णित हैं -- देवरथ, पुष्परथ, सांग्रामिक रथ, पारियाणिक रथ, परपुराभियानिक रथ और वैनयिक रथ।[2]

शुक्रनीति के अनुसार रथ लौह निर्मित होना चाहिए। रथ को सुगमतापूर्वक घूमने वाले पहियों से युक्त, सुखपूर्वक आसन से सम्पन्न, आगे की ओर सारथि के आसन से युक्त तथा मध्य में शस्त्रास्त्रों से भरा हुआ होना चाहिए --

लोहसारमयश्चक्रो सुगमो मंचकासनः।
स्वान्दोलायितरूढस्तु मध्यमासन सारथिः।।
शस्त्रास्त्रसंधायुदर इष्टच्छायो मनोरमः।
एव विधो रथो राज्ञा रक्षो नित्यं सदश्वकः।।

रथ को आभूषण, किंकिणी तथा मालाओं से अलंकृत किया जाता था। रथों पर ध्वज-पताकाएँ फहराती रहती थीं। पताकाओं पर विविध चित्र बने होते थे। रथों में घोड़े, हाथी, महिष, मेंढा, गधा, व्याघ्र, ऊँट आदि जुते होते थे।[3]

---

1. अग्नि 236/48-49.
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.
3. मत्स्य 148/44-54.

रथ में रत्न जड़े होते थे। उसमें चार पहिये लगे होते थे। तारकासुर का रथ लौह निर्मित था।[1]

रथ में विविध जीव-जन्तुओं के चित्र अंकित किये जाते थे। मयासुर के रथ में भाँति-भाँति के पशु-पक्षी तथा वनस्पतियों के चित्र बने हुए थे।

रथ मेघ के समान गम्भीर घर्घर घोष करते हुए रणभूमि में कोलाहल उत्पन्न करता था।[2] महाभारत में कुबेर के रथ का वर्णन किया गया है। कुबेर का रथ सुनहले बादल के सदृश और विशाल पर्वत शिखर के समान ऊँचा था। उसमें सुवर्ण मालाओं से विभूषित गन्धर्व-देशीय घोड़े जुते हुए थे। उन्हें नाना प्रकार के रत्नमय आभूषणों से अलंकृत किया गया था।[3]

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि देवताओं ने त्रिपुर को नष्ट करने के लिए विचित्र रथ निर्मित किया था। उन्होंने पृथ्वी को रथ, रुद्र के दो पार्श्वचरों को दोनों कूबर, मेरु को रथ का शिरः स्थान और मन्दर को धुरा बनाया था। शुक्ल और कृष्ण पक्ष को रथ की दो नेमियाँ, कम्बल और अश्वतर नामक नागों को दोनों बगल के पक्ष-यन्त्र बनाये। गगन मण्डल को रथ का सौन्दर्य रूथ, धृतराष्ट्र वंश के नाग बाँधने के रस्सी, वासुकि और रैवत वंश के नाग नाना प्रकार के बाण बने। सुरसा, देवशुनी, सरमा, कद्रू, विनता, तृषा, बुभुक्षा, मृत्यु, ब्रह्महत्या, गोहत्या, बाल हत्या आदि गदा और शक्ति का रूप धारण करके रथ में अवस्थित हुए। कृतयुग जुआ बना और धृतराष्ट्र नाग से उसे बाँधा गया। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद घोड़े हुए। उसमें काले, पीले, श्वेत और लाल रंग की पताकाएँ लगी थीं। छहों

---

1. हरिवंश 143/5-9.
2. हरिवंश 2/35/20-21.
3. वन पर्व 161/23-25.

ऋतुएँ संवत्सर का धनुष और अम्बिकादेवी . धनुष की प्रत्यंचा बनीं। चक्रधारी विष्णु का तेज बाण में व्याप्त था।[1]

रथ के पहिये लोहे के बने होते थे। वह रत्न और सुवर्ण से जटित होता था। उसमें विशाल ध्वज लगे होते थे। उसकी पताका में सोने का डंडा लगा हुआ था। रथ का कूबर मणि का बना था। उसे ऊपर से लोहे की जाली द्वारा ढक दिया गया था और वह विचित्र बेलबूटों से सुशोभित था। रथ नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से भरे होते थे।[2]

बाणासुर के रथ में सहस्रों सूर्य के चिन्ह बने थे, बहुत सी घंटियाँ लगी थीं। वह बहुमूल्य सुवर्ण तथा रत्नों से सुसज्जित था। उसमें सहस्रों चन्द्रमा तथा दस हजार तारों के चिन्ह बने थे। वह अग्नि के समान प्रकाशित हो रहा था।[3]

तारकासुर संग्राम में हाथी, ऊँट, भेड़, घोड़े तथा बहुमूल्य मणियों से युक्त विचित्र-विचित्र रथ व्यूह के आकार में खड़े थे।[4]

सारथि

रथारोही योद्धा के लिए रथ-संचालन में सारथि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। युद्ध में योद्धा की सफलता का श्रेय सारथि को भी जाता है।[5]

---

1. मत्स्य 133/17-43.
2. हरिवंश 2/63/92-95.
3. हरिवंश 2/124/52-53.
4. स्कन्द 1/1/28.
5. कर्ण पर्व 34/71-72.

उत्तम सारथि को देशकाल, शुभ-अशुभ संकेत, दीनता, हर्ष, खेद और रथी के बलाबल का ज्ञान होना चाहिए। ऊँचे-नीचे स्थान को जानना, टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर ध्यान रखना, युद्ध का समय ज्ञात करना, शत्रु के छिद्रों को देखना, उचित समय पर शत्रु के समक्ष रथ ले जाना आदि सारथी का कर्तव्य है। कुशल सारथि को रथ को शत्रु के समक्ष ले जाने और शत्रु के पीछे अथवा दूर हटाने का उचित समय ज्ञात होना चाहिए।[1] सारथि घायल रथी को रणभूमि से बाहर ले जाता था।

आयुध

पुराण, महाभारत तथा रामायण के अनुशीलन से हमें प्राचीनकाल में प्रयुक्त विविध आयुधों का ज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन काल में देवताओं और असुरों के मध्य अनेकों युद्ध हुए थे। इन युद्धों में दोनों पक्षों के द्वारा विविध आयुधों का प्रयोग किया गया। ये आयुध अत्यन्त भयंकर होते थे। क्षणभर में रणभूमि योद्धाओं के शव एवं रक्त आदि से पट जाती थी। अनेकों अस्त्र तो इतने भयंकर और विनाशकारी होते थे कि उनके प्रयोग से ब्रह्माण्ड कंपित हो जाता था और समस्त प्राणी व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगते थे।

पुराणों में वर्णित है कि यक्षों और गन्धर्वों ने भी विविध युद्धों में भाग लिया था और विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते हुए अपने शौर्य का प्रदर्शन किया था। विविध देवासुर संग्राम में यक्षपति कुबेर के साथ उनके अनुचर यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक आदि अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते हुए भयंकर पराक्रम दिखाते थे।

---

1. वा.रा. 6/105/29-30, 6/106/7-8.

युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए कुशल नेतृत्व, साहस, अनुशासन तथा युद्ध नीति के साथ उत्तम हथियार का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। उचित हथियार का प्रयोग करके सेना की एक छोटी-सी टुकड़ी भी शत्रु की भारी सेना को भागने के लिए विवश कर सकती है।

आयुध के भेद

आयुध युद्ध के वास्तविक साधन हैं। सामान्यत: ये दो प्रकार के कहे गये हैं -- अस्त्र और शस्त्र। जिसे किसी यंत्र या हाथ के द्वारा शत्रु तक पहुँचाया जाता है, उसे अस्त्र कहते हैं -- बाण, शक्ति, चक्र आदि। जिसे हाथ में लिए हुए शत्रु पर प्रहार किया जाता है उसे शस्त्र कहते हैं यथा -- तलवार, गदा आदि।

आचार्य कौटिल्य ने आयुध के दो भेद बताये हैं -- स्थिर और चल। स्थिर यंत्रों की संख्या दस होती है -- सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाती, संघाती, यानक, पर्जन्यक, बाहुयंत्र, ऊर्ध्वबाहु और अर्द्धबाहु। चलयंत्रों के सत्रह नाम वर्णित हैं -- पंचालिका, देवदण्ड, सूकरिका, मूसलयष्टि, हस्तिवारक, तालवृन्त, मुद्गर, द्रुघण, कुद्दाल, आस्फोटिम, उद्घाटिम, उत्पाटिम, शतघ्नी, त्रिशूल और चक्र।[1]

महाभारत की नीलकंठी टीका में आयुध के चार भेद बताये गये हैं -- मुक्त, अमुक्त, यंत्रमुक्त और मुक्तामुक्त। जो हथियार हाथ अथवा धनुष से शत्रु के ऊपर प्रहार किये जाते हैं, वे मुक्त आयुध हैं, यथा--बाण आदि। जिसका प्रयोग हाथ पर लेकर शत्रु के ऊपर किया जाता है,

----

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.

उसे अमुक्त आयुध कहते हैं -- यथा -- गदा, परशु आदि। जिनको प्रक्षेपास्त्र के रूप में शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया जाता है, वे मंत्रमुक्त आयुध हैं, जैसे - गोला आदि। जबकि मुक्तामुक्त आयुध शत्रु पर प्रहार करने के पश्चात् प्रहारक के पास पुनः वापस आ जाते थे। जैसे -- इन्द्र का वज्र, विष्णु का सुदर्शन चक्र आदि।[1]

विविध आयुधों का परिचय

हरिवंश पुराण में विभिन्न शस्त्रास्त्रों का उल्लेख हुआ है। हिरण्यकशिपु ने भगवान् नृसिंह पर दण्डास्त्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, धर्मचक्र, महाचक्र, अजितचक्र, ऐन्द्रचक्र, ऋषिचक्र, ब्रह्मचक्र, अशनि, रौद्रास्त्र, शूल, कंकाल, मूसल, ब्रह्मशिरास्त्र, ब्रह्मास्त्र, ऐषीकास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, आग्नेयास्त्र शैशिरास्त्र, वायव्यास्त्र, मथनास्त्र, कपालास्त्र, किंकरास्त्र, शक्ति, क्रौंचास्त्र, हयग्रीवास्त्र, सौम्यास्त्र, पैशाचास्त्र, सर्पास्त्र, मोहनास्त्र, शोषणास्त्र, संतापास्त्र, विलापनास्त्र, जृम्भणास्त्र, प्रापणास्त्र, त्वाष्ट्रास्त्र, कालमुद्गर, क्षोमणास्त्र, संवर्तनास्त्र, सम्मोहनास्त्र, मायाधरास्त्र, गन्धर्वास्त्र, नन्दक, प्रस्वापनास्त्र, प्रमथनास्त्र, वारुणास्त्र और पाशुपतास्त्र का प्रहार किया।[2]

इसी प्रकार मत्स्य पुराण में कथित है कि हिरण्यकशिपु ने नरसिंह के ऊपर दण्ड, कालचक्र, विष्णुचक्र, ब्रह्माण्ड, वज्र, शुष्क और आर्द्र वज्र, शूल, कंकाल, मूसल, मोहन, शोषण, संतापन, विलापन, वायव्य, मथन, कपाल, कैंकर, शक्ति, क्रौंचास्त्र, ब्रह्मशिरास्त्र, कंपन, शातन, त्वाष्ट्रा, सुभैरव, कालमुद्गर, तमनास्त्र, संवर्तन, मायाधर,

---

1. कर्ण पर्व 2/16.

2. हरिवंश 3/45/6-16.

गान्धर्वास्त्र, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, वारूणास्त्र, पाशुपतास्त्र, हयशिरास्त्र, ब्राह्मास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, सर्पास्त्र, पैशाच, शामन, शोषद तथा भावन, प्रस्थापन तथा विकम्पन नामक अस्त्रों का प्रयोग किया। तदनन्तर प्राश, पाश, खड्ग, गदा, मूसल, वज्र, अग्नि, अशनि, वृक्ष, मुदगर, भिन्दिपाल, शिलाएँ, उलूखल, पर्वत, तोप तथा दण्डों से प्रहार किया।[1]

दैत्यों ने प्रास, पाश, शूल, गदा, मूसल, वज्र, अशनि, शिला, बड़े-बड़े वृक्ष, मुदगर, कूटपाश, शूल, ओखली, पर्वत-शिखर, शतघ्नी तथा भयंकर दण्ड आदि से नरसिंह भगवान् पर आघात किया।[2]

गदा, हल, चक्र, बाण, ढाल, फरसा, शूल, वज्र, खंग, शक्ति, धनुष और मूसल — इन सब आयुधों को भगवान् नारायण ने धारण किया था।[3]

कुबेर की आज्ञा से यक्षों ने रावण की सेना पर गदा, मूसल, तलवार, शक्ति और तोमरों की वर्षा करने लगे थे —

ततो गदाभिर्मूसलैरसिभिः शक्तितोमरैः।
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत।।[4]

गन्धर्वों ने अर्जुन पर गदा, शक्ति, ऋष्टि आदि आयुध की वर्षा करने लगे थे —

"ववर्षुरर्जुनं क्रोधाद गदा शक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।"[5]

---

1. मत्स्य 162/19-32.
2. हरिवंश 3/45/19-23.
3. हरिवंश 3/29/6-7.
4. वा.रा. 7/14/11.
5. वन पर्व 245/12.

भीमसेन के शंख की ध्वनि सुनकर यक्षगण गदा, परिघ, खंग, शूल, शक्ति और फरसे लेकर उनसे युद्ध करने के लिए दौड़ पड़े थे —

"गदापरिघनिस्त्रिंशशूलशक्तिपरश्वधा।"[1]

कुबेर के यक्ष योद्धा गदा, परिघ, खंग, तोमर तथा प्राश आदि के युद्ध में कुशल तथा सदैव युद्ध के लिए तत्पर रहते थे।[2]

गन्धर्वों ने कर्ण के ऊपर चारों ओर से तलवार, पट्टिश, शूल और गदाओं का प्रहार किया तथा उनके रथ का जुआ, ध्वजा, ईषादण्ड, घोड़े तथा सारथि को नष्ट कर दिया था। तत्पश्चात् दुर्योधन के रथ के युग, ईषादण्ड, कूबर, ध्वजा, छत्र, तल्प, सारथि और घोड़ों को टुकड़े-टुकड़े काट डाला।[3]

रावण से युद्ध करते हुए यक्ष योद्धा गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुद्गरों का प्रहार करने लगे थे —

ते गदामूसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्गरैः।
अभिघ्नन्तस्तदा यक्षा राक्षसान् समुपाद्रवन्।।[4]

वाल्मीकि रामायण में भी अस्त्र-शस्त्रों की एक लम्बी सूची दी गई है। विश्वामित्र ने श्रीराम को दिव्य एवं महान दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णु चक्र तथा अत्यन्त भयंकर ऐन्द्र चक्र, इन्द्र का वज्र, शिवजी का त्रिशूल, ब्रह्माजी का ब्रह्मशिरास्त्र, ऐषीकास्त्र, ब्रह्मास्त्र, मोदकी गदा, शिखरी गदा, धर्मपाश, कालपाश, वरुण पाश, सूखी और

---

1. वन पर्व 160/48.
2. वन पर्व 161/17.
3. वन पर्व 241/5-32 व 242/1-8.
4. वा.रा. 7/15/4.

गीली अशनि, पिनाक, नारायणास्त्र, अग्नि का प्रिय आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, हयशिरास्त्र, क्रौंचास्त्र, शक्तियाँ, कंकाल, घोरमूसल, कपाल, किंकिणी आदि अस्त्र, नन्दकास्त्र, उत्तम खंग, गन्धर्वों का प्रिय सम्मोहनास्त्र, तामस, सौमन, संवर्त, दुर्जय, मौसल, सत्य और मायामय अस्त्र, सूर्यदेवता का तेजप्रभ नामक अस्त्र, सोम देवता का शिशिरास्त्र, त्वष्टा का दारूणास्त्र, भग देवता का भयंकरास्त्र और मनु का शीतेषु नामक अस्त्र प्रदान किया था।[1]

विश्वामित्र ने श्रीराम को सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, प्राङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढनाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैराश्य, विमल, यौगंधर, विनिद्र, शुचिबाहु, निष्कलि, विरूच, सार्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रूचिर, पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धन, धान्य, कामरूप, कामरूचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान और वरूण आदि इच्छानुसार रूप धारण करने वाले तथा परम तेजस्वी अस्त्रों को प्रदान किया।[2]

विश्वामित्र ने वसिष्ठ के ऊपर आग्नेयास्त्र, वरूण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत और ऐषीक अस्त्रों का प्रयोग किया। तत्पश्चात् मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, मादन, संतापन, विलापन, शोषण, विदारण, सुदुर्जय, वज्रास्त्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वारूणपाश, पिनाकास्त्र, शुष्क और आर्द्र अशनि, दण्डास्त्र, पैशाचास्त्र, क्रौंचास्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मन्थनास्त्र, हयशिरा, दो प्रकार की शक्ति, कंकाल, मूसल, वैद्याधरास्त्र, कालास्त्र, त्रिशूलास्त्र, कापालास्त्र और कंकणास्त्र का प्रहार किया था।[3]

---

1. वा.रा. 1/27/5-20.
2. वा.रा. 1/28/4-10.
3. शल्य पर्व 53/19, भीष्म पर्व 54/113, द्रोणपर्व 134/10.

उपर्युक्त विवरणों से विदित होता है कि प्राचीनकाल में अस्त्र-शस्त्र का भारी भण्डार था, जिसका प्रयोग योद्धागण विपक्षियों को परास्त करने के लिए करते थे। प्रमुख आयुधों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

गदा :--

शुक्रनीति के अनुसार गदा आठ पहल वाली, मूल में मोटी, हृदय के बराबर ऊँची तथा दृढ़दण्ड वाली होती थी। गदा को सोने से मढ़ा जाता था। इसमें अनेक कंटक लगे होते थे तथा घंटों से अलंकृत होती थी। गदा उच्च कोटि के लोहे से बनी होती थी। उसका अग्रभाग गुम्बदाकार होता था।[1]

गदा का आघात करके शत्रुओं को रक्तरंजित कर दिया जाता था। मणिभद्र नामक यक्ष की गदा के आघात से धूम्राक्ष खून से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था।[2] कुबेर और रावण ने एक-दूसरे पर गदा का प्रहार किया था। रावण ने गदा से कुबेर के मस्तक पर प्रहार किया था, जिससे वे रक्त से नहा उठे और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे।[3]

निकुम्भ, वज्रनाभ, कुबेर आदि के गदाओं में कंटक तथा घंटे लगे हुए थे। निकुम्भ ने अनेक काँटों तथा आठ घंटियों से सुसज्जित अपनी गदा का श्रीकृष्ण पर प्रहार किया था।[4] वज्रनाभ ने कंटकों और घंटों वाली गदा को प्रद्युम्न पर चलाया था।[5] कुबेर ने बहुत

---

1. शल्यपर्व 33/19, भीष्मपर्व 54/113, द्रोणपर्व 134/10.
2. वा.रा. 7/15/10-11.
3. वा.रा. 7/15/30-35.
4. हरिवंश 2/90/43.
5. हरिवंश 2/97/12.

से काँटे लगी हुई गदा से अनुह्राद दैत्य की छाती पर प्रहार किया था।[1]

अनेक स्थान में गदा युद्ध का सुन्दर वर्णन किया गया है। जरासंध और बलराम के गदायुद्ध को देखने के लिए गन्धर्वों सहित अप्सराएँ आ गई थीं।[2] इन्द्र ने नमुचि दैत्य पर गदा का आघात किया था, जिससे वह गदा ही चूर-चूर हो गयी थी।[3] देवी की भुजा पर आघात करने से दुर्ग नामक दैत्य की गदा के लाखों टुकड़े हो गये थे।[4] कार्तिकेय की गदा की चोट खाकर तारकासुर तिलमिला उठा था।[5]

यमराज को घायल देखकर कुबेर हाथ में गदा लेकर जम्भ असुर पर आक्रमण किया था।[6] शम्बरासुर और प्रद्युम्न गदा लेकर एक-दूसरे से भिड़ गये थे। प्रद्युम्न ने अपनी गदा के द्वारा शम्बरासुर की गदा को गिराकर उसके ऊपर गदा का प्रहार किया था।[7] अर्जुन लोहे से निर्मित चित्ररथ की गदा को अपनी बाणों से सात टुकड़े कर दिये थे।[8] तिलोत्तमा को प्राप्त करने के लिए सुन्द और उपसुन्द दैत्य एक-दूसरे पर गदाओं का प्रहार करते हुए मारे गये।[9]

हरिवंश पुराण में गदा की लम्बाई चार किष्कु बतायी गई है।[10]

महाभारत में गदा प्रहार की विभिन्न विधियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि दूरवर्ती शत्रु पर गदा फेंकना प्रक्षेप, समीपवर्ती शत्रु पर गदा से प्रहार करना विक्षेप, गदा को घुमाते हुए शत्रु पर चलाना परिक्षेप तथा गदा के अग्रभाग से शत्रु को मारना अविक्षेप कहलाता है।

---

1. हरिवंश 3/60/47.
2. हरिवंश 2/36/16.
3. स्कन्द 1/1/17.
4. स्कन्द 4/2/71.
5. पद्म 1/42.
6. मत्स्य 150/12.
7. भागवत 10/55/18-20.
8. वन पर्व 245/21.
9. आदि पर्व 211/20.
10. हरिवंश 3/30/45.

अग्नि पुराण में गदा के कार्यों का उल्लेख हुआ है। वक्षस्थल और मस्तक पर प्रहार करना, भुजा को तोड़ना, पैरों में प्रहार करना, पादहीन करना, ऊपर की ओर प्रहार करना, सेना को दायें-बायें भगाना आदि गदा के मुख्य कार्य हैं।[1]

महाभारत के सभा पर्व में एक अति विशालकाय गदा का उल्लेख हुआ है, जो एक लाख गदाओं के बराबर थी।

उपर्युक्त वर्णन से विदित होता है कि युद्ध में योद्धागण गदा का प्रयोग करते हुए शत्रु पर भयानक आघात करते थे। हस्तचालित आयुधों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

तलवार :--

महाभारत में तलवार की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है। सृष्टि के प्रथम चरण में जब अधर्म धर्म को नष्ट करने लगा, तब देवताओं के सहयोग से पितामह ब्रह्मा ने शास्त्रीय विधि से एक यज्ञ किया। उस यज्ञ की वेदी से एक भयंकर भूत प्रकट हुआ। उसके प्रादुर्भाव से त्रैलोक्य कंपित हो उठा, दिशाएँ क्षुब्ध एवं अशांत हो गयीं तथा प्रलयकारी हवाएँ बहने लगीं। कुछ समय बाद वही भूत अधर्म विनाशक तीस अंगुल से भी बड़ी तलवार के रूप में परिवर्तित हो गया।[2]

ब्रह्माजी ने तलवार को उत्पन्न कर अधर्म का निवारण करने के लिए इस तीखी तलवार को रूद्र को दिया। वह तलवार रूद्र से विष्णु को, विष्णु से मरीचि को, मरीचि से महर्षियों को प्राप्त हुई। महर्षियों ने इन्द्र को, इन्द्र ने लोकपालों को,

---

1. अग्नि 252/19-23. 2. शांति पर्व 166/11.

अग्नि पुराण में गदा के कार्यों का उल्लेख हुआ है। वक्षस्थल और मस्तक पर प्रहार करना, भुजा को तोड़ना, पैरों में प्रहार करना, पादहीन करना, ऊपर की ओर प्रहार करना, सेना को दाँये-बायें भगाना आदि गदा के मुख्य कार्य हैं।[1]

महाभारत के सभा पर्व में एक अति विशालकाय गदा का उल्लेख हुआ है, जो एक लाख गदाओं के बराबर थी।

उपर्युक्त वर्णन से विदित होता है कि युद्ध में योद्धागण गदा का प्रयोग करते हुए शत्रु पर भयानक आघात करते थे। हस्तचालित आयुधों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

तलवार :--

महाभारत में तलवार की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है। सृष्टि के प्रथम चरण में जब अधर्म धर्म को नष्ट करने लगा, तब देवताओं के सहयोग से पितामह ब्रह्मा ने शास्त्रीय विधि से एक यज्ञ किया। उस यज्ञ की वेदी से एक भयंकर भूत प्रकट हुआ। उसके प्रादुर्भाव से त्रैलोक्य कंपित हो उठा, दिशाएँ क्षुब्ध एवं अशांत हो गयीं तथा प्रलयकारी हवाएँ बहने लगीं। कुछ समय बाद वही भूत अधर्म विनाशक तीस अंगुल से भी बड़ी तलवार के रूप में परिवर्तित हो गया।[2]

ब्रह्माजी ने तलवार को उत्पन्न कर अधर्म का निवारण करने के लिए इस तीखी तलवार को रुद्र को दिया। यह तलवार रुद्र से विष्णु को, विष्णु से मरीचि को, मरीचि से महर्षियों को प्राप्त हुई। महर्षियों ने इन्द्र को, इन्द्र ने लोकपालों को,

---

1. अग्नि 252/19-23.   2. शांति पर्व 166/11.

लोकपालों ने मनु को, मनु ने क्षुप को, क्षुप ने इक्ष्वाकु को और इक्ष्वाकु ने पुरूरवा को यह तलवार प्रदान की। पुरूरवा से आयु ने, आयु से नहुष ने, नहुष से ययाति ने और ययाति से पुरु ने भूतल पर इस तलवार को प्राप्त किया। इस खड्ग का नक्षत्र कृत्तिका, देवता अग्नि, गोत्र रोहिणी तथा गुरू रूद्र है। इसके आठ नामों का उल्लेख हुआ है --

असिर्विशसनं खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च।।

अर्थात् असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल। खड्ग सब आयुधों में श्रेष्ठ है। भगवान् रूद्र ने सर्वप्रथम इसका संचालन किया था।[1]

पुराणों में वर्णित है कि रणभूमि में योद्धाओं के मध्य तलवार से युद्ध होता था। दुर्गा ने तलवार से महिषासुर के मस्तक को काटकर उसका वध किया था।[2] दुर्ग दैत्य ने हाथी का रूप धारण करके देवी पर आक्रमण किया, तब देवी ने पाश से बाँध कर उसकी सूँड़ को तलवार से काटा था।[3] तारकासुर संग्राम में कुबेर गदा और तलवार लेकर उपस्थित हुए थे।[4] प्रद्युम्न ने एक तीक्ष्ण तलवार से शम्बरासुर का शिर काटकर धड़ से अलग कर दिया था।[5] शत्रुघ्न ने सोने की मूँठ वाली तलवार से लवण दानव का मस्तक काट गिराया था।[6] [illegible] विरोचन तलवार चलाने के इक्कीस पैंतरे जानता था --

भ्रान्तमुद्भ्रान्त आविद्धमाप्लुतं विप्लुतम्।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास दानवः।।[7]

---

1. शान्तिपर्व 166/43-85.
2. स्कन्द 1/3/20.
3. स्कन्द 4/2/72.
4. मत्स्य 148/
5. भागवत 10/55/24.
6. हरिवंश 1/54/53.
7. हरिवंश 3/58/32.

तलवार को गोलाकार घुमाना भ्रान्त कहलाता है। इससे शत्रु के प्रहार को निष्फल किया जाता था। तलवार को हाथ में ऊपर उठाकर घुमाने को उद्‌भ्रान्त कहा जाता है। तलवार को घुमाते हुए शत्रु के वार को व्यर्थ करने की कला को आविद्ध नामक पैंतरा कहा गया है। तलवार से शत्रु सेना में विप्लव मचा देना आलुप्त कहलाता है। शत्रु के ऊपर कूदकर तलवार चलाने की कला को विलुप्त कहा जाता है।

शुक्रनीति में वर्णित है कि तलवार कुछ टेढ़ी, एक तरफ धार युक्त, चार अंगुल चौड़ी, छुरा के समान तीक्ष्ण प्रान्त भागवाली, नाभि तक ऊँची, दृढ़ मूँठ वाली और चन्द्रमा के समान स्वच्छ होती है।

तलवार की मूँठ में घुँघरू लगे होते थे।[2] इसकी मूठ स्वर्ण, रजत तथा हाथी दाँत की बनायी जाती थी।[3]

कौटिल्य के अनुसार खड्ग के तीन भेद हैं -- निस्त्रिंश, मण्डलाग्र और असियष्टि। इसकी मूठ गैंडे तथा भैंस की खाल और हाथी दाँत से बनी होती है।[3]

<u>मुद्‌गर</u> :--

मुद्‌गर को शत्रु पर फेंककर प्रहार किया जाता था। तपस्या करके पार्वती ने मुद्‌गर की सृष्टि की थी। पार्वती देवी ने अपने दिव्य मुद्‌गर से शुम्भ-निशुम्भ नामक दोनों दैत्यों का संहार किया था। यह मुद्‌गर कालदण्ड के समान भयंकर तथा देवताओं, दानवों और मनुष्यों के लिए अमोघ था। पार्वती देवी ने संतुष्ट होकर इसे शम्बरासुर को प्रदान किया था।[4]

---

1. विराट पर्व 43/21.   2. द्रोण पर्व 114/83.
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.
4. हरिवंश 2/106/37-40. स्कन्द 1/3/18.

शम्बरासुर ने जब इस मुद्गर को हाथ में लिया, तब सहसा बारह सूर्य प्रकट हो गये, समस्त पर्वत हिलने लगे, पृथ्वीं काँप उठी, समुद्र उछलने लगे, समस्त देवताओं में क्षोभ फैल गया, आकाश में गीधों के समूह मंडराने लगे, उल्कापात होने लगा तथा अत्यन्त रूखी वायु बहने लगी थी। शम्बरासुर ने मुद्गर को घुमाकर प्रहार किया तब प्रद्युम्न ने रथ से उतर कर और दोनों हाथ जोड़कर पार्वती देवी का स्मरण किया। पार्वती के वर के प्रभाव से यह मुद्गर कमल पुष्प की माला बनकर प्रद्युम्न के कंठ में सुशोभित होने लगी थी।[1]

नारायण ने प्रहलाद के द्वारा फैंके गये मुद्गर को बाणों के द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिया था।[2] दुर्गा देवी ने मुद्गर से ज्वालामुख नामक दैत्य का वध किया था।[3] तारकासुर ने कुमार कार्तिकेय के उपर मुद्गर का प्रहार किया था, परन्तु उन्होंने अमोघ और तेजस्वी चक्र के द्वारा उसे नष्ट कर दिया था।[4]

मुद्गर का कार्य -- तोड़ना, छेदना, चूर्ण करना आदि मुद्गर के मुख्य कर्म हैं।[5]

<u>मूसल :--</u>

मूसल शत्रु के उपर घुमाकर फैंक दिया जाता था। प्रक्षिप्त मूसल को योद्धागण हाथ से पकड़ लेते थे। कुजम्भ नामक दैत्य ने अपने मूसल को नन्दी पर घुमाकर प्रहार किया था, किन्तु नन्दी ने उछलकर उसे हाथ से पकड़ लिया था।[6]

---

1. हरिवंश 2/107/1-21.
2. मत्स्य 153/190-191.
3. स्कन्द 11/3/20.
4. पद्म 1/42.
5. अग्नि 252/14.
6. वामन 2/40/43-44.

दुर्गा देवी ने मूसल से दहन नामक दैत्य पर प्रहार किया था, जिससे वह मारा गया।[1] रावण ने कुबेर पर आक्रमण कर दिया था। उस समय मणिभद्र नामक यक्ष और धूम्राक्ष राक्षस के मध्य भयंकर युद्ध हुआ था। धूम्राक्ष ने मणिभद्र के ऊपर मूसल का प्रहार किया था।[2]

भिन्दिपाल :--

भिन्दिपाल का प्रहार शत्रु पर फैंक कर किया जाता था। प्रक्षिप्त भिन्दिपाल को लक्ष्य में पहुँचने से पहले पकड़ लिया जाता था। तारकासुर ने कुमार कार्तिकेय के ऊपर भिन्दिपाल से वार किया था। किन्तु कुमार ने लक्ष्य भेदने से पूर्व ही उसको हाथ से पकड़ लिया था।[3] जम्भ दैत्य ने यमराज के हृदय पर भिन्दिपाल का आघात किया था। उसके प्रहार से यमराज पीड़ित होकर रक्त वमन करने लगे थे।[4] दुर्गा देवी ने भिन्दिपाल से चामर नामक दैत्य का वध किया था।[5]

अग्नि पुराण में भिन्दिपाल के चार कर्म का उल्लेख है। संभ्रान्त, विभ्रान्त, गात्रविसर्ग और दुर्धर -- ये चार भिन्दिपाल के कर्म हैं।[6]

चक्र :--

चक्र पहिये की तरह गोल होता था। इसके प्रान्त भाग में छुरे लगे होते थे। चक्र के द्वारा शत्रु के शस्त्रास्त्र, वाहन, रथ तथा मस्तक काट दिये जाते थे। इसमें असंख्य आरे लगे होते थे।

---

1. स्कन्द 1/3/20.
2. वा.रा. 1/15/10.
3. मत्स्य 160/70, पद्म 1/42.
4. मत्स्य 150/11.
5. स्कन्द 1/3/20.
6. अग्नि 252/15.

वामन पुराण के अनुसार चक्र की नाभि में पितामह, चोटी में महादेव, अरों के मूल में इन्द्र, सूर्य तथा अग्नि आदि देवता, गति में वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश, अरों के किनारे में मेघ, विद्युत, नक्षत्र एवं ताराओं के समूह तथा बाह्य भाग में बालखिल्यादि मुनि स्थित रहते हैं।[1]

चामुण्डा देवी ने चक्र से चण्ड-मुण्ड दोनों दैत्यों के मस्तक काट दिये थे।[2] दुर्ग दैत्य ने देवी पर चक्र चलाया था, किन्तु देवी ने बाणों से काटकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिया था।[3] श्रीकृष्ण के चक्र में सहस्र आरे थे और उसके प्रान्तभाग में छुरे लगे हुए थे।[4] उन्होंने अपने चक्र से शिशुपाल का शिर धड़ से अलग कर दिया था।

अग्नि पुराण में चक्र के निम्नलिखित कार्य वर्णित हैं -- काटना, छेदना, गिराना, घुमाना और अलग करना।[5]

<u>शक्ति :--</u>

रामायण में वर्णित है कि मय ने शक्ति की रचना की थी। यह घंटी युक्त, घनघोर शब्द करने वाली तथा शत्रु का नाश करने वाली अमोघ शक्ति थी।[6] इसे शत्रु पर फेंक कर आघात किया जाता था। यह धारदार होती थी। इसे बाण के द्वारा काट दिया जाता था। इसके आघात से पीड़ित होकर शत्रु मूर्छित हो जाता था अथवा मारा जाता था।

---

1. वामन 68/11-14.
2. स्कन्द 1/3/20.
3. स्कन्द 4/2/71.
4. अग्नि 252/8.
5. हरिवंश 2/97/16.
6. रामायण 6/10/30-37.

श्रीकृष्ण ने मुर दानव के द्वारा चलायी गयी शक्ति को सोने के पंख युक्त क्षुरप्र नामक बाण से काटकर दो टुकड़े कर दिये थे।[1] कार्तिकेय ने सम्पूर्ण लोकों को भय देने वाली, अमोघ, भयंकर, दिव्य, प्रलयाग्नि की भाँति प्रकाशित तथा घंटियों की माला से अलंकृत शक्ति को श्रीकृष्ण पर चलाया था। श्रीकृष्ण ने उसे हुँकार से ही पृथ्वी पर गिरा दिया था।[2] तारकासुर ने अपनी भारी शक्ति चलाकर इन्द्र को घायल कर दिया था। मुचुकुन्द तारक की शक्ति से आहत होकर युद्ध भूमि में गिर पड़े थे। उन्होंने वीरभद्र पर भी शक्ति से प्रहार किया था।[3]

तारकासुर और कुमार कार्तिकेय शक्ति लेकर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। कुमार कार्तिकेय ने अपनी शक्ति के आघात से तारकासुर का वध किया था।[4] दुर्गा देवी की शक्ति के द्वारा विकटाक्ष दैत्य का प्राणान्त हो गया था।[5] दुर्ग दैत्य ने देवी के ऊपर शक्ति का प्रहार किया था, जिसे देवी ने बाणों द्वारा चूर्ण कर डाला था।[6] मणिभद्र यक्ष ने रावण के ऊपर तीन शक्तियों का प्रहार किया था।[7] बाणासुर की शक्ति अग्नि के समान प्रज्वलित तथा घंटाओं की माला से व्याप्त थी।[8]

वज्र :--

स्कन्द पुराण में लिखा है कि देवताओं ने दधीचि मुनि के पीठ की हड्डी से वज्र बनाया था। इसी वज्र से इन्द्र ने वृत्रासुर को विदीर्ण किया था, जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी।[9] त्रिपुर

---

1. हरिवंश 2/63/52.
2. हरिवंश 2/126/14-19.
3. स्कन्द 1/1/28.
4. स्कन्द 1/1/29.
5. स्कन्द 1/3/20.
6. स्कन्द 4/2/71.
7. वा॰रा॰ 7/15/15.
8. हरिवंश 2/119/160-161.
9. स्कन्द 1/1/17.

में इन्द्र अपने भयंकर वज्र से दानवों पर प्रहार करने लगे थे।[1] दुर्ग दैत्य ने पर्वत शिखर को देवी पर गिरा दिया था, महादेवी ने वज्र के प्रहार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे।[2]

इन्द्र ने नमुचि नामक दैत्य पर वज्र का प्रहार किया था, परन्तु उसके आघात से नमुचि का एक रोम भी न टूट सका था।[3] इन्द्र के वज्र के प्रहार से तारकासुर व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था।[4] इन्द्र के वज्र आठ धार युक्त थे। उन्होंने अपने वज्र से बल और पाक नामक दैत्यों के सिर काट लिया था।[5]

परिघ :--

परिघ एक हस्त चालित आयुध था। यह लौह निर्मित होता था। इसे मालाओं से अलंकृत किया जाता था। इसमें कंटक लगे होते थे। इसके प्रहार से मस्तक फट जाते थे तथा इससे योद्धा घायल हो जाते थे। परिघ को घुमाकर शत्रु पर फेंका जाता था।

परिघ यमदण्ड के समान भयंकर होता था। दूषण नामक दैत्य का परिघ स्वर्णमंडित तथा लोहे के कंटकों से युक्त था। वह वज्र के समान कठोर था।[6] कालनेमि ने परिघों से मारकर यक्षराज कुबेर को पराजित कर दिया था।[7] तारकासुर संग्राम में दानवों द्वारा छोड़े गये परिघों से देवगण घायल होने लगे थे। परिघों की मार से उनके मस्तक फट गये तथा वक्षस्थल विदीर्ण हो गये थे।[8]

---

1. मत्स्य 135/76.
2. स्कन्द 4/2/72.
3. स्कन्द 1/1/17.
4. स्कन्द 1/3/29.
5. भागवत 8/11/28.
6. हरिवंश 3/6/8.
7. मत्स्य 177/49.
8. हरिवंश 1/45/7-9.

अनिरुद्ध परिघ से भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत और प्लुत आदि बत्तीस प्रकार के पैंतरों का प्रयोग करते हुए युद्ध कर रहे थे।[1] परिघ के बत्तीस पैंतरें निम्न हैं — भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, सृत, संपान्त, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संधान, मस्तकभ्रामण, भुजभ्रामण, पाश, पाद, विबन्ध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थानकप्लुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, दृढ़मुष्टिता, तिर्यक्प्रचार और ऊर्ध्वप्रचार।

पाश :—

समरांगण में शत्रु को बाँधने के लिए पाश का प्रयोग किया जाता था। पाश के किनारे में छुरे लगे होते थे। प्राग्ज्योतिषपुर के द्वार में मुर दैत्य के द्वारा निर्मित छः हजार पाश थे, जिनके किनारों में छुरे लगे हुए थे।[2] त्रिपुर संग्राम में वरूण देव अपने उग्र पाश से दानवों को आबद्ध करने लगे थे।[3] अपने काल पाश को लेकर वरूण तारकामय संग्राम में डटे हुए थे।[4] कुबेर मयपुर के पश्चिम द्वार में पाश धारण किये हुए घेरा डाले थे।[5] जम्भ नामक दैत्य ने अपने पाश से सहस्रों शत्रुओं को बाँध दिया था।[6]

अग्नि पुराण के अनुसार पाश की लम्बाई दस फिट होनी चाहिए। उसके किनारे पर एक छल्ला बना होना चाहिए। छल्ले में रस्सियाँ होती हैं, जिसकी लम्बाई तीस हाथ की हो और जिसे तीन छल्लों के रूप में तह कर लिया गया हो। इससे फेंककर प्रहार किया जाता है।[7]

---

1. हरिवंश 2/119/122-123.
2. हरिवंश 2/63/46.
3. मत्स्य 135/76.
4. हरिवंश 1/44/12.
5. मत्स्य 138/25.
6. मत्स्य 150/93.
7. अग्नि 252/2-6.

बाणासुर ने अनिरुद्ध को नागपाश से आबद्ध कर दिया था।[1] शत्रुओं को पाश से बाँधकर गदा से आहत किया जाता था।

शूल :--

शूल को शत्रु पर फेंक कर प्रहार किया जाता था। इसका अग्रभाग नुकीला होता था। त्रिपुर के युद्ध में यक्षराज कुबेर कालसदृश शूल से दानवों पर प्रहार कर रहे थे।[2] नरकासुर के द्वारा प्रक्षिप्त शूल को श्रीकृष्ण ने क्षुरप्र नामक बाण के द्वारा काटकर दो टुकड़े कर दिया था।[3] इन्द्र का शूल नमुचि दैत्य के शरीर का स्पर्श होते ही सैकड़ों टुकड़े हो गया था। नमुचि ने इन्द्र पर शूल का आघात किया था।[4] दुर्ग दैत्य ने प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित शूल लेकर देवी के ऊपर चलाया, किन्तु देवी ने उसे अपने शूल द्वारा बीच में ही काट गिराया था।[5] रावण ने राम के ऊपर वज्र के समान कठोर, भयंकर शब्द करने वाले, शत्रुनाशक और प्रलयाग्नि के समान भयंकर शूल का प्रहार किया था। उसमें आठ घंटियाँ लगी थीं।[6]

त्रिशूल :--

त्रिशूल के अग्रभाग में तीन शिखायें होती थीं। इसे शत्रु पर फेंक कर आहत किया जाता था। इसके आघात से योद्धा घायल होकर गिर पड़ते थे। भगवान् महेश्वर का त्रिशूल जगत् प्रसिद्ध है।

---

1. शिव 2/5/53/19.
2. मत्स्य 135/77.
3. हरिवंश 2/63/118-119.
4. स्कन्द 1/1/17.
5. स्कन्द 4/2/71.
6. वा.रा. 6/104/8-12.

मत्स्य पुराण में वर्णित है कित्रिशूल अग्नि के समान विकराल तथा पीतवर्ण के होते थे। वीरभद्र ने त्रिशूल से तारकासुर पर भयंकर आघात किया था। इसके प्रहार से वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था।[1] दुर्मदैत्य ने पर्वत को उखाड़कर देवी के ऊपर गिरा दिया था, तब भगवती देवी ने उस दैत्य पर त्रिशूल का प्रहार किया था।[2]

भगवान् शिव ने अंधकासुर के बाणों को त्रिशूल से सैकड़ों टुकड़े कर दिये थे तथा त्रिशूल से अंधकासुर के शरीर को विदीर्ण कर दिया था।[3] यक्षों को पीड़ित देखकर कुबेर अपने भीषण त्रिशूल से दैत्यों को नष्ट करने लगे थे।[4] मणिमान् ने चमचमाता हुआ महान त्रिशूल हाथ में लेकर भीमसेन पर चलाया, किन्तु भीमसेन ने गदा के अग्रभाग से त्रिशूल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे।[5]

बाण :—

बाण धनुष में संधान करके दूर के लक्ष्य तक पहुँचाया जाता है। इसके द्वारा शक्ति, चक्र, धनुष आदि को काटा जाता था। इसका अग्रभाग नुकीला और तीक्ष्ण होता था। योद्धागण इसको चलाकर शत्रुओं को बींध डालते थे तथा रथ, वाहन, सारथि तथा ध्वजा को नष्ट कर देते थे।

महिषासुर से युद्ध करते हुए देवी ने असुर की बाहों, छाती और मुख पर बाणों का प्रहार किया था। तब दैत्य ने दुर्गा के मुख, भुजाओं तथा नेत्रों पर बाण चलाया था। दुर्गाजी ने बाण से

---

1. स्कन्द 1/1/28.
2. स्कन्द 4/2/72.
3. स्कन्द 5/1/57.
4. मत्स्य 150/108.
5. वन पर्व 160/71-74.

दैत्य के सारथि, घोड़े, धनुष और ध्वजा को नष्ट कर दिया था।[1] दुर्ग-दैत्य द्वारा चलायी गई शक्ति और चक्र को देवी ने बाण के द्वारा काट गिराया था।[2] दुर्गदैत्य ने देवी को बाणों से आच्छादित कर दिया था। महादेवी ने अपने बाणों से दैत्य को बींधकर वध कर दिया था।[3]

शिवजी ने अंधकासुर को बाणों से घायल करके उन्हें बाणों से आच्छादित कर दिया था।[4] मय दानव ने इन्द्र, यमराज, कुबेर, नंदी, तथा कार्तिकेय को श्रेष्ठ बाणों द्वारा बींध डाला था।[5] जम्भ और कुबेर आपस में बाणों का प्रहार करते हुए लड़ते रहे। कुबेर ने हजारों बाणों से जम्भ के हृदय को बींध कर उसे मूर्च्छित कर दिया था।[6] बलराम ने भल्ल मारकर सेनापति कैशिक के धनुष के दो टुकड़े कर दिया था। श्रीकृष्ण ने नाराचों से चित्रसेन, कैशिक और जरासंध को वेध डाला था।[7] शिशुपाल ने वृद्ध दुर्ग का सिर एक भल्ल से काट गिराया था। श्रीकृष्ण ने भल्ल से मुर दानव का शिर काट दिया था।[8]

दानवराज कुजम्भ ने क्षुर, क्षुरप्र, भल्ल, पात और अंजलिक नामक बाणों से हाथियों के मस्तक काट डाले थे।[9] क्षुरप्र, विशिख, भल्ल, वत्सदन्त तथा शिलीमुख भी बाणों के विविध भेद हैं।[10]

भीमसेन ने भल्ल के द्वारा यक्षों के शूल, शक्ति और फरसों को काट गिराया था।[11] कर्ण ने लोहे के क्षुरप्र, विशिख, भल्ल और

---

1. स्कन्द 1/3/20.
2. स्कन्द 4/2/71.
3. स्कन्द 4/2/72.
4. स्कन्द 5/1/57.
5. मत्स्य 140/40.
6. मत्स्य 150/
7. हरिवंश 2/35/85-88.
8. हरिवंश 2/63/52-55.
9. हरिवंश 3/56/52.
10. हरिवंश 3/54/65.
11. वनपर्व 160/49-50.

वत्सदन्त नामक बाणों की वर्षा करके सैकड़ों गन्धर्वों को घायल कर दिया था।[1] अर्जुन भल्ल नामक बाणों के द्वारा गन्धर्वों के मस्तक, बाहु आदि काट-काट कर गिराने लगे थे।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से विदित होता है कि बाण लौह निर्मित अस्त्र है। इसका प्रयोग आयुधों को काटने तथा योद्धाओं को बींधने के लिए होता था। बाण के विविध नामों का उल्लेख है -- यथा भल्ल, नाराच, क्षुर, नालिक, वत्सदन्त, विशिख, क्षुरप्र आदि।

महाभारत नीलकंठी टीका में बाण की दस गतियाँ बतायी गई हैं -- उन्मुखी, अभिमुखी, तिर्यक्, मन्दा, गोमूत्रिका, ध्रुवा, स्खलिता, यमकाक्रान्ता, क्रुष्टा और अतिक्रुष्टा।

उन्मुखी गति से छोड़ा हुआ बाण मस्तक पर, अभिमुखी गति से प्रेरित बाण वक्ष स्थल पर, तिर्यक गति से चलाया गया बाण पार्श्व भाग में, मन्दा गति से प्रेरित बाण त्वचा में आघात करते हैं। गोमूत्रिका गति से चलाये गये बाण बायें और दायें दोनों ओर जाते हैं तथा कवच को भी काट देते हैं। ध्रुवा गति निश्चित रूप से लक्ष्य भेदन करती है। स्खलिता लक्ष्य से विचलित हो जाती है। यमकाक्रान्ता गति से चलाया गया बाण लक्ष्य बेधकर निकल जाते हैं। क्रुष्टा गति लक्ष्य के एक अवयव का वेध करती है। अतिक्रुष्टा गति से चलित बाण शत्रु का मस्तक काट कर उसके साथ दूर जा गिरता है।

महाभारत की नीलकंठी टीका में बाण के आधार पर दशविध धनुर्वेद की व्याख्या की गई है --

आदानमथ संधानं मोक्षणं विनिवर्तनम्।
स्थानं मुष्टिः प्रयोगश्च प्रायश्चितानि मण्डलम्।।
रहस्यं चेति दशधा धनुर्वेदाङ्गमिष्यते।

---

1. वनपर्व 241/12-13. 2. द्रोणपर्व 19/22.

अर्थात् आदान, संधान, मोक्षण, विनिवर्तन, स्थान, मुष्टि, प्रयोग, प्रायश्चित, मण्डल और रहस्य -- ये धनुर्वेद के दस अंग हैं। तरकस से बाण निकालने को आदान, धनुष की प्रत्यंचा पर रखना संधान, लक्ष्य पर चलाना मोक्षण, छोड़े हुए बाण को लौटाना विनिवर्तन कहलाता है। शरसंधान के समय धनुष और प्रत्यंचा के मध्य देश को स्थान, तीन या चार अंगुलियों के सहयोग को मुष्टि, अंगुलियों के मध्य से बाण के संधान को प्रयोग कहते हैं। प्रत्यंचा या बाण के आघात से बचने के लिए दस्ताने को धारण करना प्रायश्चित, घूमते हुए लक्ष्य का वेध करना मण्डल और शब्द के आधार पर लक्ष्य वेधना या एक ही समय अनेक लक्ष्यों को वेधना रहस्य कहलाता है।[1]

<u>धनुष :--</u>

युद्ध में धनुष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक युद्ध में धनुष-बाण का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता था।

महाभारत के अनुसार धनुष की लम्बाई एक ताल अर्थात् चार हाथ की होती थी।[2] उसे सोने या चाँदी के आवरण से ढँका जाता था तथा मणि आदि रत्नों से सजाया जाता था।[3]

योद्धा गण धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींच कर बाण चलाते थे और धनुष पर योद्धा मुष्ठिबंध किये रहते थे।[4] धनुष में एक ही बार में अनेक बाणों का संधान किया जाता था।[5]

---

1. आदिपर्व 220/72.
2. उद्योग पर्व 26/24.
3. कर्णपर्व 58/11.
4. मत्स्य 173/16.
5. वामन 8/75.

धनुष का निर्माण हड्डी, सींग, लकड़ी आदि से किया जाता था। धनुष की प्रत्यंचा मूर्वा, अर्क, वेणु, चर्म आदि से बनी होती थी। धनुष के तीन भेद हैं -- कार्मुक, कोदण्ड और द्रूण।[1]

योद्धा बाण से शत्रु के धनुष को काट देते थे। दुर्गा ने महिषासुर के धनुष काट दिया था।[2] बलराम ने भल्ल से सेनापति कैशिक के धनुष को दो टुकड़े कर दिया था।[3]

दिव्यास्त्र :--

पुराणों के परिशीलन से विदित होता है कि प्राचीन काल में युद्ध भूमि में दिव्यास्त्रों का प्रयोग होता था। दिव्यास्त्रों के निवारण के लिए दिव्यास्त्र का ही प्रयोग किया जाता था। देवी द्वारा प्रयुक्त दिव्यास्त्र को शान्त करने के लिए शंखचूड़ ने दिव्यास्त्र का ही आश्रय लिया था।

युद्ध में प्रयुक्त प्रमुख दिव्यास्त्र का परिचय निम्नानुसार है :--

ब्रह्मास्त्र :--

ब्रह्मास्त्र में सम्पूर्ण लोकों को भस्म करने की शक्ति होती थी। इसका प्रयोग जितेन्द्रिय पुरुष ही कर सकता था। यदि अजितेन्द्रिय पुरुष इसका प्रयोग करता है, तब उसे पुनः लौटाना मृत्यु को निमंत्रण देना है। यह सभी प्रकार के अस्त्रों के निवारण करने में समर्थ होता था। एक ही व्यक्ति इसका दो बार प्रयोग

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.
2. स्कन्द 1/3/20.
3. हरिवंश 2/35/85.

नहीं कर सकता था।[1] समस्त दिव्यास्त्रों में यह सर्वाधिक खतरनाक दिव्यास्त्र है।

ब्रह्मास्त्र की शान्ति के लिए ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग किया जाता है।[2]

आग्नेयास्त्र :--

हरिवंश पुराण में उल्लिखित है कि इसकी सृष्टि श्रीकृष्ण ने प्रकृति से की थी।[3] एक अन्य स्थल पर ब्रह्मा द्वारा भी आग्नेयास्त्र की रचना का वर्णन प्राप्त होता है।[4]

आग्नेयास्त्र के निवारण के लिए वारूणास्त्र या पर्जन्यास्त्र का प्रयोग किया जाता था। कुबेर के द्वारा प्रयुक्त आग्नेयास्त्र को रावण ने वारूणास्त्र के द्वारा शान्त किया था।[5] श्रीकृष्ण ने बाणासुर द्वारा चलाये गये आग्नेयास्त्र के निवारण के लिए पर्जन्यास्त्र का प्रयोग किया था।[6]

शम्बरासुर ने जब माया के द्वारा वृक्षों की वर्षा की थी तब इसके उपशमन के लिए प्रद्युम्न ने आग्नेयास्त्र चलाकर उसका नाश किया था।[7] अर्जुन के द्वारा प्रयुक्त आग्नेयास्त्र से दस लाख गन्धर्व नष्ट हो गये थे।[8] अर्जुन ने आग्नेयास्त्र के द्वारा चित्ररथ गन्धर्व के रथ को जलाकर भस्म कर दिया था।[9] चित्ररथ ने अर्जुन से विधिपूर्वक आग्नेयास्त्र को प्राप्त किया था।[10]

---

1. वा॰रा॰ 5/48/36-50.
2. भागवत 10/63/13.
3. हरिवंश 2/127/77.
4. हरिवंश 3/29/16.
5. वा॰रा॰ 7/15/31.
6. भागवत 10/63/13.
7. हरिवंश 2/106/12-13.
8. वनपर्व 245/7.
9. आदिपर्व 169/31.
10. आदिपर्व 182/3.

ऐन्द्रास्त्र :--

ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग रौद्रास्त्र के निवारण के लिए किया जाता था। भगवान् शिव द्वारा प्रयुक्त रौद्रास्त्र को श्रीकृष्ण ने ऐन्द्रास्त्र के द्वारा शान्त किया था।[1]

ऐषीकास्त्र :--

ऐषीकास्त्र के प्रयोग से वज्रास्त्र शान्त हो जाता था। इसके प्रयोग से प्रज्वलित अग्नि में सेना दग्ध होने लगती थी। ऐषीकास्त्र को आग्नेयास्त्र के द्वारा शान्त किया जाता था।[2] इसे ऐन्द्रास्त्र से भी शान्त किया जाता था।

आङ्गिरसास्त्र :--

आङ्गिरसास्त्र का उपशमन मोहनास्त्र के द्वारा किया जाता था। श्रीकृष्ण ने मोहनास्त्र के द्वारा भगवान् शिव के आंगिरस नामक अस्त्र को शान्त किया था।[3]

मोहनास्त्र (सम्मोहनास्त्र) :--

विश्वामित्र ने श्रीराम को मोहनास्त्र प्रदान किया था। यह गन्धर्वों का प्रिय अस्त्र है --

गान्धर्वमस्त्रदयितं मोहनं नाम नामतः।[4]

श्रीकृष्ण ने मोहनास्त्र के द्वारा भगवान् शिव के आंगिरस नामक अस्त्र का निवारण किया था।[5]

---

1. हरिवंश 1/124/44-46. 2. मत्स्य 153/96-100.
3. हरिवंश 2/124/44-46, भीष्मपर्व 1/32.
4. वा. रा. 1/27/14. 5. हरिवंश 2/124/44-46.

जृम्भणास्त्र :--

जृम्भणास्त्र के प्रयोग से सुधबुध भूल कर योद्धा जँभाई लेने लगता था। श्रीकृष्ण ने शिवजी के ऊपर जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया था, जिससे वे धनुष-बाण लिए हुए जँभाई लेने लगे थे तथा उनकी सुधबुध नहीं रही।[1]

पार्जन्यास्त्र :--

पार्जन्यास्त्र को शान्त करने के लिए सावित्रास्त्र या आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया जाता था। इसके प्रयोग से शत्रु की सेना में बाणों की वर्षा होने लगती थी।

कार्तिकेय ने पार्जन्यास्त्र के निवारण के लिए सावित्रास्त्र का प्रयोग किया था।[2] बाणासुर संग्राम में श्रीकृष्ण ने शिवजी पर पार्जन्यास्त्र का प्रहार किया था। वह प्रज्वलित अस्त्र शिवजी के रथ पर बाणों की वर्षा करने लगा, तब रुद्रदेव ने आग्नेयास्त्र से उसे शान्त किया था।[3] हयग्रीव दैत्य ने पर्वत के समान विशाल शिला से श्रीकृष्ण पर प्रहार किया था। श्रीकृष्ण ने पार्जन्यास्त्र का प्रयोग करके उसके सात टुकड़े कर दिये थे।[4] पार्जन्यास्त्र से श्रीकृष्ण ने बाणासुर के दानवास्त्र का निवारण किया था।[5]

सावित्रास्त्र :--

सावित्रास्त्र के द्वारा पार्जन्यास्त्र और राक्षसास्त्र का उपशमन किया जाता था। शिवजी के राक्षसास्त्र को शांत करने के लिए

---

1. हरिवंश 2/125/5.
2. हरिवंश 2/126/6.
3. हरिवंश 2/124/36-41.
4. हरिवंश 2/63/73-74.
5. हरिवंश 2/126/56-64.

श्रीकृष्ण ने सावित्रास्त्र का प्रयोग किया था।[1] पार्जन्यास्त्र के निवारण के लिए कार्तिकेय ने सावित्रास्त्र का प्रयोग किया था।[2]

नारायणास्त्र :--

वज्रास्त्र और कालदण्ड नामक अस्त्र को शान्त करने के लिए नारायणास्त्र का प्रयोग होता था।[3] इससे वैष्णवास्त्र का भी उपशमन किया जाता था। देवी ने नारायणास्त्र का प्रयोग करके शंखचूड के वैष्णवास्त्र का उपशमन किया था।[4]

इसका प्रयोग होने के पश्चात् इसे वापस नहीं लौटाया जा सकता है। नारायणास्त्र का प्रयोग होते ही लाखों बाण, लोहे के गोले, गदा, तीक्ष्ण चक्र आदि प्रगट हो जाते थे। आकाश में आँधी-पानी और मेघों की गर्जना होने लगती, पृथ्वी काँप उठती, समुद्र में खलबली मच जाती तथा पर्वत की चोटियाँ गिरने लगती थीं।

इसके उपशमन के लिए योद्धागण सवारियों से उतर कर शस्त्र का त्याग करके अभयदान की याचना करते हुए भूमि पर आ जाते थे, तब इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं होता था। किन्तु जो योद्धा युद्ध बन्द नहीं करता था, उसके लिए यह विकराल रूप धारण करता चला जाता था। जो योद्धा मन से भी इसका सामना करने को उद्यत होता था, तो छिप जाने पर भी वह इससे बच नहीं पाता था। यह अवध्य का भी वध कर सकता था। यथासम्भव इसका प्रयोग नहीं करने का विधान है।[5]

---

1. हरिवंश 2/124/44-46. 2. हरिवंश 2/126/6.
3. मत्स्य 150/205 व 151/28-30.
4. शिव 2/5/38/6-7. 5. द्रोण पर्व 195/36-37.

यक्षों ने ध्रुव पर दुस्तर माया फैलायी थी। ध्रुव के नारायणास्त्र के चढ़ाते ही यक्षों द्वारा रची हुई समस्त माया उसी क्षण नष्ट हो गई।[1]

मानवास्त्र :--

मानवास्त्र गन्धर्वों का प्रिय अस्त्र है। विश्वामित्र ने इसे श्रीराम को प्रदान किया था --

गान्धर्वमस्त्र दयितं मानवं नाम नामतः।[2]

यह अत्यन्त तेजस्वी होता था। इसके आघात से मारीच सौ योजन दूर समुद्र में जा गिरा था।[3]

रौद्रास्त्र :--

रौद्रास्त्र के निवारण के लिए ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया जाता था। शिवजी ने श्रीकृष्ण के ऊपर रौद्रास्त्र चलाया था, जिसे शान्त करने के लिए श्रीकृष्ण ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया था।[4] ब्रह्माजी ने इसकी सृष्टि की थी।[5]

वारुणास्त्र :--

वारुणास्त्र का प्रयोग आग्नेयास्त्र के उपशमन के लिए किया जाता था। इस अस्त्र का प्रयोग करने से आकाश में मेघ छा जाते थे और दिशाएँ अंधकार से व्याप्त हो जाती थीं तथा वर्षा होने

---

1. भागवत 4/11/1-2.
2. वा.रा. 1/27/16.
3. वा.रा. 1/30/16-18.
4. हरिवंश 2/124/44-46.
5. हरिवंश 3/29/16.

लगती थी। श्रीकृष्ण ने अत्यन्त तेजस्वी वारुणास्त्र का प्रयोग करके शिवजी के आग्नेयास्त्र को शांत किया था।[1] आग्नेयास्त्र के निवारण के लिए स्कन्द ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया था।[2] इसे शान्त करने के लिए वायव्यास्त्र का भी प्रयोग होता था।[3]

शोषणास्त्र :—

दैत्यराज दुर्ग बादलों की आड़ में खड़ा होकर प्रचण्ड आँधी और बवण्डर के साथ कंकण-पत्थरों की वर्षा करने लगा, तब देवी ने शोषणास्त्र का प्रयोग करके पानी और पत्थरों की वर्षा को क्षण भर में रोक दिया था।[4]

ब्रह्मशिरास्त्र :—

ब्रह्मशिरास्त्र का निर्माण दधीचि के शिर की हड्डी से किया गया था।[5] स्कन्द ने काल के समान दुर्जय और सूर्य के तुल्य तेजस्वी परम उग्र ब्रह्मशिरास्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रयोग होने पर सब ओर हाहाकार मच गया। उसके तेज से मोहित हुए सारे जगत में विषाद छा गया। श्रीकृष्ण ने चक्र के द्वारा उस ब्रह्मशिरास्त्र को निस्तेज कर दिया था।[6]

---

1. हरिवंश 2/124/42-43.
2. हरिवंश 2/126/6.
3. कर्णपर्व 89/17-21.
4. स्कन्द 4/2/72.
5. स्कन्द 1/1/17.
6. हरिवंश 2/126/8-12.

वायव्यास्त्र :--

वायव्यास्त्र की सृष्टि ब्रह्माजी ने की थी।[1] इसके द्वारा पैशाचास्त्र तथा पार्वतास्त्र का उपशमन किया जाता था। श्रीकृष्ण ने वायव्यास्त्र का प्रयोग करके शिवजी के द्वारा प्रयुक्त पैशाचास्त्र का निवारण किया था।[2] कार्तिकेय ने वायव्यास्त्र को शान्त करने के लिए पार्वतास्त्र का प्रयोग किया था।[3] देवी ने वायव्यास्त्र का संधान करके दैत्यों के अस्त्र-शस्त्र को नष्ट कर दिया था।[4] इसके द्वारा वारुणास्त्र का भी निवारण किया जाता था।[5]

दानवास्त्र :--

दानवास्त्र केनिवारण के लिए पार्जन्यास्त्र का प्रयोग किया जाता था। ब्रह्माजी ने दानवास्त्र की रचना की थी। बाणासुर ने तपस्या करके इसे प्राप्त किया था। उन्होंने श्रीकृष्ण पर इसका प्रयोग किया था। इसका प्रयोग करते ही अंधकार छा गया था। श्रीकृष्ण ने पार्जन्यास्त्र के द्वारा इसको शान्त किया था।[6]

संवर्तास्त्र :--

यह कालदेवता का अस्त्र है। गन्धर्वराज शैलूष की सेना के साथ युद्ध करते हुए भरत ने संवर्तास्त्र का प्रयोग करके क्षण भर में तीन करोड़ गन्धर्वों का संहार किया था।[7]

---

1. हरिवंश 3/29/16.
2. हरिवंश 2/124/44-46, भीष्मपर्व 1/32.
3. हरिवंश 2/126/6.
4. स्कन्द 4/2/71.
5. कर्णपर्व 89/17-21.
6. हरिवंश 2/126/56-64.
7. वा.रा. 7/101/5-8.

गान्धर्वास्त्र :--

माया को शान्त करने के लिए गान्धर्वास्त्र का संधान किया जाता है। शम्बरासुर ने माया से प्रद्युम्न पर सिंह, व्याघ्र, बराह, रीछ, वानर, हाथी, घोड़े और ऊँट के रूपों में बाणों का प्रहार किया था, तब प्रद्युम्न ने गान्धर्वास्त्र के द्वारा उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे।[1]

वैष्णवास्त्र :--

वैष्णवास्त्र को नारायणास्त्र से शांत किया जाता था। शंखचूड के वैष्णवास्त्र को देवी ने नारायणास्त्र का प्रयोग करके निवारण किया था।[2] पृथ्वी ने नरकासुर को अजेय बनाने के लिए भगवान् विष्णु से वैष्णवास्त्र की याचना की थी। विष्णुजी ने वैष्णवास्त्र प्रदान करते हुए कहा था कि जब तक यह अमोघ अस्त्र रहेगा, तब तक कोई योद्धा नरकासुर को पराजित नहीं कर सकेगा।[3]

श्रीकृष्ण ने प्रकृति के द्वारा वैष्णवास्त्र की रचना की थी।[4] शम्बरासुर का वध करने के लिए इन्द्र ने नारद के द्वारा प्रद्युम्न को वैष्णवास्त्र प्रदान किया था। प्रद्युम्न ने शम्बरासुर पर इसका प्रयोग किया था। इससे असुर का हृदय विदीर्ण हो गया तथा उसके तेज से वह भस्म हो गया था।[5] श्रीकृष्ण के द्वारा वैष्णवास्त्र का प्रयोग होने से सारी सेना भय और मोह से व्याकुल होकर भागने लगी थी।[6]

---

1. हरिवंश 2/106/15-17.
2. शिव 2/5/38/6-7.
3. द्रोणपर्व 29/35-36.
4. हरिवंश 2/127/77.
5. हरिवंश 2/107/26-27.
6. हरिवंश 2/124/48.

वैष्णवास्त्र का प्रयोग होने से सम्पूर्ण जगत में अन्धकार छा गया और भगवान् शंकर उसके तेज से जलने लगे थे। वैष्णवास्त्र से आच्छादित होकर वे अदृश्य हो गये थे।[1]

माया :--

असुर, यक्ष और गन्धर्वों के द्वारा युद्ध में माया का प्रयोग किया जाता था। शम्बरासुर सैकड़ों प्रकार की माया जानता था। उन्होंने प्रद्युम्न पर यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस आदि की सैकड़ों मायाओं का प्रयोग किया था। किन्तु प्रद्युम्न ने महामाया विद्या से उन सबका नाश कर दिया था।[2] मय दानव ने माया का प्रयोग करके देवताओं के ऊपर वृक्षों, चट्टानों तथा पत्थरों की वर्षा की थी, तब अग्नि और पवन देव ने इसे शान्त किया था।[3]

माया के प्रयोग से आकाश में मेघ छा जाते थे, भयंकर गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकने लगती थी, बादलों से खून, कफ, पीव, मल-मूत्र एवं चर्बी की वर्षा होने लगती थी। प्रलय के समान भयंकर समुद्र अपनी तरंगों से पृथ्वी को डुबाता हुआ भीषण गर्जना करने लगता था।[4]

तामसी माया ‡आसुरी माया‡ :--

तामसी माया को महामाया से शान्त किया जाता था। इसके द्वारा पृथ्वी पर अंधकार छा जाता था। तामसास्त्र के द्वारा इन्द्र ने तामसी माया का संधान करके दानव-वाहिनी को अंधकार से

---

1. हरिवंश 2/125/1.
2. भागवत 10/55/23.
3. हरिवंश 117/24-34.
4. भागवत 4/10/23-29.

अभिभूत कर दिया था। मय दानव ने महामाया का प्रयोग करके सारे अंधकार को जलाकर नष्ट कर दिया था।[1] चित्रलेखा ने तामसी माया के द्वारा अनिरुद्ध के महल में अनिरुद्ध के सिवाय सभी को आच्छादित कर दिया था।[2] बाणासुर तामसी विद्या का आश्रय लेकर अदृश्य रहते हुए प्रद्युम्न पर बाण बरसाने लगे थे।[3] शम्बरासुर आसुरी माया का प्रयोग करते हुए आकाश में चला गया और वहीं से अस्त्र-शस्त्र चलाने लगा था। प्रद्युम्न ने महाविद्या का प्रयोग करके उस माया को नष्ट किया था।[4]

पार्वती माया :--

मय दानव के पुत्र क्रौंच ने पार्वती माया की सृष्टि की। वरुण देव ने अपने पाश से दानवों को जकड़ दिया था, तब मय दानव ने पार्वती माया का प्रयोग किया था। यह माया इच्छानुसार सर्वत्र पहुँचने वाली थी। इसके प्रयोग से शिलाओं का जाल-सा बिछ जाता था। इस माया से पत्थरों की वर्षा होने लगती थी, चट्टानों के टकराने की भयंकर आवाज होती थी तथा वृक्षों के समूह गिरने लगते थे। इसे शान्त करने के लिए विष्णु की आज्ञा से वायु और अग्नि देव ने बवण्डर की तरह वेगपूर्वक घूमते हुए इस माया को नष्ट कर दिया था।[5]

मत्स्य पुराण के अनुसार देवासुर संग्राम में मय दानव ने पार्वती माया की सृष्टि की थी। इसके प्रयोग से शिलाओं, चट्टानों तथा वृक्षों के टकराने की भयंकर ध्वनि होती है।[6] हरिवंश पुराण में पार्वती माया का सृष्टा मयासुर पुत्र क्रौंच को बताया गया है। यह माया सर्वत्रगामिनी है। इसके प्रयोग से शिलाओं का जाल बिछ जाता था, जो विपक्षी के लिए भयावह होता था।

---

1. हरिवंश 1/45/13-19.
2. हरिवंश 2/119/33.
3. हरिवंश 2/119/173.
4. हरिवंश 10/55/21-22.
5. भागवत 1/46.
6. मत्स्य 176/21-23.

--:: सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची ::--

1. अग्नि पुराण -- तारिणीश झा, डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1987 ई.
2. कूर्म पुराण -- तारिणीश झा -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1993 ई.
3. गरूड़ पुराण -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली.
4. देवी भागवत पुराण -- वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1975 ई.
5. नारदीय पुराण -- तारिणीश झा -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989-90 ई.
6. नरसिंह पुराण -- डॉ. रणजीत सिंह सैनी -- ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली.
7. पदम पुराण -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली.
8. ब्रह्म पुराण -- तारिणीश झा -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1993 ई.
9. ब्रह्मवैवर्त पुराण --
10. ब्रह्माण्ड पुराण -- डॉ. वी. के. शर्मा -- कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1988 ई.
11. भविष्य पुराण -- नारायण सिंह -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1995 ई.
12. श्रीमद्भागवत पुराण -- गीता प्रेस, गोरखपुर.
13. मत्स्य पुराण -- डॉ. पुष्पेन्द्र शर्मा -- मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1984 ई.
14. महाभारत -- गीता प्रेस, गोरखपुर.
15. मार्कण्डेय पुराण -- कन्हैया लाल -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989 ई.

16. लिङ्ग पुराण -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1996 ई.
17. वाल्मीकि रामायण -- गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2052.
18. वराह पुराण -- मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली.
19. वामन पुराण -- नागशरण सिंह -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1996 ई.
20. वायु पुराण -- रामप्रताप त्रिपाठी -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1987 ई.
21. विष्णु पुराण -- गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2052.
22. विष्णुधर्मोत्तर पुराण -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985 ई.
23. शिव पुराण -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली.
24. स्कन्द पुराण -- नाग पब्लिशर्स, दिल्ली.
25. हरिवंश पुराण -- गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2052.
26. ऋग्वेद संहिता -- नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991 ई.
27. शुक्ल यजुर्वेद संहिता -- डॉ. रामकृष्ण शास्त्री -- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992 ई.
28. अथर्ववेद संहिता -- रामस्वरूप शर्मा "गौड़" -- चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1994 ई.
29. शतपथ ब्राह्मण -- पं. मोतीलाल शास्त्री -- राजस्थान पत्रिका, जयपुर.
30. गोपथ ब्राह्मण भाष्य -- पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी -- चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1993 ई.
31. ऐतरेय ब्राह्मण -- गंगाप्रसाद उपाध्याय -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006 सं.
32. शांखायन ब्राह्मण -- आनन्दाश्रम, पूना, 1977 ई.
33. ईशादि नौ उपनिषद -- गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2052.
34. ईशादि द्वादशोपनिषद -- श्री कैलास विद्या प्रकाशन, ऋषीकेश, 1995 ई.

35. अमरकोश -- डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी -- चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1988 ई.

36. हलायुधकोष -- हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1967 ई.

37. हिन्दी नाट्यशास्त्र -- बाबूलाल शुक्ल शास्त्री -- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.

38. दशरूपक -- डॉ. भोलाशंकर व्यास -- चौखम्बा संस्कृत विद्या भवन, वाराणसी, 1988 ई.

39. मनुस्मृति -- कुल्लूक भट्टटीका, बम्बई, 1946 ई.

40. याज्ञवल्क्य स्मृति -- बालक्रीडा त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, 1922 ई.

41. पाणिनीय शिक्षा -- नारायण मिश्र -- चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी.

42. याज्ञवल्क्य शिक्षा -- उदयनाथ झा -- चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी.

43. नारदीय शिक्षा.

44. आश्वलायनगृह्य सूत्र -- भवानी शंकर शर्मा, बम्बई, 1909 ई.

45. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र -- आरगारबे, मैसूर, 1945 ई.

46. कौटिल्य अर्थशास्त्र -- डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली.

47. चरक संहिता -- जयदेव विद्यालंकार, बनारस, 1959 ई.

48. अष्टाध्यायी -- रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, 1969 ई.

49. आपस्तम्ब धर्मसूत्र -- डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय -- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सं. 2049.

50. मानसार -- प्रसन्नकुमार आचार्य -- मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली.

51. कथासरित्सागर -- पं. केदार नाथ शर्मा "सारस्वत" -- बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1974 ई.

52. संक्षिप्त पद्म पुराण -- गीता प्रेस, गोरखपुर, 2054 सं.
53. संक्षिप्त शिव पुराण -- गीता प्रेस, गोरखपुर, 2052 सं.
54. संक्षिप्त मार्कण्डेय ब्रह्म पुराण -- गीता प्रेस, गोरखपुर.
55. संक्षिप्त वराह पुराणांक -- गीता प्रेस, गोरखपुर, 1977 ई.
56. अभिनवभारती.
57. संगीतरत्नाकर.
58. अभिधानचिन्तामणि.
59. दत्तिलम्.
60. बृहद्देशी.
61. बृहद्देवता.
62. भारतीय संगीत का इतिहास -- डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे -- चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, वि.सं. 2026.
63. स्मृतियों में नारी -- डॉ. भारतीय आर्य -- विश्वभारती अनुसंधान परिषद, वाराणसी, 1989 ई.
64. वैदिक कोश -- पं. भगवद्दत्त, हंसराज -- विश्वभारती अनुसंधान परिषद, वाराणसी, 1992 ई.
65. पुराणतत्त्व विमर्श -- थानेशचन्द्र उप्रेती - परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1986 ई.

--::--::--
--::--


महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय ग्रंथालय
क्र. 17339
करौंदी, कटनी (म.प्र.)